नीति-विज्ञान ।

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका ५२ वाँ ग्रन्थ।

नीति-विज्ञान

अथवा

आचार-शास्त्र।

[मानव-आचार पर वैज्ञानिक विवेचन।]

लेखक—

श्रीयुत बाबू गोवर्धनलाल,

एम० ए०, बी० एल०।

प्रकाशक—

174

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय,

हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।

श्रावण, १९८० वि०।

अगस्त, १९२३।

प्रथमावृत्ति।]

[मूल्य २।)

प्रकाशकः—

नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय,
हीराबाग, पोष्ट गिरगाँव, बम्बई ।

मुद्रक—

मंगेश नारायण कुळकर्णी,
कर्नाटक प्रेस, ४३४,
ठाकुरद्वार, बम्बई ।

विषय-सूची ।

पूर्वाभास ।

" आचार-नीतिके सम्बन्धमें दो कल्पनायें हैं । एकके अनुसार मनुष्य एक कल्पित ईश्वरकी आज्ञाका पालन करता है; परन्तु क्षण भरके लिए भी यह नहीं सोचता कि उसकी आज्ञा उचित और न्यायपूर्ण है या अनुचित और अन्याय-पूर्ण । ....वह किसी कामको बुरा इसलिए समझता है कि ईश्वरने उसका निषेध किया है, इसलिए नहीं कि बुरा समझकर ही ईश्वरने उसका निषेध किया है । आचार-नीतिकी यह कल्पना स्वतंत्र विचार पर नहीं, वरन् आज्ञाधीनता पर अधिक ज़ोर देती है । यह प्रज्ञाके समीप नहीं, वरन् सज़ा पानेके भय, तथा पुरस्कार प्राप्त करनेकी आशाके सम्मुख अपील करती है । इस कल्पनाके अनुसार ईश्वर एक सम्राट् है, जिसकी इच्छा ही धर्म-व्यवस्था या कानून है, और चुपचाप आज्ञा-पालन करना सारे जीवधारियोंका एक मात्र कर्तव्य है; क्योंकि मनुष्य ईश्वरके भृत्य या गुलामके अतिरिक्त कुछ नहीं है । ... .आचारनीतिके सम्बन्धमें हम लोगोंके विचारोंने पलटा खाया है । अब लाखों मनुष्य यह विश्वास करने लग गये हैं कि जिस वस्तुके द्वारा आनन्द और समृद्धिकी उपलब्धि होती है वह पूर्ण रूपसे नीत्यनुरूप है और यथार्थ सदाचारका सार या मूल आधार अन्ध भृत्यवत आज्ञापालन नहीं है । यह मानसिक गुलामीका फल है । कर्तव्यको देख कर तथा उसे पूर्ण रूपसे अनुभव कर कर्तव्य-पथ पर चलनेमें ही स्वाधीनता, पुरुषार्थ और ओजस्विता है । सिर्फ़ आज्ञा-पालन करनेको हम भृत्योचित गुण कह सकते हैं; इससे अधिक और कुछ नहीं । यथार्थ सदाचरण स्वतंत्रता और ज्ञानका फल और फूल है । "

—कर्नल आर० जी० इंगरसोल ।

भूमिका।

इस पुस्तकका लेखक वैज्ञानिक या दार्शनिक नहीं है और न उसे विद्वान् या साहित्यिक होनेहीका दावा है। तब यह प्रश्न सहज ही उपस्थित होता है कि ऐसी दशामे उसे ऐसे जटिल, विवाद-ग्रस्त और गम्भीर विषयपर कलम उठानेका क्या अधिकार है। उत्तरमे विनम्र निवेदन है कि इस क्षुद्र पुस्तकका लेखक विचारस्वातन्त्र्यको बडी मूल्यवान् वस्तु समझता है और उसकी धारणा है कि प्रत्येक मनुष्यको अपने स्वतन्त्र विचारोंके व्यक्त करनेका पूर्ण अधिकार है। संसारके किसी भी विद्वान् मनुष्य या धर्मको किसीके विचार-स्वातन्त्र्यके अपहरण करनेका अधिकार नही है। प्रत्येक मनुष्यको जीवनकी समस्याओंपर मनन और विचार करनेका जन्म-सिद्ध अख्तियार है। अतएव लेखकने इस पुस्तककी रचना विद्वान् गिने जाने या विवाद खड़ा करनेके उद्देशसे कदापि नहीं की है। उसने केवल अपने मनोगत भावोंको लिपिवद्ध करनेका प्रयत्न किया है। वहुत समयके अध्ययन और चिन्तनके द्वारा वह जिन नतीजोंपर पहुँचा है वही इस पुस्तकमें क्रमवद्ध रीतिसे लिख दिये गये है।

विचारके क्षेत्रमे मौलिकता एक अति ही दुष्प्राप्य वस्तु है। मौलिकसे मौलिक विचारोंके पीछे भी पूर्वकालीन पुरुषोंके अस्पष्ट विचार—शताब्दियोंके अविश्रान्त चिन्तन और प्रयास—अवश्य विद्यमान रहते है और प्रत्येक विचारक युगयुगान्तरके चिन्तनों और संचित अनुभवोंसे अवश्य लाभ उठाता है। इस दृष्टिसे संसारका कोई भी विचार पूर्णत मौलिक या नया नहीं कहा जा सकता। संसारका इतिहास क्रम-वद्ध विकास या उन्नतिका इतिहास है और कोई भी वैज्ञानिक पूर्वापरके सम्बन्धको अस्वीकार नहीं कर सकता। प्राचीन समयके मनुष्य पत्तों और वृक्षोकी छालकी पोशाक पहिनते थे; परन्तु आजके सभ्य और 'फैशनग्रस्त' मनुष्य तरह तरहके वस्त्रों और परिच्छदोंसे अपने शरीरको ढकते है। क्या यह किसी भी प्रकार अस्वीकार किया जा सकता है कि तुच्छ और सामान्य वल्कल-वस्त्रोंसे ही वर्तमान सभ्य मनुष्योंके विविध प्रकारके परिच्छदोंका विकास हुआ है? इसी प्रकार असभ्य जंगली मनुष्योंके सामान्य नरकट या वॉसके वाजोंसे इसराज या तानपूरेकी उत्पत्ति हुई है। नदीमे तैरने-

वाली छोटी छोटी डोंगियोंसे प्रक्षुब्ध महोदधिमें स्वच्छन्दतापूर्वक विचरण करनेवाले वड़े वडे जहाजोंका जन्म हुआ है। पशुओंकी खाल या मिट्टीकी तख्तियों पर लिखी जानेवाली पुस्तकोंके गर्भसे ही इस समयके महान् प्रेसों या यन्त्रालयोंका अवतार हुआ है। इसी प्रकार पूर्व समयके तुच्छ और सामान्य विचारकोंके अस्तित्वके कारण ही ससारमे वुद्ध और कृष्ण, स्पेन्सर और डार्विन प्रभृति लोग जन्म ग्रहण कर सके हैं। इनकी मौलिकता इनके विचारोंके नयेपनमे नहीं, वरन् इनकी स्पष्टता, इनके अध्यवसाय, और वर्णित वातोंपर स्वय इनके निश्चल विश्वासमे और अपने विचारोंके मध्य तल्लीन हो जानेमें है।

लेखक इस पुस्तकके लिए इस दर्जेकी मौलिकताके दावा करनेका दु साहस नहीं कर सकता। तौभी अपने तुच्छ विचारके अनुसार वह इस पुस्तकको मौलिक अवश्य कह सकता है। यद्यपि उसके विचार एकदमसे नवीन नहीं हैं, तथापि वे लेखकके अपने और स्वतन्त्र विचार हैं और लेखक उन्हें सत्य समझता है। लेखकने दूसरोंके विचारोंको भी चिन्तन और मनन द्वारा अपना वनाया है और यही लेखककी मौलिकता है।

जहाँ तक लेखक समझता है इस विषय पर हिन्दीमें एक भी पुस्तक नहीं है। ॲगरेजीमें भी इस ढगसे लिखी गई कोई पुस्तक उसकी नजरोंसे नहीं गुजरी। ॲगरेजी पुस्तकें योरोपीय परिस्थितियोंको नजरमे रखकर लिखी गई हैं, अतएव वे भारतीय परिस्थितियोंके साथ पूर्णतया कदापि लागू नहीं हो सकतीं। वर्तमान पुस्तक किसी एक पुस्तकके आधार पर नहीं लिखी गई है, वरन् लेखकको इसके लिए वहुतसी पुस्तकोंका अध्ययन करना पड़ा है। ज्ञानत लेखकने जितनी पुस्तकोंसे सहायता ली है उनका वर्णन उसने स्थल स्थल पर ग्रन्थके भीतर ही कर दिया है, परन्तु अज्ञात रूपसे लेखकको कितनी और किन किन पुस्तकोंसे सहायता मिली है यह कहना उसके लिए भी कठिन है। सव कुछ स्वीकार करने पर भी लेखक शायद इस पुस्तकके कुछ अशोंको—विशेप कर अन्तके कई अध्यायोंको–मौलिक कह सकता है और इसके लिए पुरस्कार या तिरस्कारका भागी केवल लेखक ही है।

पहले ही निवेदन किया जा चुका है कि लेखक विद्वान् या साहित्यिक होनेका दावा नहीं करता। इसी लिए इस पुस्तककी रचनाशैली और भापा दोनों साधारण हैं। लेखक साहित्यिक नहीं है, इसलिए उसकी भापा साहित्यिकोंको नापसन्द हो सकती है और वे इसे नीरस और सौन्दर्य्य-रहित भी अनु-

मान कर सकते है। अतएव यदि साहित्यिकों और विद्वानोकी यह धारणा हो, तो इससे लेखकको कोई दुःख न होगा। क्योंकि वह न तो भाषाका पण्डित है और न साहित्यका मर्मज्ञ, इसलिए उसने भाषाके सौन्दर्य्यकी अपेक्षा स्पष्टता पर कही अधिक ध्यान रक्खा है। भाषा साहित्य या कविता पर भी लेखक अपने कुछ स्वतन्त्र विचार रखता है, परन्तु यहाँ पर उनके वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नही है। साहित्यिक चाहे जो कुछ कहे, लेखक तो यही समझता है कि भाषाका उद्देश केवल भावोका व्यक्त करना है और जिस भाषाके द्वारा भाव अच्छी तरहसे व्यक्त किये जा सके वही भाषा उत्तम है। इस पुस्तकमें लेखकने आद्योपान्त अपने इसी सिद्धान्त पर चलनेकी चेष्टा की है। इसी लिए साहित्यिक नियमोके विरुद्ध उसे स्थल स्थलपर एक ही बातको बदले हुए शब्दोंमे दो दो तीन तीन बार भी लिखना पड़ा है।

अन्तमे वह अपने सभी पाठकों और समालोचकोसे क्षमा और निष्पक्षताकी प्रार्थना करता है। मतभेद बुरी वस्तु नही है—क्योंकि भिन्नता, असादृश्य या नानात्वमे ही जीवनका स्वाद है—किन्तु दूसरोके मतोंपर बिना विचार किये, प्रमाणोंपर बिना कुछ भी ध्यान दिये— अपने मतसे विरुद्ध अन्य सभी मतोकी उपेक्षा करना अवश्य बुरी वस्तु है। लेखककी कदापि यह इच्छा नही है कि सब लोग उसीके सदृश सोचने लग जायँ, बल्कि वह यह चाहता है कि सब लोग स्वतंत्रतापूर्वक विचार कर सकें। लेखक जितना मूल्य अपने स्वतंत्र विचारोंका समझता है उतना ही दूसरोके स्वतंत्र विचारोका भी समझता है और इस कारण उनका यथेष्ट आदर करता है।

इस पुस्तकको लिखे हुए कई वर्ष हो गये। पुस्तक लिखनेका निश्चय तो लेखकने बहुत पहले कर लिया था, परन्तु उसका आरम्भ सन् १९१८ मे हुआ और १९२० में वह प्राय पूरी हो गई। प्रकाशकसे पुस्तकके प्रकाशित करनेकी बातोंको तै हुए भी प्राय दो वर्ष हो गये और अब १९२३ मे यह पुस्तक अनेक विघ्न बाधाओंको तै करके ससारके प्रकाशमे पदार्पण कर रही है। लेखकको विश्वास नही होता कि इस पुस्तकका अच्छा स्वागत होगा, तथापि कर्तव्यपालन समझ कर ही वह इस पुस्तकको—अपने विचारोको जो अनेक समयसे उसके मस्तिष्कमे हलचल मचा रहे थे—संसारमे भेजनेका साहस कर रहा है। न तो उसे पुरस्कारकी आशा है और न तिरस्कारका भय। वह सर्वथा उदासीन है।

, लेखक यह कदापि नही समझता कि यह पुस्तक रत्नरूपसे मातृभाषाके मुकु-टमे जटित होकर माताकी शोभावृद्धि कर सकेगी, तौभी यदि मातृभाषाके पुजारी इस पुष्परूपी तुच्छ पुस्तकको माताके चरणों पर स्थान पानेके योग्य समझेंगे, तो लेखककी प्रसन्नताकी कोई सीमा नही रहेगी।

पाठकों और समालोचकोंसे लेखक केवल यही भिक्षा चाहता है कि पुस्तकको एक बार आद्योपान्त पढे विना वे इसके सम्वन्धमे कोई राय कायम न कर लें।

सवसे अन्तमे लक्ष्मी, प्रभा और माधुरीके सम्पादकोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना भी लेखकका कर्तव्य है। इस पुस्तकके अनेक अश 'लक्ष्मी' के पृष्ठोंमे और 'युद्ध, जीवन-सग्राम और सदाचार' तथा 'सदाचारकी उत्पत्ति और आवश्यकता' शीर्षक अध्याय 'माधुरी' और 'प्रभा' मे प्रकाशित हो चुके हैं। प्रकाशनके पूर्व ही उन्हें इस पुस्तकमे सम्मिलित करनेकी अनुमति देनेके लिए लेखक उक्त सम्पादकोंके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता है। विशेष कर लेखक अपने मित्र वावू रामानुग्रहनारायणलाल वी० ए० का वडा कृतज्ञ है। लेखकके परिश्रमके साथ उन्होंने जो स्नेह दिखलाया है उसके लिए लेखक उनका चिर ऋणी रहेगा। उन्होंने ही अनुरोध करके इसके खण्डोको लक्ष्मीमे प्रकाशित किया और ग्रन्थके समाप्त हो जाने पर उन्होंने ही लेखकको इसे पुस्तकाकार प्रकाशित करानेके लिए उत्तेजित किया। विना उनके उत्साह-वर्द्धनके शायद इस ग्रन्थका जन्म ही न होता।

यहाँ पर यह कहना वहुत जरूरी प्रतीत होता है कि लेखक और प्रकाशकके मध्य सैकड़ों कोसोंका अन्तर रहनेके कारण, वहुत कुछ सावधानी रखते हुए भी, यदि पुस्तकमे कुछ अशुद्धियाँ रह गई हों, तो पाठक उनपर ध्यान न देगे और कृपया उन्हें सुधार लेंगे। अन्तमे विद्वान् प्रकाशकके प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट करके लेखक इस भूमिकाको समाप्त करता है। प्रकाशकने कहीं कहीं पर उचित सम्मतियाँ देकर, संशोधन करके एवं ध्यानपूर्वक इस पुस्तकको प्रका-शित करके लेखकके ऊपर जो ऋणभार रक्खा है उससे मुक्त होना उसके लिए असम्भव है।

गया—
२, १९२३।

—गोवर्द्धनलाल।

नीति-विज्ञान ।

पहला अध्याय ।

विषय-प्रवेश ।

विचारका महात्म्य ।

बहुत दिनोंकी जड़ावस्थाके बाद हमारे देशमे जागृतिके लक्षण दीख पड़ रहे है। चारो ओरसे पुकार उठ रही है कि " अब सोनेका जमाना गया, अब हमे कर्ममे रत होना चाहिए। केवल तर्क वितर्कसे काम न चलेगा। इस समय हमारा उद्धार दर्शनशास्त्रके द्वारा नही वरन् साधनसे होगा।" निस्सन्देह हम केवल ऐसा कहते ही नही है वरन् हम कुछ न कुछ काममें लग भी गये हैं।

स्वभावतः पाठकवर्ग मुझसे पूछ सकते है कि ऐसे समयमे भी नीतिशास्त्रकी महत्ता समझानेसे क्या लाभ होगा। एक तो भारत स्वभावसे ही ध्यानशील और संसारसे उदासीन है, इस पर भी उसे ध्यानस्थ बनानेका प्रयत्न क्यो कर रहे हो? मेरा उत्तर बहुत साधारण है। जरा भी सोचने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि *विचारसे ही कर्मोंकी उत्पत्ति होती है। बिना विचारके कर्म सर्वथा असम्भव है।* संसा-

रकी यह सारी भौतिक उन्नति भी विचारका ही फल है। वैज्ञानिकोके अहर्निशि चिन्तन करनेसे ही यह मुझे प्राप्त हुआ है। यदि वे रात दिन कठिन परिश्रम करके और अपने सरको खपा कर प्राकृतिक नियमोकी जानकारी न प्राप्त करते तो आज संसार इतना उन्नत कहाँसे होता? कार्य्यके पहिले विचार ही जन्म ग्रहण करता है। *प्रत्येक कामके करनेके पहले हमारे मनमें उस कामके करनेका ख़याल ही पैदा होता है।* उसी खयालको हम कार्य्यमे परिणत करते हैं। मान लो कि हम अपने घरसे अपने मित्रके यहाँ जाना चाहते है, तो अब यदि प्रत्येक पग पर यह खयाल हमारे मनमें न रहे, तो क्या हम अपने मित्रके यहाँ पहुँच सकते हैं? क्या विना इस खयालके हम एक कदम भी बढा सकते हैं? विचार या ज्ञान, विश्वास या धारणा ही सब कुछ है। यह ठीक है कि अक्सर हमारे विचार हमारे मस्तिष्कमे सोया करते हैं, कुछ वाह्य कारणोसे हम उन्हे व्यवहारमें नहीं लाते है या कभी कभी हमे उनके विरुद्ध भी कुछ काम करना पडता है। परन्तु ऐसी अवस्थामे भी ये विचार एकदम बेकार नहीं बैठे रहते। ये भविष्यके लिये संचित रहते है। ये ही भविष्यमे हमारे कार्य्योंके अनुशासक बनते है। ये विचार सलाईमे अग्निके समान छिपे रहते है और अवसर पाते ही एकाएक प्रज्वलित हो उठते है, बमगोलेके समान फट पड़ते है और अक्सर बहुतसी चीजोको भस्मीभूत भी कर डालते है। बडे बडे *आन्दोलनों और विप्लवोंकी आकस्मिक उत्पत्ति इसी प्रकार होती है।* पुनः ये मूक विचार अपने उपयुक्त वायुमण्डलकी रचनामे कहाँ तक समर्थ होते है, यह तो स्पष्ट ही है। हम खुद शायद कार्य्यमें प्रवृत्त न हों, परन्तु हमारे मूक विचारोंहीसे उन काम करनेवालोंको कितनी सहायता मिलती है

जिनके विचार हमसे मिलते है। हाथ पकड कर हम उनकी सहायता न भी करे तौभी केवल मात्र उनके पथमें हमारे किसी बाधाके न रखनेसे क्या उनका कम उपकार होता है?

अपने विचारोहीके कारण मनुष्यने दैविक और पैशाचिक दोनो प्रकारका काम किया है। उसने संसारहितके लिए अपना प्राण तक परित्याग किया है। अपने विचारोहीके कारण उसने देश विदेश विजय किये है, बच्चों और स्त्रियोको अग्निके हवाले किया है तथा काफिरों और अविश्वासियोकी हत्या की है।

ज्ञानकी आवश्यकता।

ज्ञानका माहात्म्य अनन्त है। हमारा प्रत्येक कार्य्य ज्ञानका ही नतीजा है। प्रत्येक काम ज्ञानरूपी बीजका ही फल और फूल है। अज्ञान ही सारे दुःखो और क्लेशोका कारण है। प्राकृतिक नियमोंके न जाननेके कारणसे ही मनुष्य अनेको दुःख झेलता है। उदाहरणके लिए आप बीमारियों-हीको लीजिए। क्या प्रायः सभी बीमारियोकी जड़ हमारा अज्ञान नही है? यदि हमें जीवनके सभी नियम पूर्णतः मालूम होते—यदि हमें खाने पीने या रहने सहनेकी उत्तम रीति मालूम होती—तो क्या हम सहजमें ही इतनी बीमारियोके लक्ष्य बन सकते? इसी कारण हमारे शास्त्रोंने ज्ञानको इतनी महत्ता दी है और अज्ञानको समस्त दुःखोका कारण ठहराया है।

नीति-विज्ञानकी महत्ता।

तब क्या ज्ञानका वह अंग जिसके द्वारा मनुष्योंके परस्परका कर्तव्य स्थिर होता है एकदम व्यर्थ है? नीतिशास्त्र सदाचरणका शास्त्र है। यदि हमें हर बातमे ज्ञानकी इतनी आवश्यकता है तो क्या हमे इस शास्त्रकी कोई जरूरत नही? क्या हमे नीतिके स्वरूप और उत्पत्तिके सम्बन्धमें कुछ भी जानने-

की कोई जरूरत नहीं ? प्रकृति हमे सच्चरित्र बनाना चाहती है या दुश्चरित्र, विना मजहबके भी सदाचार सम्भव है या नहीं, हमारे हृदय-मे सदाचारकी कोई स्वतन्त्र प्रवृत्ति है या नहीं, हमलोग स्वर्ग या नरककी लालच या भयसे ही सत्कर्म करते हैं, या और किसी कारणसे, उत्तम और नैतिक घिरावके पैदा करनेसे ससारका दुःख कुछ मेटा जा सकता है या नहीं, इत्यादि प्रश्नोका उत्तर क्या हमारे लिए सर्वतः उदासीनताकी बात है ?

मनुष्य स्वभावसे ही सामाजिक जानवर है। मनुष्यकी सारी कामनाये समाजके द्वारा ही पूरी हो सकती है। समाजके विना वह एक क्षण भी जीता नहीं रह सकता। समाजमे रहने पर ही उसके स्वभावका पूर्ण विकाश हो सकता है—उसकी पूर्ण उन्नति हो सकती है। अतएव उसे सबसे अधिक समाज-विज्ञान जाननेकी आवश्यकता है और विशेषकर उसके लिए नीति-विज्ञान या सदाचार-शास्त्रकी जानकारी परमावश्यक है।

नीतिके क्षेत्र-मे ज्ञानकी आवश्यकता।

साधारणतः सभी बातोमे ज्ञानका माहात्म्य स्वीकृत हो चुका है, परन्तु तौभी नैतिक जीवनमे ज्ञानका एकाधिपत्य अभी तक किसी देशमे नही हुआ है। लोगोका विचार है कि इसमे मजहब * के अखण्ड साम्राज्यको ज्योका त्यो छोड देना चाहिए; नैतिक बातोंमे तर्क वितर्ककी कोई आवश्यकता नहीं। इससे लाभके बदले हानि ही अधिक

* मैं जान बूझ कर 'धर्म' शब्दके बदले अरबीके 'मजहब' शब्दका प्रयोग कर रहा हूँ, क्योकि मेरी समझमे 'धर्म' और 'मजहब' मे बड़ा अतर है और हमारे वर्तमान धार्मिक विचारोके लिए 'मजहब' शब्द ही अधिक उपयुक्त है। (देखो अध्याय पन्द्रहवॉ।)

होगी। हमारे देशके लोग इसी कारण अँगरेजी शिक्षा तथा वैज्ञानिक शिक्षाके विरुद्ध हैं और कुछ लोग जो इन्हें आवश्यक समझते भी है तो वे भी यह जरूर चाहते है कि वैज्ञानिक शिक्षाके साथ साथ मजहवी शिक्षा भी अवश्य दी जाय ताकि हमारे आचार ढीले न पड़ने पावें। परन्तु यह विचार सर्वतः भ्रम-मूलक है। नीतिके क्षेत्रमें भी ज्ञानकी ज्योतिकी कम आवश्यकता नहीं। *ज्ञान ही कर्तव्याकर्तव्यका फैसला कर सकता है, अन्धविश्वास कदापि नहीं।*

मजहवसे ज्ञानका वहिष्कार और उसका कुपरिणाम

परन्तु मजहवकी स्थिति ज्ञान पर नहीं वरन् अन्ध-विश्वास पर है। मजहव अपनी आज्ञाओंके लिए वुद्धिग्राह्य युक्तियॉं नहीं वतला सकता। यहॉं हमे धर्मग्रन्थों, ईश्वरके कहे हुए वाक्यो, तथा पुजारियोंके आदेशोंका सहारा लेना पड़ता है। *और जव ज्ञानका इस प्रकार वहिष्कार होता है, तो कोई आश्चर्य नहीं कि हमारे कार्य्य भी ज्ञानसे शून्य तथा पशुवत् होते हैं। इसी ज्ञानके वहिष्कृत होनेके कारण हम मज़हवोंके आदेशोंमें और मज़हवी लोगोंके आचरणमें इतनी विरुद्धता पाते हैं।* अन्धविश्वास पर स्थित होनेके कारण ही, नैतिक सिद्धान्तोंको मानते हुए भी, मजहव इन पर व्यवहार नहीं करता। ईश्वरकी एकता तथा मनुष्यजाति मात्रके भ्रातृत्वको मानते हुए भी मजहवने असंख्योका खून किया है—इतने लोगोकी हत्या की है कि जिनकी हड्डियाँ एकत्रित होने पर ससारके सभी मीनारोंसे ऊँची हो जायॅगी—लोगोको इतनी यत्रणा पहुॅचाई है कि जिसके सामने 'मजहव-कल्पित नरक'की भी यातनायें शायद फीकी पड़ जायॅगी—अहिसावादी होने पर भी मजहवने इतने लोगोके सुख शान्ति और आरामको वलात्कार छीन लिया है तथा उनके चित्तको

श्मशान बनाया है कि वह सर्वथा कल्पनातीत है। मज़हबने सदा ज्ञानका पथावरोध किया है—अपनी अवस्थाके बदलनेकी कोशिशमें मनुष्यके साथ शत्रुता की है और संसारकी उन्नतिको पूर्ण बलके साथ रोका है।

मज़हब और ज्ञान।

हम अपने 'मजहबाच्छन्न' देशके सम्बन्धमे क्या कहे, योरोपमें भी जहाँ कि मजहबका प्राबल्य एकदम घट गया है हम देखते है कि मजहबकी कुचेष्टा और अपकार-प्रियता अभी तक समाप्त नहीं हुई है। आज भी हम देखते है कि कथोलिक इन्साइक्लोपीडिया—कुछ तो बाइबुलका सहारा लेकर और कुछ इस बहाने कि अविश्वाससे बड़ी सामाजिक हानि होती है—धार्मिक असहिष्णुताको प्रतिपादित करता है। ... ...सितम्बर १९०७ के घोषणापत्रमें (encyclical letter) वर्तमान पोपने यह प्रकाशित किया है कि "नवीन विचारके अध्यापक विश्वविद्यालयोमे न बहाल किये जायँ और उनके ग्रन्थोका प्रचार बन्द किया जाय।" *

यह सर्वथा स्वाभाविक है, क्योकि अन्ध-विश्वासपर स्थित होनेके कारण मजहबको ज्ञानका प्रतिरोध करना ही पड़ेगा। *ज्ञान और मजहब मित्र कदापि नहीं हो सकते।* एककी अवनतिसे दूसरेकी उन्नति और एककी उन्नतिसे दूसरेकी अवनति होगी। मजहब (अर्थात् अन्ध-विश्वास) और ज्ञान साथ साथ कदापि नहीं चल सकते। ज्ञानमें स्वतन्त्रता है और मज़हबमे गुलामी; स्वतन्त्रता और गुलामीका साथ

---

* Christianity and Civilization by Charles T Gorham Watts (1914) pp 101—2

किस प्रकार हो सकता है—अन्धकार और आलोक एक ही स्थान-पर किस प्रकार रह सकते है !

ज्ञानसे लाभ।

परन्तु मनुष्यका उपकार ज्ञानके ही द्वारा हुआ है, यह स्पष्ट है। ज्ञान ही मनुष्यके दुःखोको हटा सकता है यह स्वयं-सिद्ध है। ज्ञानके द्वारा मनुष्य प्राकृतिक अभाव-को भी पूरा कर सकता है। ज्ञानके द्वारा वह प्रकृति पर एकाधिपत्य लाभ करता है और प्रकृतिकी शक्तियोसे दासीका काम लेता है। जल, वायु, आकाश उसके आज्ञानुवर्ती बनते है। बक्लने* इसको पूर्णतया सिद्ध कर दिया है कि योरोपकी उन्नति मजहबके घटनेसे हुई। मजहबका प्राबल्य जितना घटा उतना ही योरोप उन्नतिकी ओर अग्रसर हुआ। जितना ही मजहबका अन्धकार कम हुआ उतना ही स्वतन्त्रता देवीकी आभा चहुँओर फैली। जब मनुष्यकी मानसिक गुलामी जाती रही तब उसकी शारीरिक गुलामीका भी अन्त हुआ। बुद्धिके स्वतन्त्र होने पर मनुष्यने राजनैतिक स्वतंत्रता भी प्राप्त की—स्वेच्छाचारी राजाओंके अप्रतिहत बल और असीम अत्याचारोकी इतिश्री हुई। बक्लकी पुस्तकके पढने पर किसीके भी जीमे सन्देह न रहेगा कि ज्ञानके द्वारा ही क्लेशोंसे हमारी मुक्ति हो सकती है।

मजहबको ज्ञानकी आवश्यकता नही है।

मजहब और ज्ञानका एक स्थानमे रहना असम्भव है। भोजन कौन करता है? वही जो भूखा है। इसी प्रकार ज्ञानोपार्जन वही करता है जो ज्ञानका भूखा है—जो ज्ञानसे तृप्त नहीं हुआ है—जो समझता है कि वह कुछ नहीं जानता तथा उसे बहुत कुछ सीखना है। मजहब यह समझता है कि उसे सभी विषयोका ज्ञान प्राप्त है और

---

* देखो Buckle's History of Civilization in England-Humphrey Milford World's Classics Series 3 vols

मज़हबके अनुयायी मज़हबकी बातोंको साक्षात् परमात्माकी बात समझ कर माननेके लिए बद्ध हैं। शंकाका यहाँ कोई स्थान नहीं है। परमात्मा क्या झूठ बतला सकता है? वह भी क्या मूर्ख हो सकता है? यदि कोई शंका कभी भूलसे विद्यमान हुई भी, तो मज़हबी आदमी शीघ्र इसे पाप समझ कर दबानेकी चेष्टा करता है, परन्तु तर्क शंका और अन्वेषणसे ही ज्ञानकी प्राप्ति होती है। सारांश यह है कि मज़हबी आदमीको कोई ज्ञान सीखना नहीं है, वह सब कुछ जानता है।

मनुष्यकी सृष्टि किस प्रकार हुई? क्यों यह कौनसी मुश्किल बात है! शेषशायी भगवानके कमल-नालसे ब्रह्मा उत्पन्न हुए और ब्रह्माहीने मनुष्य जातिकी उत्पत्ति की। क्या बाइबुल और कुरान यह साफ़ साफ़ नहीं कहते कि प्राय: छ: हज़ार वर्ष हुए कि खुदाने छः दिन तक कड़ी मेहनत करके इस संसारकी और सब जीवोंकी रचना की थी और सातवें यानी इतवारके दिन जरा सुस्ताये थे? वर्षा किस प्रकार होती है? यह भी कोई बड़ी बात नहीं है। इसे वरुणदेवकी कृपा या क्रोध ही समझो। क्या सूर्य्य और चन्द्रमा घूमते हैं या पृथ्वी घूमती है? यह भी साधारण ही प्रश्न है। क्या रामचन्द्रजीके जन्मके समय सूर्य्य, और श्रीकृष्णके रास करनेके समय चन्द्रमा, एक ही स्थानपर महीनों तक खड़े नहीं रहे थे? जातियोंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई? यह भी कोई कठिन सवाल नहीं है, क्योंकि यह कौन नहीं जानता कि ब्रह्माके मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय, जंघासे वैश्य तथा चरणोंसे शूद्र उत्पन्न हुए है? लोग बीमार क्यों पड़ते हैं? ईसाई मज़हब साफ़ कहता है कि प्रेतोंके शरीरके अन्दर घुसनेसे। व्याधिसे छुटकारा किस प्रकार मिल सकता है? देवताओंके प्रसन्न करनेसे, ...-पाठ, जप, ब्राह्मण-भोजन इत्यादिसे। (चलिए अब चिकित्सा-

शास्त्रकी कोई आवश्यकता शेप न रही)। मैं गरीब क्यो हूँ, कामोंमें मुझे सफलता क्यों नहीं होती ? यह मेरे खोटे प्रारब्धका दोप है। धनोपार्जनके लिए पुरुषार्थ और अध्यवसायकी जरूरत नहीं। मुझे आज एक अत्यन्त ज़रूरी कामके लिए कलकत्ते जाना था, परन्तु समय पर स्टेशन न पहुँच सका, गाड़ी खुल गई। क्या किया जाय किस्मतहीमें गाड़ी छुटना लिखा था। अधिक उदाहरण कहाँ तक दिये जायँ।

तात्पर्य्य यह है कि जब तक अन्ध-विश्वास बना रहता है तब तक ज्ञान पदार्पण नहीं कर सकता। मजहबके घटनेहीसे योरोपकी तीनो बडी भूलें निर्वासित हो सकी है। प्रथम भूलके कारण राजनीतिमे आत्मबलकी अपेक्षा शासकगणपर ही अधिक भरोसा रक्खा जाता था। द्वितीय भूलके कारण विज्ञानके नामसे लोग अनहोनी बातोंमे विश्वास करते थे। तृतीय भूलके कारण लोग धर्ममे अत्यन्त हिंसक स्वभावके थे। * बक्लने यह भी प्रमाणित कर दिया है कि *मज़हबका एकाधिपत्य जिन देशोंमें जितना ही अधिक समय तक रहा है वे सभ्यतामें उतना ही अधिक पीछे पड गये हैं।* उसने सोलहवीं शताब्दीके इंग्लैण्ड और फ्रांसकी इस प्रकार तुलना की है—" अँगरेज़ोने अपने ध्यान और बुद्धिको ऐहिक बातोंमे लगाया जिसका नतीजा यह हुआ कि सोलहवीं शताब्दीके अन्त तक उन्होंने एक ऐसा साहित्य पैदा कर डाला कि जिसकी मृत्यु कदापि नहीं हो सकती। किन्तु फ्रांस इस समय तक एक भी ऐसी पुस्तक न निकाल सका था कि जिसके नष्ट हो जानेसे

मज़हबसे हानि।

---

* Buckle's History of Civilization Vol. I P. 271 प्रत्येक भारतवासीको यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिए।

योरोप दरिद्र हो सकता है। एक बात और भी है—फ्रांसमे सभ्यताने कहीं पहले जन्म ग्रहण किया था; देशकी आर्थिक अवस्था पहले ही उन्नत हो चुकी थी; इस देशकी भौगोलिक स्थिति इसे योरोपीय विचारका केन्द्र बना रही थी और इसने उस समय साहित्यकी ओर ध्यान दिया था, जब कि हमारे पूर्वज एकदम मूर्ख और असभ्य जंगली थे।

" साधारण उत्तर यही है कि कोई देश तबतक उन्नति नहीं कर सकता जब तक वहाँ मजहबका प्राबल्य बना रहता है।........ सिर्फ बुद्धि-विषयक बातोहीमे यह हालत नहीं है। मजहबका एकाधिपत्य जब तक बना रहेगा तब तक किसी देशकी भौतिक और नैतिक अवस्था भी शोचनीय ही रहेगी, क्योकि मजहबके रहते सहानुभूतिका उत्पन्न होना असम्भव है।" *

योरोपके सभी देशोकी अपेक्षा स्पेनमे मजहबका प्राबल्य कहीं अधिक रहा है और इसी कारण स्पेन सभ्यतामे सभी योरोपीय देशोसे आज तक पीछे है। मजहबसे पूर्णत: जकड़ जाने पर थोड़े ही दिनोमे स्पेनकी क्या दुर्दशा हुई, यह अत्यन्त ही शिक्षाप्रद है।

बक्ल कहते है कि सतरहवी शताब्दीके आरम्भमे (यानी चतुर्थ फिलिप और द्वितीय चार्ल्सके राज्यके पहले) मैड्रिडकी आबादी चार लाख थी और अठारहवी शताब्दीके आरम्भमे वह घट कर दो लाख हो गई। सोलहवी शताब्दीके अन्दर सेविल शहरमे सोलह हजारसे ज्यादे करघे थे और उनमे एक लाख तीस हजार आदमी काम करते थे। चतुर्थ फिलिपके राज्यमे इन सोलह हजार करघोके स्थान पर

* Ib. Vol. II.Pp 7—8

तीन सौसे भी कुछ कम ही शेप रह गये थे । सोलहवी शताब्दीके मध्य टौलेडो शहरमे पचाससे अधिक ऊनके कारखाने थे । १६६५ मे वहाँ सिर्फ तेरह कारखाने जीवित रह गये थे। टौलेडो अपने रेशमी वस्त्रोके लिए मशहूर था, परन्तु यह व्यवसाय भी नष्ट हो गया। सतरहवीं शताब्दीके आरम्भ तक स्पेन अपने दस्तानोके लिए प्रसिद्ध था और वे बहुत देशोमे भेजे जाते थे। परन्तु यह व्यवसाय भी सतरहवीं शताब्दीके मध्य तक एकदम गायब हो गया।........ इग्लैण्डका एक मंत्री स्टैन होप जो १६९९ मे स्पेनमे रहता था लिखता है कि "एक भी ऐसा दिन नही गुजरता कि अन्नके लिए लडाई करके लोग सड़को पर न मरते हो।" १६७९ मे एक लेखकने लिखा है कि मजहवी किताबोके सिवा अन्य सभी ग्रन्थ एकदम व्यर्थ समझे जाते थे। अठारहवी शताब्दीके मध्य तक मैड्रिड-मे एक भी पुस्तकालय न था। स्पेनकी सबसे प्रसिद्ध सैलेमैन्का-यूनिवर्सिटी सन् १७७१ तक निउटन (Newton) के आविष्कारो-को पढानेसे इनकार करती थी। उसका कारण यह था कि ये वाइ-बुलके विरुद्ध थे। डयूक डी सेण्ट साईमन—जो सन् १७२१ और १७२२ मे फ्रासकी ओरसे स्पेनमे दूत होकर गया था—कहता है कि स्पेनमे विज्ञान पापमे और मूर्खता पुण्यमे शामिल है।.... ... १७६० मे कुछ साहसी राजकर्मचारियोने यह राय जाहिर की कि मैड्रिड (Madrid) की सड़कोकी सफाईका प्रबन्ध किया जाना चाहिए। इतनी बड़ी धृष्टतासे लोगोकी कोपाग्नि भड़क उठी। सिर्फ मूर्ख लोग ही नही बल्कि पढेलिखे लोग भी भयानक प्रतिवाद करने लगे। गवर्नमेण्टने डाक्टरोसे राय ली। उन्होने भी निःसङ्कोच राय दी कि गर्देको न हटाना चाहिए। ऐसा करना गोया नये रास्ते पर चलना ठहरा।

उनके पूर्वज सदा गर्द और गन्दगीमे रहे तब वे क्यों नही रह सकते है ? उनके पूर्वज निःसन्देह बुद्धिमान थे और निष्कारण ही वह गर्दमे नहीं रहते थे। नहीं नहीं, लोगोके लिए दुर्गन्धकी शिकायत करना भी फजूल ही था, इससे भी वैज्ञानिक लाभ ही होता था। अतः स्पेनके सभी डाक्टरोंने सहमत होकर यह राय दी कि गर्दे और कूड़ेको ज्यों-का त्यो छोड़ देना चाहिए। . ..फस्द खोलने और जुलाब देने-हीको स्पेनके डाक्टर प्रत्येक बीमारीके लिए परमौषध समझते थे। ये सभी बीमारियोके लिए अचूक अस्त्र थे। *

धार्मिक दृढतामे योरोपके देशोमेसे स्कौटलैण्ड ही कुछ कुछ स्पेन-का सामना कर सकता है। स्कौटलैण्डमे भी अन्य देशोकी अपेक्षा बहुत दिन तक मजहबका साम्राज्य बना रहा है। फलतः सभ्यतामे स्कौटलैण्ड भी बहुत पीछे रहा है। + स्कौटलैण्ड अब तक भी पूर्ण-ताके साथ मजहबसे अपना पिण्ड नहीं छुड़ा सका है। वहाँ धार्मिक असहिष्णुता—धार्मिक हिंसकता—अभी तक प्रबल रूपसे विद्यमान है। स्कौटलैंडनिवासी अभी तक विश्वास करते है कि सिवाय कुछ चुने हुए आदमियोके समस्त मनुष्यजाति नरककी भागिनी होगी। प्राचीन मजहबमे अब तक बहुत बल शेप है। अतएव लोगोंका जीवन निराशासे पूर्ण है। साधारणसे साधारण और एकदम निर्दोप दिल-बहलाव भी बुरा समझा जाता है। मजहब अब तक भी जीवनको श्मशान बनानेकी चेष्टामे लगा है। स्कौटलैण्डकी मानसिक पराधीनताका पता इस घटनासे पूरे तौर पर चल जाता है। सन् १८५३ में

---

* Ib Vol II pp 400–421

+ Ib Vol. III pp 181–82

बकुकी पुस्तक सन १८५७—६१ मे लिखी गई।

स्कौटलैण्डमें हैजेकी वीमारी प्रवल रूपसे फैल गई। दरिद्रोंको भर पेट भोजन कराने, अपनी नालियोंको साफ कराने, कूड़े और गर्देका वहिष्कार करानेकी अपेक्षा यहँकि लोगोंने यह स्थिर किया कि इस वीमारीसे वचनेके लिए उन्हें एक ऐसा दिन नियत करना चाहिए कि जिस दिन समस्त स्कौच जाति भूखी रहे और उपदेशक लोग खूब उपदेश दें तथा मनुष्योंका ध्यान पापकी ओर आकृष्ट करें। इस तरह लोगोंको फिटकारने और उनकी निन्दा करनेसे ईश्वरके प्रसन्न होनेकी सम्भावना थी और इसी तरह वीमारीसे छुटकारा मिल सकता था, अन्य उपायों द्वारा नहीं। *

उदाहरणोंके सम्वन्धमें एक निवेदन।

सभी विज्ञानोंकी मूलभित्ति व्याप्तिवाद (Induction) है। अतएव *अन्य विज्ञानोंकी तरह नीतिविज्ञानको भी व्याप्तिवादकी नीवपर स्थित होना चाहिए।* इस कारण यह पुस्तक भी उदाहरणोंसे भरी हुई होती तो अच्छा होता। परन्तु मैं वहुत उदाहरण नहीं दे सका हूँ। इसका कारण केवल मेरी अयोग्यता ही नहीं है, वरन् स्थानका अभाव भी है। मैं नीति-विज्ञानपर पूरा ग्रन्थ लिखने नहीं वैठा हूँ; और न मुझमें इसकी क्षमता ही है। मैं केवल अपने देशवन्धुओंका ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ। तौभी मैंने अपने सिद्धान्तोंके स्पष्ट करनेके लिए यथेष्ट उदाहरण दे दिये हैं। मैंने केवल अपने देशसे ही उदाहरणोंको नहीं लिया है। अपने सिद्धान्तोंको अच्छी तरह स्पष्ट करनेके निमित्त यदि मुझे अन्य देशोंसे भी उदाहरण प्राप्त हो सके हैं, तो उनके उद्धृत करनेमें भी मैं नहीं हिचका हूँ। कारण यह है कि देश काल और जातिके रहते भी एक सार्वभौमिक मनुष्यजाति अवश्य

---

*Ib. Vol. III pp 474-81.

विद्यमान है जो कुछ समयके बाद निःसन्देह सभी जातीय बंधनो, घृणा और स्वार्थपरताओको छिन्न करके टेनिसनके कथनानुसार संसारके एकीकरण तथा समस्त मनुष्य जातिकी एक ही पार्लिमेण्टके स्वरूपमे (In the Federation of the World and Parliament of Man) व्यक्त होगी। दूसरा कारण भी है। यदि प्रकृतिकी एकरूपता सत्य है तो मनुष्यका इतिहास भी एक ही होना चाहिए। कारणके एक रहनेपर प्रभाव भी एक ही होगा। इसीलिए हमने विशेपकर मजहबी अभिद्रोह और मजहबी अत्याचारोके सम्बन्धमे योरोपसे ही उदाहरण लिये है। योरोपमें ही मजहबका प्राबल्य पूर्ण दृढताके साथ हुआ था। वहाँ ही मजहबके वृक्षमे अनेकों विपमय फल लगे थे। इसीलिए योरोपमे ही हमे मजहबी अत्याचारोके सर्वोत्तम उदाहरण प्राप्त होते है। परन्तु आज हमारे देशकी मजहबी अवस्था ठीक वैसी ही है जो योरोपकी कुछ समय पहले थी। *ऑख खोलकर देखने और विचार करनेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि हमारा वर्तमान मज़हव योरोपके क्रिस्तान धर्मसे भिन्न नहीं है। अतः मजहबके हाथों हम उतना ही सताये जा रहे हैं जितना पूर्वकालमें योरोप सताया जा चुका है, एवं आज भी कुछ कुछ सताया जा रहा है। निस्तारके लिए हमें भी वही मार्ग पकडना होगा जिसे योरोपने पकड़ा है। दुःखसे छुटकारा पानेके लिए हमें भी ज्ञानका आश्रय लेना होगा।*

एक प्रचलित तर्कपद्धतिका विरोध।

योरोपके भीपण महा समरकी ओर इशारा करके आज कल हम संकीर्णता-प्रिय भारतवासी यह कह उठते है कि “विज्ञानकी इतनी प्रशसा व्यर्थ है। देखो इसने योरोपमे किस प्रकार शोणितकी सरिता वहाई है, किस प्रकार दुर्वलों पर अत्याचार कराया है, किस

प्रकार विज्ञानकी जानकारी मनुष्यके विनाशमें—असंख्यों मनुष्योंके वध करनेमे—लगाई गई है, ज्ञानका योरोपने बहुत दुरुपयोग किया है, प्राकृतिक ज्ञानने योरोपको नरहत्यामें बडी सहायता दी है, अतएव ज्ञानको परम लक्ष्य न समझना चाहिए। पाश्चत्य जातियाँ धन विभवके वढानेके चक्करमें हैं। हम भारतवासियोको पश्चिमकी इस आधिभौतिक सभ्यताकी आवश्यकता नहीं है।" आज कल तर्क करनेका यही फ़ैशन है। पाश्चात्य सभ्यताको भौतिक और अपनी सभ्यताको आध्यात्मिक कह कर हम झट पाश्चात्य जगतके विज्ञान और आविष्कारोको विपवत् त्याग करनेके लिए तत्पर हो जाते है। परन्तु मै पूछता हूँ कि वर्तमान वैज्ञानिक उन्नतिके पूर्व क्या योरोपमे लडाइयाँ न हुआ करती थीं ? मज़हबी योरोपमे अधिक लड़ाइयाँ हुई है या वैज्ञानिक योरोपमे ? पुनः वर्तमान योरोपीय युद्ध क्या यह वैज्ञानिकोंका—या योरोपके दार्शनिकोंका—भड़काया हुआ है या मजहबी लोगोका ? क्या प्रायः प्रत्येक वद्ध-समर योरोपीय देशोंके गिरजोसे लोगोको युद्ध करनेकी उत्तेजना न दी जाती थी ? और उनका धैर्य्यवर्द्धन न किया जाता था ? क्या विलियम कैसर यह न समझता था कि वह इसी लिए अवतरित हुआ है कि वह देशोको विजय करे ? क्या इंग्लैण्ड प्रभृति देशोको पराजय करना वह अपना ईश्वर-निरूपित कर्तव्य न अनुमान करता था ? क्या जर्मनीके प्रत्येक गिरजेसे जुझाऊ बाजोसे भी अधिक उत्तेजक प्रोत्साहनकी ध्वनि न उठती थी ? क्या प्रत्येक देशके गिरजोमें विजय प्राप्तिके लिए ईश्वरकी प्रार्थना न की जाती थी ? यदि ज्ञान ही युद्धका कारण है तो संसारकी असभ्य जातियोमे युद्धका नाम और निशान भी न पाया जाना चाहिए था—उनहींको पूर्ण अहिंसावादी होना चाहिए था। यदि सुखोपभोग—ऐहिक आनन्द और

आराम—ही लड़ाइयोके जनक है तो आओ हम अपने भवभूति और कालिदासको तिलाजलि देकर जगलियोके सांग्रामिक गीत गायें, अपने न्याय और वेदान्तको छोड़कर नर-बलिदान आरम्भ करें और चन्दन, अक्षत, पुष्प, मिष्टान्न इत्यादिके बदले नररक्तसे ही अपने देवताओ तथा ईश्वरको प्रसन्न करे। यदि भौतिक सभ्यता बुरी वस्तु है तो आओ हम अपने वस्त्रोको अभी उतार फेके और छाल और वल्कल धारण करे—पकाकर नाना प्रकारके उत्तम भोजनोका खाना छोड़ दे और कच्चे कन्द मूल खाना तथा मासभक्षण करना आरम्भ करे। सुन्दर मकानोको तोड डालें—ताजमहलको अभी भस्मीभूत कर डाले—और पर्णकुटीमे रहना शुरू करे। यदि भौतिक सभ्यता बुरी वस्तु है—सुखोपभोग विष है—तो आओ शीघ्र वीणाको चूल्हेमे लगा दे, इसराज और तानपूरेको चूर चूर कर डाले। संसारके सभी पुस्तकालयोको अभी अग्निको समर्पण कर डाले। इस तर्कका पूर्ण उत्तर पाठकोंको इस पुस्तकमे कई स्थानो*पर मिलेगा। यहाँ उसके विस्तारकी आवश्यकता नहीं है।

युद्धकी जड ज्ञानमे नही वरन् मनुष्यके स्वभावमे है। मनुष्यने अपने प्राचीन हिंस्रस्वभावको पूर्णताके साथ अभीतक परित्याग नहीं किया है—पशुताका अवशेष उसमे अभीतक विद्यमान है। इसलिए समय समय पर वह अबतक भी ज्ञानका दुरुपयोग करता है। परन्तु इसलिए क्या हम ज्ञानके बदले अज्ञानको और सभ्यताके बदले असभ्यताको—ग्रहण करेंगे?

इस ससारमें दुरुपयोग किस वस्तुका नहीं होता? भोजन करना मनुष्यके लिए कितना आवश्यक है? क्या विना भोजन किये मनुष्य

* देखो अध्याय ३ और १०।

जीवित रह सकता है ? परन्तु ठीक तौर पर, ठीक रीतिसे और ठीक परिमाणमे भोजन न करनेसे ही मनुष्य कितनी बीमारियोमे फँस जाता है। तो क्या इसलिए हमे यही उचित है कि हम भोजन करना ही छोड़ दें ? भारतीय गवर्नमेण्टने लड़ाई दंगोंके बन्द करनेके ख़यालसे लोगोसे हथियार छीन लिये है; इसी तरह क्या गवर्नमेण्टको यह भी नियम बना देना चाहिए कि कोई मनुष्य भोजन करे ही नहीं, क्योंकि अधिक भोजन करके अक्सर मनुष्य अजीर्ण और हैजेका शिकार बन जाता है ? मनुष्यके लिए अग्नि कितनी अवश्यक वस्तु है; परन्तु मनुष्य इस अग्निका कितना दुरुपयोग करता है और इसके द्वारा अक्सर कितनी हानि होती है ? तो क्या इसलिए यही उचित है कि मनुष्य अग्निसे एकदम काम लेना ही छोड़ दे ?

मनुष्यकी पशुताको ज्ञान और सहानुभूति ही कम कर सकती है, मज़हब नहीं। आगे चल कर इसका पूरा प्रमाण मिलेगा।

भारतमें मज़हबी अत्याचार

कहा जा सकता है कि हमारे देशमे मजहबी लड़ाइयोंका नाम भी नहीं सुना जाता—हमारे धर्मको सत्य, ज्ञान और विज्ञानके राहमे खड़ा होते हुए नहीं पाया जाता। इसका कारण यह है कि पूर्व समयमे हम मजहबी न थे; परन्तु जबसे हमने मज़हबी होना शुरू किया तबसे निःसन्देह हमारे यहाँ भी योरोपके मजहबी अग्निकुण्डमेंसे—जिसमे असंख्यो मनुष्योंका हवन किया गया था—कुछ कुछ चिनगारियॉ उड़ उड़ कर आने लगी है। अन्ध-विश्वासका जबसे हमारे यहाँ साम्राज्य हुआ है उसी दिनसे हमने अत्याचार आरम्भ किया है। क्या हमारे यहाँ धार्मिक अत्याचार एकदम नहीं है ? निष्पक्ष होकर देखनेवाला किस तरह अस्वीकार कर सकता है ? एक गोवधके ही मसले पर क्या क्या नहीं हो जाता है! हमारी

राजनैतिक उन्नतिके पथको इसने किस प्रकार कण्टकाकीर्ण कर रक्खा है! पुनः निराकारवाद और साकारवाद, हिंसावाद और अहिंसावाद, सनातनधर्म और आर्य्यसमाज प्रभृतिके झगड़े क्या कम गजब ढाते हैं! हम अत्याचार करना अवश्य चाहते हैं परन्तु मौका नहीं मिलता।

और क्या भारतीय इतिहासमें धार्मिक अत्याचारोंके दृष्टान्त एकदम नहीं मिलते? हमारे यहॉ भी इन्क्वीजिशन (Inquisition धार्मिक कचहरियॉ) विद्यमान थीं। अशोकने एक धार्मिक पुलीस विभाग स्थापित किया था जिसकी खुफिया पुलीस (Censors) को सभी व्यक्तियों पर—सभी धर्मके, सभी सम्प्रदायके, सभी श्रेणीके मनुष्यों पर—अधिकार था। लोगोंके आचरणको, और विशेष कर अहिंसाके सम्बन्धमें लोगोके कार्य्योंकी तहकीकात करना, तथा अपराधियोंको दण्ड दिलाना, यही इनका कर्तव्य था। स्त्रियोके आचार-निरीक्षणके लिए अलग गुप्तचर होते थे। अशोककी उक्त खुफिया पुलीसके बहुत कुछ अर्वाचीन नमूने भी मिलते हैं। सन् १८७६ में काश्मीरके सिंहासनको एक धार्मिक महाराजा सुशोभित करते थे। उनके राज्यमें शास्त्रके नियमोंको न पालन करना जुर्म समझा जाता था, जिसकी जॉचके लिए एक ख़ास कचहरी थी! इसमें पॉच पण्डित होते थे जो अपराधियोको उचित दण्ड दिया करते थे। जाति-नियम भग करनेवालोंको सजा देनेके लिए उन्नीसवीं शताब्दीके मध्यतक—या शायद और बाद तक भी—खानदेश, दक्षिण और कोंकण इत्यादिमे पण्डितोंकी ऐसी बहुतसी कचहरियॉ विद्यमान थीं। ये कहॉं तक अनर्थ करती होगी यह पाठक स्वय अनुमान कर सकते हैं। सातवीं शताब्दीमें हर्षवर्द्धन किसी जानवरके मारने और मास-भक्षण करनेके अपराधमें प्राणदण्डकी सज़ा बड़ी खुशीके साथ देता था। अपराधीको कदापि क्षमा प्रदान

नहीं किया जा सकता था। बारहवीं शताब्दीके अन्तमे गुजरातके राजा कुमारपालको भी अहिसाके प्रचारका असीम जोश चढा था। एक चीलड़ मारनेके अपराधमे एक अभागे सौदागरकी अणहिलवाड़ाकी खास कचहरीमे जॉच हुई थी तथा उसका सब माल ज़ब्त हुआ था। एक और मनुष्य राजधानीमे कच्चा मास लानेके कारण फॉसीपर चढाया गया था! *

---

* इतिहासमें इस देशके धार्मिक अत्याचारोंके और भी अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। अभी थोड़े समय पहले महाराजा कालेज विजयानगरम्‌के इतिहासाध्यापक श्रीयुत एम. एस. रामस्वामी आयगर एम० ए० ने अँगरेजीमें एक गवेषणापूर्ण लेख लिखा था जिसका कि अनुवाद 'जैनहितैषी' नामक मासिकपत्रमें (भाग १५, अक १–२)' तामिल प्रदेशोमे जैनधर्मावलम्बी' शीर्षक देकर प्रकाशित किया गया है। उसमे लिखा है कि "ईसाकी सातवी शताब्दिके मध्यमें 'तिरुज्ञान सभाण्ड' नामक शैवाचार्यने कुनपाण्ड्य नामक जैन राजाको शैवमतावलम्बी बनाया और उसे जैनोंके विरुद्ध उत्तेजित किया। फल यह हुआ कि उस समय जैनोंके प्रति ऐसी निष्ठुरता और निर्दयताका व्यवहार किया गया जैसा दक्षिणभारतके इतिहासमें कभी नही हुआ। सभाण्डके घृणाजनक भजनोंसे—जिनके प्रत्येक दसवे पदमें जैनधर्मकी निर्भत्सना की गई है—यह स्पष्ट है कि वैमनस्यकी मात्रा कितनी बढी हुई थी। .दक्षिण भारतमे जैनियोंकी विनष्ट प्रतिमायें, परित्यक्त गुफायें और भग्न मन्दिर इस बातके स्मारक हैं कि प्राचीन कालमे जैनसमाजका वहॉ कितना विशाल विस्तार था और किस प्रकार ब्राह्मणोंकी धार्मिक स्पर्धाने उनको मृतप्राय कर दिया। जैनसमाज विस्मृतिके पटलमे लुप्त हो गया; उसके सिद्धान्तो पर गहरी चोट लगी, परन्तु दक्षिणमे जैनधर्म और वैदिक धर्मके मध्य जो कराल संग्राम और रक्तपात हुआ वह मदुरामें मीनाक्षीके मन्दिरके स्वर्ण-कुमुद सरोवरके मण्डपकी दीवारोंपर अकित चित्रोको देखनेसे अब भी स्मरण हो आता है। इन चित्रोंमे जैनियोके विकराल शत्रु तिरुज्ञान संभाण्डके द्वारा जैनियोंके प्रति किये गये अत्याचारों और रोमाञ्चकारी यातनाओंका चित्रण है। इस करुणाकाण्डका यहीं अन्त नही होता है, मदुरा-मन्दिरके बारह वार्षिक त्योहारोंमेंसे पॉचमे यह हृदयविदारक दृश्य अब भी प्रतिवर्ष दिखलाया जाता है! .."

—प्रकाशक।

संसारके आदि युगोंमें मज़हवसे उपकार।

अब मुझे इस ग्रन्थके सम्बन्धमे केवल एक बात और कहनेकी आवश्यकता है। इस ग्रन्थके पढनेपर पाठकवर्ग शायद यह कहेगे कि इसमे मजहवकी जरा कड़ी आलोचना की गई है। परन्तु मज़हवसे द्वेप रखनेके कारण मैने ऐसा नहीं किया है वरन् इसमे जो कुछ लिखा गया है वह केवल सत्य-जिज्ञासाकी प्रेरणासे। संसारकी उन्नतिमें मजहवने जो भाग लिया है उसे मैं मुक्तकण्ठसे स्वीकार करता हूँ नर-विज्ञान (Anthropology) के विद्यार्थियोसे यह बात छिपी नही है कि मजहव ही सभी रीति-नीति रस्म-रिवाज, नियम और कानूनोका जनक है। मजहवहींके द्वारा सारी शासन-प्रणालियोकी उत्पत्ति हुई है। यदि प्राचीन असभ्य समयके सरदारके चारो ओर मजहब जनित आभा और विभीषका नहीं होती—यदि सरसे पैर तक मज़हब उसे विलक्षणतासे न ढॉक देता—यदि उसपर रहस्यका परदा न पड़ा होता—यदि वह निरा मनुष्य ही समझा जाता तो उसकी आज्ञाको कौन मानता?

आज्ञाधीनताको मनुष्यने मज़हबसे ही प्राप्त किया है। प्राचीन मनुष्यकी हिंसक और स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति शायद पशुओसे कम न थी। इस प्रवृत्तिको मजहबके अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु दमन नहीं कर सकती थी। अदृश्य देवताओ और प्रेतोके भयके अतिरिक्त कोई वस्तु उसकी असीम स्वार्थपरताको, उसकी अविरल रक्तपिपासाको, उसकी भयङ्कर हिंसकताको न हटा सकती थी। अतएव मनुष्य अपनी सभ्यावस्थामे मजहवके उपकारको कदापि नहीं भूल सकता।

सामाजिकताका अर्थ ही है व्यक्तिकी उच्छृंखलता—उसकी स्वच्छ-

 समाजमे रहनेसे मनुष्यको मनमाने रूपसे काम

करनेकी स्वतंत्रता नहीं रहती। समाज उसके खाने पीने, पहरने ओढ़ने, विवाह पुत्रोत्पादन, हँसने रोने प्रभृति सभी बातोंके लिए नियम बनाता है। परन्तु आदि समयमे मनुष्य अपनी स्वतंत्रताको हर्ष और इच्छापूर्वक कदापि नहीं छोड़ सकता था। उसकी आसामाजिक, स्वेच्छाचारी प्रवृत्तिको पूर्ण बलके साथ दमन किये जानेकी आवश्यकता थी।

आदि समयमे मजहब, कानून, रीति, रस्म, और आचार, व्यवहारमे कोई अन्तर न था। इन सबका उद्गमस्थान एक ही है। इनके पारस्परिक सम्बन्धको समाज-शास्त्रके पण्डितोंने पूर्णतया प्रमाणित कर दिया है।

संक्षेपमे इस सम्बन्धको यहाँ पर दिखलाना एकदम अप्रासागिक न होगा। प्रायः सभी प्राचीन और असभ्य मानव-समाजोका यही हाल रहा है कि जिस आदमीमे अन्य मनुष्योकी अपेक्षा बुद्धि, बल और चालाकीकी मात्रा अधिक होती है—तथा जिसने उन कामोको किया हो जिनके करनेमे अन्य मनुष्य असमर्थ रहे हो—वह मनुष्य अलौकिक, दिव्य समझा जाता है। वह मनुष्य देवता अनुमान किया जाता है। मरनेके पश्चात् तो उसकी अलौकिक, और चमत्कारात्मक शक्तियाँ और भी बढ जाती है और उसे वह महत्ता प्राप्त होती है कि जिसके द्वारा वह देवता बन जाता है और उसकी पूजा होने लगती है। इसी तरह मज़हबकी उत्पत्ति होती है। कोई भी समाजशास्त्रका विद्यार्थी अस्वीकार नही कर सकता कि मृत सरदार ही प्राचीन समयका देवता होता था। पुनः भयके कारण ही उसकी पूजा होती थी। यह मज़हबके सभी ऐतिहासिको पर विदित है। भय ही मजहबकी मूल भित्ति है, भय ही मजहबका अन्तरात्मा है, भय ही मज़हबकी जान है—

यह किसी प्रकार अस्वीकार नही किया जा सकता । प्राचीन मनुष्य पूर्णतः भयका शिकार बना हुआ था । वह भयके मारे, मजबूरीसे ही पूजा करता था, इच्छापूर्वक प्रसन्नतासे कदापि नहीं । उसे देवताओमे श्रद्धा या भक्ति न थी । वह हृदयसे कामना करता था कि ये देवता या देवियॉ न होती और वह इनसे स्वतंत्र होता; परन्तु उसके पास उपाय ही क्या था ? वह इन देव देवियोकी उपेक्षा किस प्रकार कर सकता था ? इनका निरादर करके इनकी अप्रसन्नताके भयकर परिणामोंके सहन करनेका साहस उसमें न था । उसका जीवन ही 'मज़हब-मय' था । उसका समस्त जीवन इन देवताओंकी अप्रसन्नताके रोकनेमें व्यतीत होता था । इसी भयके द्वारा मानव-जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमे आज्ञाधीनताका पदार्पण हुआ है आदि समयमे राजनीति और मज़हबमे कोई भेद न था । मज़हब मनुष्यके प्रत्येक कामको, उसके सारे जीवनको आलिङ्गन किये हुए था । आदि समयमे पुरोहित और शासक प्रायः एक ही थे । मनुष्यकी प्रायः सभी सामाजिक संस्थाओका जन्म मज़हबके ही द्वारा हुआ है । मनुष्यके आपसके प्रणाम, जुहार, सलाम, बन्दगीकी रीतियोका भी जन्म मज़हबहीसे हुआ है । *

जिस प्रकार मजहबने ससारका हित किया है, उसी प्रकार लड़ाईसे भी ससारका वहुत उपकार हुआ है । लडाईके (जीवन-सग्रामके) द्वारा ही चौपाये मनुष्यमे परिवर्तित हुए है । लड़ाईहीने मनुष्यको दिव्य अस्त्रोंके बनानेकी शिक्षा दी है । लडाईहीके द्वारा मनुष्यने देशोको विजय

---

* इस विषयको सक्षेपमे स्पेन्सरने बडी उत्तमताके साथ अपने Manners and Fashions नामक निवन्धमे वर्णन किया है See Spencer's Essays, Vol III Eassay On Manners and Fashions.

किया है और अपनी जाति और देशके गौरवको तथा धन धान्यकी वृद्धि की है। लड़ाईहीने छोटी छोटी जातियोंको एक बडी जातिमें संम्मिलित कर एकताको बढाया है। विना लडाईके जाति-निर्माण किस प्रकार सम्भव हो सकता? लड़ाईहीके द्वारा बडी बड़ी सल्तनते कायम हुई। लडाईहीने मनुष्यको वाणिज्यकी शिक्षा दी। लड़ाहीने एक जातिको दूसरी जातिसे परिचित कराया, तथा सभ्यताको फैलानेका पथ निर्माण किया। लड़ाईहीके सदृश गुलामीकी प्रथाने भी मनुष्यजातिका परम हित किया है। उदाहरणके लिए केवल यूनानी नगर-राष्ट्रों (City States) को ले लीजिए। क्या विना इस प्रथाके ये नगर-राष्ट्र इतने उन्नत तथा सुख, सौन्दर्य्य, ज्ञान या सभ्यताकी खानि हो सकते थे? और फिर आधुनिक सभ्यताकी नीव ग्रीस सभ्यताहीमें है. इसे सभी इतिहासज्ञ भलीभाँति जानते हैं।

परन्तु सभ्यावस्थामें पहुँच कर मनुष्य इस लडाई और गुलामीको अविज्ञाकी दृष्टिसे देखता है। जिस लड़ाई और गुलामीसे उसका इतना हित हुआ है अव वही उसका अनिष्ट करती है—उसकी उन्नतिके पथमे खडी होती है। इसी प्रकार जिस मजहवने प्राचीन और असभ्य युगोमे मनुष्यका इतना उपकार किया है अव वह मनुष्यके आगे वढनेमे उसका पथावरोध करता है। किसी मूर्तिके गढनेमें एक मूर्ति तक्षक जिस प्रकार पहले वडे वड़े और भारी औजारोसे काम लेता है और क्रमसे वह उन औजारोंको फेक कर वारीक और वहुत वारीक औजारोंका प्रयोग करता है उसी प्रकार प्रकृति भी पहले लडाई. गुलामी या मज़हव प्रभृति मोटे औजारोका आश्रय ग्रहण कर पीछे उन्हें पूर्णतः अनावश्यक समझ कर एकदम फेंक देती है।

प्राचीन क्षुद्र संकुचित स्वार्थतापूर्ण मजहबोंसे अब मनुष्यकी संतुष्टि नहीं हो सकती । अब उसे नैतिक धर्म—विश्वधर्म—की आवश्यकता है ।

निष्पक्षताकी प्रार्थना ।

इस पुस्तकके सम्बन्धमें अब और अधिक बाते लिखकर मै पाठकोको ठहराना नहीं चाहता । प्रार्थना केवल इतनी ही है कि इस पुस्तकको आद्योपान्त पढे बिना पाठकवर्ग कोई राय कायम न कर ले, तथा ग्रन्थकर्ताके विचारोंसे असन्तुष्ट होकर दो ही चार अध्यायोंके खतम करनेपर ग्रन्थको फेककर झुँझला न उठे । ग्रन्थकर्ताके विचार और ग्रन्थके उद्देशका पता पुस्तकको एक वार आदिसे अन्त तक पढे बिना नही लग सकता । हो सकता है, मै भूल कर रहा हूँ, परन्तु तौभी मैने अपने विचारोको युक्ति और प्रमाणसे प्रतिपादित किया है । यदि पाठकवर्ग निष्पक्ष होकर विचार करेगे और अपने स्वतत्र तर्क अनुमानके द्वारा यदि इस लेखकके विचारोसे एकदम भिन्न विचारो पर भी पहुँच जायँगे तौ भी मैं अपने परिश्रमको सफल मानूँगा । मै केवल मात्र निष्पक्षता और सहानुभूतिका प्रार्थी हूँ । क्या लेखकको पाठकोसे इतनी भिक्षा मिलेगी ? क्यो कर कहा जाय, लोगोके मानसिक झुकाव और चित्तवृतिको देखकर आशा तो नहीं होती । परन्तु गालियोके डरसे अपने विचारोंको छिपाये रखना भी कायरता है । इसी लिए उसने परिणामकी कुछ भी परवा न करके अपने विचारोको निर्भीकताके साथ व्यक्त करनेकी चेष्टा की है । उसने तो अपने कर्तव्यके अनुसार कार्य किया है, अब हिन्दी संसार उसे चाहे जो पुरस्कार दे !

दूसरा अध्याय ।

नीतिविज्ञान और उसकी उपयोगिता ।
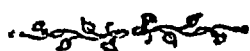
प्रथम प्रश्न यह है कि अन्य विज्ञानोकी तरह **आचार-नीतिका विज्ञान** (Science of Ethics) **सम्भव है या नहीं ?**

पाठकवृन्द, जरा भी ध्यान देनेसे यह स्पष्ट हो जायगा कि सदा-*चार मनुष्यके सामाजिक जीवन-विज्ञानके क्षेत्रसे वाहर नहीं है।* विज्ञान यहाँ भी अपना साम्राज्य बडी सुन्दरताके साथ स्थापित कर सकता है, और निस्सन्देह मानवहितके लिए इसकी बड़ी आवश्यकता है ।

प्रथम आप देखें कि **विज्ञानका क्या उद्देश है।** विज्ञानका उद्देश है *प्रकृतिकी एकरूपता* (Uniformity of Nature), *प्रकृतिके सर्वव्यापक अपरिवर्त्तनीय नियमोंको घोषण करना, यह प्रमाणित करना कि संसारके सभी कार्य्य नियमके अधीन है, राई-से पर्वत, तिलसे ताड़, अदनेसे अदने भृङ्गसे लेकर सृष्टिके स्वामी मनुष्य तक पर प्राकृतिक नियमोंका एकाधिपत्य है। हर जगह नियम विद्यमान हैं,* हो सकता है कि हम उससे अनभिज्ञ हो । हर स्थान पर प्रबन्ध है, कारण-करण (Law of Causation) का सिलसिला सर्वत्र जारी है । अनियम, कुप्रबन्ध, बेतरतीबी कहीं भी नहीं । यह अटल नियम न तो कभी टूटता है और न किसीमे इसके तोडनेकी—इसके बदलनेकी—शक्ति ही है । निःसन्देह

इसके न स्मरण रखनेके कारण ही मनुष्य अनेक वार भ्रम प्रमादमें पड़ा है, आज भी पड रहा है और अनेक वार अन्धकूपमें ढकेला गया है।

प्राकृतिक नियमका क्या अर्थ है ? प्राकृतिक नियम *वस्तुओंके सिलसिलेको कहते है, जिस सिलसिलेमें वह (प्रकृति) हमेशा उपस्थित हुआ करती है।* इन नियमोंके द्वारा हमे कारण करण (Causation) का पता चलता है, हमे यह माळूम होता है कि घटनायें एकके वाद एक सदा किस प्रकार घटा करती है, हमें यह ज्ञात होता है कि किसी दी हुई अवस्थामे—यदि बीचमें कोई वाधा उपस्थित न हो जाय—किसी कारणका क्या नतीजा होगा। *प्राकृतिक नियम हमें यही वतलाते हैं कि कुछ घटनायें सदा एक प्रकारसे घटीं है और सदा इसी प्रकार घटती जायँगी,* कारण और प्रभावका सिलसिला सदा चला ही जायगा, किसीके—स्वयं परमात्माके भी मध्यगत होने-से यह टूटनेवाला नहीं।

आचार-शास्त्र (Ethics) मनुष्यके सामाजिक जीवनका विज्ञान है। इसे मनुष्यके सामाजिक रहन-सहनसे सरोकार है। इसलिए इसे **भौतिक** (Physical) और **मानसिक** (Mental) दोनो तरहकी बातोका विचार करना पड़ता है। भौतिक बातो पर प्रकृतिके अवश्यम्भावी नियमोंके अखण्ड एकाधिपत्यको अब कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता। जैसे अब कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि अम्लजन और उज्जनके योगसे जो पदार्थ वनेगा वह पानीके अतिरिक्त और कुछ नही हो सकता है, या एक निर्दिष्ट ताप-परिमाणमे रक्खे जानेसे कुछ पदार्थ पिघल जाते है, या सर्दीसे पदार्थ सिकुडते है और गर्मीसे ... है, इत्यादि। पाठको, मैं आपको तुरन्त सन्तुष्ट कर दूँगा कि

मनुष्यका चित्त—उसका दिल और दिमाग भी उसी प्रकार प्राकृतिक नियमोंके अधीन है।

मनुष्य निःसन्देह स्वतन्त्र है, पर उसकी स्वतन्त्रता पूर्णतः सीमाबद्ध और नियमाधीन है। निःसन्देह हम अपनी इच्छाके अनुसार सोच विचार सकते है, और काम कर सकते है, इसमे कोई भी बाधा नही। यदि हम चाहे तो दिन भर बैठे रहे, हम चाहे तो चौबीसो घण्टे परिश्रम करते रहे। हमारा काम हमारी इच्छाके अधीन है, परन्तु *मनुष्यके स्वभाव पर वशानुक्रम*(Heridity)*और परिस्थिति* (Environment) *एवं उसकी शारीरिक बनावटके नियमोंके प्रभावको कौन इनकार कर सकता है?* केवल हमारा शारीरिक सगठन ही नही वरन् हमारी मानसिक बनावट भी हमे अपने पूर्वजो द्वारा प्राप्त हुई है। पुन॰ परिस्थितिके अगाध प्रभावको कौन माप सकता है? हमारी आचार-बुद्धि—हमारे रहने सहनेकी रीति—सर्वतः हमारी परिस्थिति (Environment) के अधीन है। हम जिस देशमे, जिस समयमे, जिस अवस्थामे पैदा होगे वैसे ही हमारे तरीके भी होगे। *हम वंशानुक्रम और परिस्थितिके हाथों उसी प्रकार नचाये जाते हैं जिस प्रकार नटके हाथो कठपुतली।* एक अँगरेज या मुसल्मानकी आचारबुद्धि हमारी आचारबुद्धिकी अपेक्षा इतनी विपरीत क्यो है? हम गोमास-भक्षण करना महापातक और मुसल्मान इसे अपना धर्म क्यो मानते है? हिन्दू एक प्रकारका वस्त्र पहनते है, एक प्रकारका भोजन करते है, एक प्रकारकी शिखा रखते है, अन्य जातिवाले अन्य प्रकारकी। उनका गृह-प्रबन्ध एक प्रकारका है, दूसरे लोगोका दूसरे प्रकारका। वे एक प्रकारके मकानमे पूजा करते है, दूसरे लोग भिन्न प्रकारके मकानमे। वे एक मन्त्रसे ईश्वरकी

मनुष्य कहाँ-तक स्वतंत्र और कहाँ-तक प्राकृतिक नियमोंके अधीन है?

उपासना करते है, और इसीको सर्वोत्कृष्ट और दूसरोको एकदम झूठा और फजूल समझते हैं। मुसल्मान दूसरे मन्त्रका प्रयोग करता है और उसीको सत्य और अन्य सभीको असत्य और काफिराना मानता है। एक पूर्व दिशा तथा रविवारको पवित्र समझता है, तो दूसरा पश्चिम दिशा और शुक्रवारको। एकके लिए गो-मास निषिद्ध है, तो दूसरेके लिए सूअर-मास। इसके क्या कारण है? देखिए हम अपने भोजन-पानमे, अपने वस्त्र-आभरणमे अपने विवाह-सन्तानोत्पादनमे, नहीं नहीं अपने रोने हँसनेमे भी, कहाँ तक अस्वतन्त्र है।

मनुष्य पूर्णतः नियमाधीन है।

विचार कर देखनेसे यह स्पष्ट होगा कि मनुष्य प्रकृतिके हाथोंमें उतना ही असमर्थ है जितना कि जड़ जगत्—वह भी उसी प्रकार नियमाधीन है जिस प्रकार समस्त निर्जीव पदार्थ। मनुष्यकी सभ्यता, उन्नति प्रभृति सभी वस्तुये उसके देशके जल-वायु, पृथ्वीकी उर्वरता तथा अनुर्वरता, भोजन प्राप्त करनेमे सुगमता या कठिनाई, इत्यादि बाह्य कारणोंपर निर्भर है। सभ्यताने भारतमे, मिश्रमे, या ब्रैबिलौनमे योरोपकी अपेक्षा पहले क्यो जन्म ग्रहण किया? पुनः भारतकी सभ्यता एक प्रकारकी और योरोप तथा दूसरे देशोंकी दूसरे प्रकारकी क्यो है? एक देशकी शिल्पकला कविता एक प्रकारकी तथा दूसरे देशकी दूसरे प्रकारकी क्यों है? परिस्थितिका प्रभाव अगाध है और मनुष्य इनके अधीन जड पदार्थोंसे कम नही है।

एक अद्भुत प्रमाण।

मनुष्य कहाँ तक नियमाधीन है, इसे बक्लने बड़ी विस्मय-कारक रीतिसे स्पष्ट कर दिया है। मनुष्यके कार्य्य नियमके अधीन है या नही—तथा समाजकी किसी दी हुई अवस्थामे अपराधोकी सख्या समान रहती है या नहीं—

यह जाननेके लिए बक्लने विविध विषयोके ऊपर बहुतसे देशोके अङ्कपत्रों (Statistics) को एकत्रित और अध्ययन करना शुरू किया। इसमे उन्हे अद्भुत सफलता प्राप्त हुई। बक्लने देखा कि प्रत्येक देशमे प्रत्येक साल हत्या प्रभृति अपराधोकी सख्या बराबर ही रहती है। प्रत्येक साल आत्म-हत्या करनेवालोंकी सख्या भी उन्हे बराबर ही मिली। इन सबके अतिरिक्त मनुष्यके कार्य्योंके नियमाधीन होनेका उन्हे एक और अत्यन्त आश्चर्य्य-जनक प्रमाण प्राप्त हुआ। वे कहते है कि "लण्डन और पेरिसके डाकख़ानोने कुछ समयसे ऐसे पत्रोका कोष्टक छापना शुरू किया है कि जिनपर पत्र लिखनेवाले पता लिखना भूल गये हो और हर वर्ष उनका हिसाव पूर्व वर्षके हिसाबकी हू बहू नकल माल्रूम होती है। हर वर्ष पत्र लिखनेवालोकी एक ही संख्या इस साधारण बातको भूल जाती है! यहाँ तक कि हम प्रतिवर्ष अग्रिम बतला सकते है कि कितने लोगोकी स्मरण शक्ति उन्हे धोखा देगी।"

तब मनके ऊपर बाह्य जगत् एवं शारीरिक घटनाओका प्रभाव किस प्रकार अस्वीकृत हो सकता है? यह सच है कि हम जब चाहे तब बैठें, जब चाहें तब काम करे, जब चाहे तब खेलें, परन्तु क्या शरीरके रोगसे अनुतप्त होनेपर भी? कोई अमङ्गल समाचारके सुननेपर हम क्यो चैतन्यशून्य हो जाते है? आपत्ति आ पडनेपर हम क्यो कातर हो उठते हैं? उस समय हमारी आजादी कहाँ चली जाती है? यदि आप एक खाद्य वस्तुको ही लेकर देखेगे तो आपको पता चल जायगा कि विविध प्रकारके भोजनका विविध मनुष्योपर क्या प्रभाव पडता है। कौन आदमी इनकार कर सकता है कि किसी दी हुई अवस्थामे एक साधारण व्यक्ति एक प्रकारका काम न करेगा? घोर अनशन सहनेपर यदि कोई चोरी कर डाले अथवा अनेकानेक

मानसिक तथा शारीरिक कष्टोके सहनेपर यदि कोई आत्महत्या करनेपर भी उतारू हो जाय, तो इसमे आपको क्या आश्चर्य प्रतीत होगा? कुसंगतिमे रहनेपर यदि कोई स्वयं दुश्चरित्र हो जाय तो इसमे आपको क्या विस्मय होगा? हम जानते है कि मधुर वचनोंसे, अच्छे व्यवहारसे लोग प्रसन्न होते हैं और कटुवचन और दुर्व्यवहारसे खिन्न, इत्यादि। यह साधारण विषय है, इस पर अधिक कहना वाक्यबाहुल्यके अतिरिक्त कुछ भी नहीं। हम जानते हैं कि आशा, भय, प्रेम, घृणा, दया, सहानुभूति इत्यादि सभी भाव मनुष्योंपर अपना प्रभाव डालते है।

नीति-विज्ञानकी अपूर्णता।

यहाँ पर मै अपनी कठिनाई स्वीकार कर लेना ही ठकि समझता हूँ, क्योकि मनुष्य केवल **चैतन्य ही नहीं वरन् बुद्धि और ज्ञानसे युक्त है।** वह अपनी साधारण प्रवृत्तिको अपनी बलवती इच्छासे दबा सकता है। मै यहाँ तक माननेको तैयार हूँ कि वह अपने आचारको अपनी इच्छाके अनुसार बना सकता है। जैसे दारुण क्लेश सहने पर भी वह सत्य पथ पर अचल रह सकता है। ऐसे अनेकानेक महात्माओंका उदाहरण आपको मिलेगा जिन्हे संसार-साम्राज्यका प्रलोभन भी सत्यपथसे तिलभर भी इधर उधर न कर सका। जिनके सभी कार्य्य उनकी शक्तिशालिनी इच्छाके अधीन थे, जिनके लिए कुछ भी असह्य और कुछ भी असम्भव नहीं था, जिनकी सभी कामनाओं, सभी वासनाओं, सभी जजबात, सभी हृदय-तरङ्गोको उनकी इच्छारूपी प्रबल चट्टान सदा दवाये रखती थी। ऐसे लोग त्रिगुणातीत हैं। वाह्य जगत्का इन पर कोई प्रभाव नहीं पडता। वे शारीरिक सुख और कष्ट भी अनुभव नहीं कर सकते। वे सभी शारीरिक नियमोको अतिक्रम कर चुके हैं, वे शरीरकी कोई

परवाह नहीं करते—यदि इसमे कीड़ेतक भी लग जायँ तौभी उन्हे इसकी खबर नही होती, गोया वह शरीरयुक्त है ही नही। परन्तु यह दो चार गिने गुथे लोगोका काम है। जनसाधारण इस अवस्थाको कदापि प्राप्त नहीं कर सकते। हर कोई शरीर और मनको अतिक्रम नहीं कर सकता, और जैसा मै अभी कह चुका हूँ साधारण मनुष्य भौतिक, पारम्परिक तथा घिरावके नियमोके हाथोकी कठपुतली है। इसलिए मैं स्वीकार करता हूँ कि यह विज्ञान अभी अपूर्ण है। इसका

नीति विज्ञानकी उपकारिता।

कारण केवल इसका नयापन ही है, बल्कि इसकी अपूर्णता सर्वतः न्यायसंगत है। क्योकि इसे जड़ पदार्थ या बुद्धिहीन पशुओंसे सरोकार नहीं है, वरन् बुद्धियुक्त, ज्ञानयुक्त मनुष्योसे है, जिनके सब काम विचित्र और अनिश्चित हैं। किन्तु इससे इसकी उपकारिता भी असिद्ध नहीं होती। विज्ञानकी कोई एक शाखा बहुत अधूरी हो सकती है, किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि उससे कोई हित नहीं हो सकता। प्रत्युत जो थोड़ा हम जानते है वह मानव-हितके लिए नितान्त हितकर और अन्यन्त आवश्यकीय हो सकता है। किसी विज्ञानकी अपूर्णताकी जॉंच उसकी भविष्यके बतलानेकी शक्ति द्वारा होती है। मौसिमो और ऋतुओंसम्बन्धी बातोके अग्रिम बतलानेकी हममें बहुत कम शक्ति है। हम अभ्रान्त नहीं बतला सकते कि कौन दिन अधिक ठंढा होगा और कौन दिन अति उष्ण, किस दिन आकाश मेघाच्छन्न रहेगा और किस दिन स्वच्छ, परन्तु यह हम निश्चयसे बतला सकते है कि पूस और माघ बैसाख और जेठकी अपेक्षा अधिक ठंढे होंगे, इसमें सशयका लेश मात्र भी नहीं। यहॉं हमारी जानकारी यद्यपि बहुत अधूरी है, तौभी देखिए, यह कितना हित करती है। हम ऋतुओके अनुसार ही फसिल पैदा करते है, जमीन जोतते

है, बीज बोते है और खलिहान लगाते हैं। इसी प्रकार कोई *व्यक्ति-विशेष किसी विशेष अवसर पर कौन काम करेगा यह बतलाना हमारे लिये पूर्णतः दुस्साध्य है। किन्तु विशेष अवस्थाओंका—विशेष बातोंका—किसी जनसमूह पर क्या प्रभाव पड़ेगा हमारी यह बतलानेकी शक्ति बड़ी मूल्यवान् है* और यद्यपि कारण और नतीजेका सम्बन्ध ठीक ठीक दृष्टिगोचर न होनेके कारण हम विशेष व्यक्तियोके कार्य्योंको अग्रिम नहीं बतला सकते तथापि विज्ञान उन नियमोको ढूँढ निकाल सकता है, जिनके द्वारा मनुष्यके आचार-व्यवहारके शासित होनेसे उन्हे इच्छित फल प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार विज्ञान हमे यह भी बतलायगा कि अनिच्छित नतीजोके रोकनेके लिए किन किन बातोका त्याग आवश्यक है। इसलिए यह सिद्ध होता है कि नीति-शास्त्र यद्यपि असम्पूर्ण है और जैसा मै अभी कह चुका हूँ यह सदा अपूर्ण रहेगा भी,तथापि यह हमारे बड़े हितका है, क्योकि यह हमे अनेक बुराइयोसे बचा सकता है और अनेक वाञ्छित फल प्रदान कर सकता है।

नीति-शास्त्र (Ethics) *को भी राजनीति-शास्त्र* (Politics) *और समाज-शास्त्र* (Sociology) *(जिसका यह निःसन्देह एक अङ्ग है) की भाँति व्याप्तिवाद* (Induction) *की नीव पर स्थित होना* चाहिए *और मजहब और धर्मसे इसे अपना पिण्ड छुड़ाना* चाहिए। हमलोग यह खोजे और अन्वेपण कर पता लगावे कि समाजकी उन्नतिके क्या नियम है। इसकी समृद्धि, इसके आरोग्य, इसके दीर्घजीवनके लिए किन किन बातोकी आवश्यकता है, किन किन बातोंसे इसकी उन्नति रुक जाती है, इसका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और इसकी मृत्यु होती है।

हमलोग प्रयत्न करके यह स्थिर करे कि सदाचारका यथार्थ स्वरूप क्या है तथा इसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई, मनुष्यके ऊपर वंशानुक्रम और परिस्थितिका किस प्रकार और कितना प्रभाव पड़ता है; मनुष्यका असल स्वभाव किस तरहका है—उसकी अन्तःप्रवृत्ति उसे सच्चरित्र बनाना चाहती है या दुश्चरित्र; किन कारणोसे मनुष्य पापमे पग धरता है; कुछ आचरणोंसे समाजको हानि और कुछ आचरणोसे लाभ क्यो पहुँचता है। *संक्षेपमें हम लोग जीवनके नियमों * और जीवित रहनेके कानूनोंको अध्ययन कर यह ढूँढ़ निकालें कि किन कार्य्योंसे अवश्यमेव आनन्द और किन कार्य्योंसे दुःख होता है।*

वास्तविक धर्मशास्त्र।

ऐसा करना ही मानों धर्मशास्त्र निर्माण करना है। इन नियमोंके जानने और पालन करनेके अतिरिक्त हमे किसी अन्य धर्मशास्त्रके नियमोको पालनेकी आवश्यकता नहीं है।

---

* देखो सदाचारकी परिभाषा, अध्याय ७ के अन्तमे।

तीसरा अध्याय।
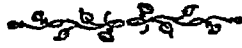
नीतिविज्ञानका लक्ष्य और अनुसन्धान-विधि।

पूर्व अध्यायके अन्तमे हमने कहा है कि अन्य विज्ञानोंकी तरह नीति-विज्ञानको भी व्याप्तिवाद पर स्थित होना चाहिए तथा ज्ञानप्राप्तिके लिए इसे अन्य विज्ञानोंकी पद्धतिको अवलम्बन करना चाहिए; परन्तु नीतिविज्ञानमें और अन्य विज्ञानोंमे एक बडा अन्तर है। इस शास्त्रका विद्यार्थी बिना किसी कामनाके केवल मात्र ज्ञान प्राप्त करनेसे संतुष्ट नहीं होता। वह ससारमे उन्नति और परिवर्तन करना चाहता है। *अन्य वैज्ञानिकोंको केवल यथार्थसे--वास्तविक या विद्यमानसे--सरोकार है; परन्तु नीतिशास्त्रका अध्ययन करनेवाला आदर्शवादी है।*

नीतिविज्ञान और अन्य विज्ञानोंमें अन्तर।

किन्तु आदर्शकी जड़ यथार्थमें है। यदि वह आदर्शके उत्साहमें यथार्थको स्मरण न रक्खेगा तो कदापि कृतकार्य न हो सकेगा। नीत्युपदेशकको वैज्ञानिक होनेकी भी परम आवश्यकता है। आधुनिक नीत्युपदेशकको मज़हबी लोगों या धर्मप्रचारकोंके असदृश, अपने प्रत्येक सिद्धान्तके लिए वैज्ञानिक कारण देना पड़ेगा, उन्हें युक्ति ग्राह्य बनाना पड़ेगा। 'असुक कार्य्य सत्य और लाभदायक है' केवल इतना ही कहनेसे काम न चलेगा, वरन् उसे यह भी बतलाना होगा कि वह क्यों कर सत्य और लाभदायक है। नीत्युपदेशकको सदा याद रखना चाहिए कि

आदर्श और यथार्थ।

वही आदर्श उत्तम है जो कार्य्यमे परिणत किया जा सके, निरे काल्पनिक आदर्शोंसे कोई लाभ नहीं।

उदाहरण—वैराग्य और परार्थवाद।

उदाहरणार्थ वैराग्य या सुख-परित्याग नीतिका आदर्श नहीं हो सकता। क्योंकि केवल वैरागियोका बना हुआ समाज सर्वथा असम्भव है। यदि समाजके सब आदमी सुखकी कामनाको एकदम छोड़ दें, वैरागी हो जायँ, तो सारा समाज मृत्युको प्राप्त हो जाय। इसी प्रकार परार्थवादका सिद्धान्त सत्य होनेपर भी बहुत दूर नहीं खींचा जा सकता। अनुमान कीजिए कि किसी समाजमे कोई आदमी अपनी—अपने गृहपरिवारकी—फिक्र नहीं करता, वरन् इस समाजका हर आदमी अपने नहीं वरन् दूसरोके सुखसाधनमे तत्पर है, तो क्या यह समाज आदर्श समाज होगा? क्या इस समाजमे पूर्ण आनन्द या सुख निवास करेगा? उलटे गड़बड़ी और अडचने उपस्थित न होंगी? क्या इस समाजके सारे काम उलट पुलट न हो जायँगे? राम अपना काम आप नहीं करता, वरन् वह श्यामके कामोंमें व्यस्त है। श्याम भी अपने नही वरन् यदुके कामोमे लगा है। पुनः यदु अपनी फिक्र आप नहीं करता वरन् वह कृष्णके कामोमे तत्पर रहता है। क्या इस प्रबन्धको आदर्श प्रबन्ध कह सकते है? क्या इस प्रबन्धसे हमारे सुख शान्ति और आरामकी वृद्धि होगी? यदि कोई आदमी हमारे आत्मोत्सर्गसे लाभ उठाना ही न चाहे, यदि सभी लोग आत्मोत्सर्गी हो जायँ तो हमारा आत्मोत्सर्ग किस प्रकार सम्भव हो सकता है? यदि हमारे सुखत्यागसे कोई लाभ उठाना ही न चाहे तो क्या ऐसी अवस्थामे हमारा सुखत्याग सरासर बेवकूफी न होगी? यदि हम अपना सारा समय तुम्हें सुखी बनानेमें व्यतीत करे और इसी प्रकार

तुम अपना सारा समय हमे सुखी बनानेमें व्यतीत करो, तो शायद हम दोनोमेसे कोई भी सुखी न हो सके। जिस प्रकार स्वार्थवादका सिद्धान्त नीति-विरुद्ध है उसी प्रकार सम्यक् निस्वार्थवादका सिद्धान्त भी नीतिविरुद्ध है, क्योंकि व्यावहारिक जीवनमे इस सिद्धान्त पर नहीं चला जा सकता। इसी लिए हर्बर्ट स्पेन्सरने कहा है—"*नीतिका यह हुक्म नहीं है कि केवल अपने हितके लिए या अपने सुखको एकदम भुला कर केवल दूसरोंहीके हितके लिए जीवन धारण करो, वरन् नीति यह कहती है कि दूसरोंका और अपना दोनोंका हित साधन करो।*" *

समाजरक्षा-की आवश्य-कता।

मनुष्य सामाजिक जीव है। अकेला रहना उसके लिए एकदम दुष्कर है। इससे कठिन उसे और कोई बात प्रतीत नहीं होती। शायद इसी बातको स्मरण रख कर आईन भारी अपराधियोंको एकान्तवास (Solitary Confinement) की सज़ा देता है? कैसा ही मनुष्य क्यों न हो, वह बिना मित्रता, प्रेम, और सहृदयताके जीवित नहीं रह सकता। *अपने सुख दुःख भाव और वासनाओंको दूसरों पर प्रकट किये बिना उसका जीना कठिन है।* शायद मनुष्यकी इसी आवश्यकताको पूरा करनेके लिए भाषाकी भी उत्पत्ति हुई होगी। समाजके द्वारा ही मनुष्यका पूर्ण विकास हो सकता है तथा उसकी इच्छा पूरी हो सकती है। अतएव मनुष्यका कर्त्तव्य दोहरा है। उसे आत्मरक्षा और समाजरक्षा दोनोंकी जरूरत है। ये दोनों प्रकारके कर्त्तव्य समान रूपसे ठीक, उचित, स्वाभाविक, अपरित्याज्य और आवश्यकीय हैं।

---

* देखो Ethics by Dr, Saleeby (Jack's Scientific Series) P. 32.

यदि हम समाजमें रहना चाहते है, यदि हम इससे लाभ उठाना चाहते है तो हमे केवल अपनी ही नहीं वरन् दूसरोकी भी फ़िक्र करनी चाहिए । हमे समझना चाहिए कि समाजके ही कल्याणसे हमारा कल्याण हो सकता है और इसके अमङ्गलसे हमारा मङ्गल कदापि नहीं हो सकता । परन्तु आत्मरक्षाका सिद्धान्त भी हमारे लिए कम आवश्यकीय नहीं है ।

आत्मरक्षाकी आवश्यकता।

यह पूर्णतः स्पष्ट है कि बिना आत्मरक्षाके—बिना अपने शरीरको कायम रक्खे—शायद हम दूसरोका भी कोई उपकार नही कर सकते । उदाहरणसे यह बात और भी स्पष्ट होगी । हम लोग अनुमान करे कि कोई स्नेहमयी माता सामान्य बीमार पड़ती है और वह अपने वैयक्तिक स्वास्थ्यकी कुछ भी परवाह नही करती । वह पूर्ववत् अपने बच्चोका लालन पालन करती है तथा दोनों शाम रसोई बनाकर अपने पति और परिवारको खिलाती रहती है और गृहस्थीके सभी कामोंको करती रहती है । वह समझती है कि अपने स्वास्थ्यकी परवाह करना वृथा है—पाप है । नतीजा यह होता है कि बीमारी बढ़ जाती है; अन्तमें रोग असाध्य हो जाता है और माताको अपना प्राण खो देना पड़ता है । क्या वह माता मरकर भी उसी प्रकार अपनी सन्तानकी—अपने पति और परिवारकी—सेवा कर सकती है ? उसके इस आचरणसे उसके पति पुत्र और आत्मीय लोगोको लाभ और सुख होता है या हानि और कष्ट ? क्या उसकी मृत्युके पश्चात् उसके मातृ-हीन बच्चे मातृ-स्नेहसे वंचित नही हो जाते ? क्या असम्भव है कि उसके बिना उसके बच्चोका जीवन सदाके लिए कष्टमय हो जाय ? क्या असम्भव है कि उसके बिना स्त्री-स्नेहसे वंचित उसका पति सदाके लिए निरा-

शाका शिकार या उन्माद रोगका लक्ष्य बन जाय? अच्छा अब हम एक और उदाहरण ले। अनुमान करें कि इस प्रकारके आचरणसे माताकी मृत्यु तो नहीं होती किंतु वह सदाके लिए या बहुत समयके लिए रुग्णा बन जाती है। तो क्या ऊपर जो बातें कही गई है वे इस अवस्थामे भी नहीं कही जा सकतीं? उसके पति, पुत्र, परिवार, सम्बन्धियोको कितना कष्ट होता है! उनको कितना धन व्यय करना पड़ता है! उनको कितनी मानसिक और शारीरिक यातना होती है! जिस पतिसेवा, पुत्रसेवा या परिवार-सेवाके लिए वह इस तरहका आचरण करती है उस सेवासे भी उसे वंचित रहना पडता है—उसे वह सेवा करनेका भी सौभाग्य नहीं प्राप्त होता।

इस उदाहरणको सर्वथा काल्पनिक नहीं समझना चाहिए। आचारकी सच्ची नीतिको नहीं जाननेके कारण, मज़हबी धर्मशास्त्रोके ऊपर चलनेके कारण तथा सभी प्रकारके सुख और आरामको त्याज्य, हेय, और बुरा समझनेके कारण लोग इस तरहका आचरण अकसर करते है। विचार कर देखनेसे वास्तविक जीवनमें इस तरहके अनेकों उदाहरण प्राप्त हो सकते है। कभी कोई मजदूर लहकती हुई धूप या मूसलधार वृष्टिकी परवाह किये बिना खुले हुए मैदानमे परिश्रम किये जाता है, तो कभी कोई दफ्तरका मुहर्रिर रात दिनको समान समझकर अविश्रान्त परिश्रम करता है। कभी कोई तिजारती व्यवसायकी उधेड़ बुनमें लगे रहनेके कारण, सुख और नींदकी आवाज़को न सुनकर उनकी अवहेलना करता है तो कभी कोई सार्वजनिक या राजनैतिक काममे भाग लेनेवाला देशका कर्णधार अपने वैयक्तिक स्वास्थ्य और सुखकी उपेक्षा करता है और ये सभी लोग अपने उद्देशसाधन तथा लोक-हितकर कामोके करनेमे असमर्थ सिद्ध होते

हैं। इन लोगोंके आचरणसे स्वयं इनका नहीं वरन् दूसरोका भी कितना अनिष्ट होता है, यह स्पष्ट ही है।

सम्यक् निस्वार्थवादकी नीति एक और रीतिसे भी हेय प्रतीत होती है। परार्थवादको बहुत दूर खींचनेसे घोर स्वार्थवादकी उत्पत्ति होती है। अनुमान करो कि किसी तप्त मरुभूमि पर हम और तुम दोनो प्याससे मर रहे हैं। हम दोनोको जलकी समान आवश्यकता है। अकस्मात् दैवयोगसे मै एक ग्लास जल प्राप्त करता हूँ। सिवाय उस ग्लासके जलका एक विन्दु भी उस स्थान पर नहीं है। परन्तु मैं परार्थ-वादका अनुयायी हूँ, इसलिए उसे स्वय पीकर अपनी प्राणरक्षा नहीं करता वरन् वह जल तुम्हें देकर अपना प्राण विसर्जन करता हूँ। इस अवस्थामें यद्यपि मेरा अचरण दिव्य, स्वर्गीय, सुन्दर और वीर-ता-परिपूर्ण है, पर तुम्हारा आचरण किस तरहका है! तुम्हारे आचरणमें कितनी स्वार्थपरता है! यह कोरी कल्पना ही नहीं है। प्रायः सभीके अनुभवमें आया होगा कि इस प्रकार अनुदार लालची पुरुषोके प्रति किये गये उदारमना और स्वार्थहीन पुरुषोंके स्वार्थत्यागसे इन लालची पुरुषोके हृदयमे स्वार्थकी वृद्धि होती है। हम लोगोंमेसे प्रायः सभीने देखा होगा कि किसी लालची फकीरके भिक्षा मँागने पर जब हम उसे पैसे नहीं देते—या जब उसको आशासे कम पैसे प्राप्त होते हैं—तो वह किस प्रकार बुद बुदा कर हमे गालियाँ देता है और कभी कभी ज़ोरसे कोसने तक लगता है। जरासा ही विचार करनेसे प्रकट होता है कि फकीरके इस आचरणका यथार्थ कारण हमारी असम्बद्ध और विवेक-शून्य दानशीलता ही है। बिना परिश्रम किये हुए भी दानी लोगोंके द्वारा अपनी जरूरतोंके पूरी किये जानेसे फक़ीर समझ गया है कि आवश्यकताओको पूरी करनेके लिए मेहनत करनेकी कोई

ज़रूरत नहीं है। सदा दूसरोंके द्वारा अपनी जरूरतोंके पूरी किये जानेसे वह स्वभावतः विश्वास करता है कि लोगोंको उसकी जरूरतें पूरी करनी ही चाहिए। स्वभावतः उसका यह दृढ विश्वास हो गया है कि लोगोंसे इस प्रकार मदद मॉगनेका उसे अधिकार है और अन्य लोगोंका यह कर्तव्य है कि वे उसे इस प्रकार मदद दें। विचार कर देखनेसे स्पष्ट होगा कि परार्थवाद भी एक प्रकारसे आत्म-प्रीति या आत्म-संभवन ही है। मै अपना जीवन दूसरोंके लिए क्यों देता हूँ? इसी लिए कि मुझे इसीमे आनन्द प्राप्त होता है। इसी कारण कि मैं दूसरोंकी सेवा किये बिना नहीं रह सकता, यद्यपि इसमे मुझे अपना प्राण तक भी देना पडता है। निःसन्देह अब तक कोई बड़ा काम बिना आत्मबलके—एक प्रकारके आत्माभिमानके—नहीं किया गया है। निःसन्देह स्वार्थत्यागमे भी एक बहुत बड़े आत्मबलकी—बहुत बड़ी वीरताकी—आवश्यकता है। अतएव दूसरोंके प्रति हमारा जो कर्त्तव्य है उससे अपने प्रति हमारा जो कर्त्तव्य है यह कम महान् नहीं है। सच है;—

> एवं विद्वानदीनात्मा व्यसनस्थो जिजीविषुः।
> सर्वोपायैरुपायज्ञो दीनमात्मानमुद्धरेत्॥
> एतां बुद्धिं समास्थाय जीवितव्यं सदा भवेत्।
> जीवन् पुण्यमवाप्नोति पुरुषो भद्रमश्नुते॥
> (—महाभारत शां० १४१, १००-१०५।)

अर्थात् जीवनरक्षा पर नजर रख कर विद्वान् और महान् पुरुषको अपने अधीन सभी उपायो द्वारा अपने कातर और दुखी आत्माकी रक्षा करनी चाहिए। इस उद्देशसे प्रत्येक आदमीको अपने आत्माकी रक्षा करनी चाहिए। जीवित रहनेहीसे मनुष्य धर्म प्राप्त कर सकता है तथा आनन्द और समृद्धिकी उपलब्धि कर सकता है।

स्वार्थवाद और परार्थवाद दोनो समान रूपसे आवश्यक है। दोनो एक दूसरेसे आवद्ध हैं। हम अभी देख चुके हैं कि विना स्वार्थवादके—अर्थात् वैयक्तिक जीवनको कायम रक्खे परार्थवाद—सामूहिक या सामाजिक जीवन—असम्भव है। इसी प्रकार विना परार्थवादके वैयक्तिक जीवन भी असम्भव है। इसके स्पष्टीकरणके लिए हम लोग केवल इतना ही स्मरण करें कि यदि हर जातिके प्राणियोंके पिता माता केवल स्वार्थपर ही लक्ष्य रखते तथा अपनी संततिके लालन पालन और रक्षाके लिए कठिन परिश्रम न करते, तो क्या आज इस संसारमे किसी तरहका भी जीव दृष्टिगोचर होता? आगेके अध्यायोमे इस विषयकी और भी विस्तृत अलोचना की जायगी।

अतः वैयक्तिक तथा सामूहिक कल्याणके लिए आवश्यक है कि स्वार्थवाद और परार्थवाद दोनोमे मेल और सहयोग हो। एक दूसरेके बिना अपूर्ण है। जिस प्रकार केवल स्वार्थवाद पर्य्याप्त नहीं है, उसी प्रकार केवल परार्थवादसे भी काम नही चल सकता।

इसको एक और उदाहरण देकर स्पष्ट करना अच्छा होगा। एक पूर्ण स्वस्थ और बल-सम्पन्न मनुष्य गंभीर क्लान्तिहारिणी निद्रासे प्रातः-काल उत्साह और प्रफुल्लता-पूर्ण हृदयके साथ, आनन्दसे गुनगुनाता हुआ अपने बिछौनेसे जाग कर उछल पड़ता है और नित्य कृत्योंसे फुरसत पाकर अपने कामोंमे लग जाता है। उसके चेहरेपर तेज, होठो पर मुसकुराहट, और हृदयमे साहस है। वह कठिनसे कठिन कामोंको भी साहस, विश्वास और फुर्तीके साथ सम्पादन करता है। उसके शरीरमे फुर्ती है और हृदयमें भरोसा। वह कठिनाइयोंसे विचलित नही होता, बलपूर्वक उनका सामना करता है और उन पर विजय प्राप्त करता है। उसे काम

करनेसे आनन्द और संतोष प्राप्त होता है और इस तरह अपने कामको समाप्त करके वह घर पहुँचता है। वह प्रेमसे अपनी स्त्रीको आलिंगन करता है, अपने बच्चोंके साथ खेलता है, उन्हें अपने कंधोंपर चढा कर नचाता है तथा अपने परिवारके साथ स्नेहमय सम्भाषण करता है। वह मनुष्य केवल अपनी स्त्री पुत्र या परिवारके लिए ही नहीं वरन् सभी मनुष्योंके लिए आनन्दका भाण्डार है। वह पुष्पके समान अपने आनन्द-मय हृदय और प्रफुल्ल मुखमण्डलके द्वारा आनन्द वितरण करता है। वह मुरझाये हुए दिलको भी खिला देता है। वह सर्वत्र हास्य और प्रसन्नता विकीर्ण करता है। परन्तु उस मनुष्यकी अवस्था एकदम विपरीत है कि जिसने अपने शरीरकी कुछ भी परवाह न करके अपने स्वास्थ्यको एकदम बिगाड़ डाला है। उस मनुष्यके चारो ओर निराशा ही निराशा है। उसका हृदय उमंग और उत्साहसे शून्य है और जीवन उसके लिए कष्टमय है। वह किसी भी कामका निष्पादन उत्तमताके साथ नहीं कर सकता। सामान्य कठिनाइयोंके सामने भी उसकी शक्तियाँ जवाव दे देती है। उसे कहीं आनन्द नहीं दीख पडता। उसे किसी भी वस्तुसे प्रसन्नता नहीं हो सकती। उसका व्यवहार और आचरण कटु और सहानुभूतिशून्य होता है। उसका जीवन भार है। ऐसे मनुष्यसे उसके परिवारको और मित्रोको सभीको कष्ट होता है। इस परिवारमे पारस्परिक मनोमालिन्य, असहिष्णुता, कलह और विवाद अपना डेरा डाल देते है। इस मनुष्यसे लोग दूर रहना चाहते है। यह मनुष्य मित्रमण्डलीमे भी बैठनेके योग्य नहीं है। यह दूसरोको अपनी उपस्थितिसे कोई आनन्द नही प्रदान कर सकता और न दूसरोके आनन्द और आह्लादसे स्वयं सुखी हो सकता है।

अब यदि इस स्थान पर हम लोग अपनी कल्पनाशक्तिसे काम लें और उपर्युक्त दो प्रकारके मनुष्योंसे बने हुए दो भिन्न समाजोंकी कल्पना करें तो स्पष्ट ही दीख पड़ेगा कि प्रथम प्रकारके मनुष्योंसे बने हुए समाजमें ही सबसे अधिक वैयक्तिक तथा सामूहिक कल्याण-मङ्गल और सुख-आनन्दकी उपलब्धि होगी। इसके विरुद्ध दूसरे प्रकारसे बने हुए मनुष्य-समाजका जीवित रहना भी असम्भव है। क्योंकि वंशानुक्रमके नियमोके अनुसार बुद्धि और बलसे युक्त पिता माताकी सन्तान भी बुद्धि और बलसे युक्त होती है और क्षीण, दुर्बल तथा रोगग्रस्त माता पिताकी सन्तान भी बलहीन, रुग्ण और लघुजीवी होती है । अनन्त सम्पत्ति और अपरिमित धनसे भी अधिक मूल्यवान् जो वस्तु माता पिता अपनी सन्तानको दे जा सकते है वह आरोग्य और बलवान् शारीरिक संगठन है । विचार कर देखनेसे स्पष्ट होता है कि पुत्र पौत्र केवल पिता माताके संचित धन और सम्पत्तिके ही नहीं, वरन् उनके स्वास्थ्य और आरोग्य, उनके दिल और मिजाजके भी उत्तराधिकारी होते हैं। साधारणतः यद्यपि हमलोग माता पिता या पुत्र पुत्रीके रूप-सादृश्यके बारेमे अकसर बातचीत किया करते है, तो भी हम लोग इस बातके तथ्यको अच्छी तरह हृदयंगम नहीं करते। माता पिताके अच्छे और बुरे स्वभावका, अच्छे और बुरे स्वास्थ्यका असर भावी सन्तानोंपर सदाके लिए पडता है। विचार कर देखनेसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि संसारमे दुर्बल और रोगयुक्त संतानका उत्पन्न करना हत्या करनेसे भी घोरतर पाप है। हमारे यहाँ अकसर राजालोग अपने राज्यको या उसके किसी अंशको नहीं बेच सकते। वे केवल उसकी आयका उपभोग कर सकते है। पिताके बाद राज्यपर पुत्रका ही अधिकार होता है। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यको यह समझना चाहिए कि

उसका स्वास्थ्य एक प्रकारकी थाती या धरोहर है; जिसे उन्नत करके नहीं तो कमसे कम ज्योंकी त्यों अपनी संतानोंको सौंप देना उसका कर्तव्य है।

अतएव व्यक्ति और समाजकी रक्षाके लिए इन दोनों कर्तव्योंको समान रूपसे पालनेकी आवश्यकता है। अहंवादसे व्यक्तिकी रक्षा होती है, और परार्थवादसे समाजकी। बिना दोनोके समाजका काम नहीं चल सकता। इस लिए नीतिका काम इन दोनो कर्तव्योंके मिलानेका है; स्वार्थवाद और परार्थवादमें सहयोग पैदा करनेका है। अतः नीतिका यह आदेश है कि दूसरोंके प्रति ऐसा कोई व्यवहार कदापि न करना चाहिए जिसे तुम अपने साथ किया जाना नापसन्द करते हो।

> यदन्यैर्विहितं नेच्छेदात्मनः कर्मपूरुषः।
> न तत्परेषु कुर्वीति जानन्नपि प्रियमात्मन.॥
> यद्यदात्मनि चेच्छेत् तत्परस्यापि चिन्तयेत्।
> (—महाभारत, शा० २६०, २१–२२।)

समाजवादकी तरफ़ नीतिका भाव।

इसी सम्बन्धमें इस पर भी विचार करनेकी आवश्यकता है कि व्यक्तिवाद और समष्टिवाद (समाजवाद Socialism) तरफ नीतिका क्या वर्ताव है। यथार्थमें नीतिको व्यक्तिसे ही सरोकार है। व्यक्तिगत आचारको शुद्ध उन्नत और पवित्र करनेसे सारा समाज उच्च और उन्नत हो सकता है। यह व्यक्तिको समाजके लिए बलिप्रदान करना नहीं चाहता। कोई व्यक्तिविशेष स्वेच्छापूर्वक अपने धर्मसंस्कारके अनुसार जीवन पालन करने तथा उन्नति करनेमें दूसरोंके समान

अधिकार पर आक्रमण न कर सके तथा वह अपना जीवन इस प्रकार व्यतीत करे कि जिसमे सारा समाज भरपूर हो—नैतिक आदर्श यही है। व्यक्तिके मङ्गलमे ही समाजका मङ्गल है। हर *व्यक्तिकी उन्नति* उसके धर्म या संस्कारके ही अनुसार हो सकती है। अतएव व्यक्ति-गत स्वतन्त्रताके छीननेसे समाज उन्नत नहीं हो सकता, वरन् वह उलटा दरिद्र होता है। क्योंकि सच्ची उन्नति वही है जिसमें हमारी सभी शक्तियाँ पूर्ण रूपसे विकसित और उन्नत हों। निसन्देह एक ऐसा समय आ सकता है कि जब किसी व्यक्ति विशेषकी इच्छा या सुखमे तथा सारे समाजकी इच्छा कामना या सुखमे कोई भेद न रहे। परन्तु समाज व्यक्तिके लिए है न कि व्यक्ति समाजके लिए। नीति व्यक्त्यात्मक है।

आनन्द-प्राप्तिकी कामना।

आनन्द ही सभी मनुष्योंका लक्ष्य है। हर मनुष्य आनन्दकी कामना करता है। क्या वह मनुष्य जो संसारको ही सब कुछ समझ कर तथा दूसरोंके आनन्द और सुख-की रत्ती भर भी परवाह न कर जिस प्रकार हो केवल अपना ही सुख साधन करता है और क्या वह मनुष्य जो संसार पर और सारे सांसारिक सुखों पर लात मार कर घोर तपस्या करता है और परलोकहीको सब कुछ समझता है—दोनों आनन्दकी अभिलाषा रखते हैं? आनन्दकी कामना ही मनुष्यको हर काममें प्रवृत्त करती है। अतएव *नीति-विज्ञान मनुष्यकी इस आनन्द-तृष्णाको अवज्ञाकी दृष्टिसे नहीं देख सकता। विज्ञानके द्वारा यह सिद्ध होता है कि आनन्दसे लाभ और दुःखसे हानि होती है; बल्कि उन प्राणियोंको जिनमें यह कामना पूरे तौरसे होती है, जीवन-संग्राममें विशेष सहायता मिलती है और वे प्राणी जिनमें*

यह कामना नहीं होती तथा जो सुखकी अपेक्षा दुःखको ही अधिक पसन्द करते हैं मृत्युको प्राप्त होते हैं । *

आनन्दके द्वारा जीवनका स्रोत उछल उछल कर द्रुत गतिसे प्रवाहित होने लगता है; परन्तु दुःखसे इसकी गति शिथिल हो जाती है। कार्लाइल सत्य ही कहते है—"वह मनुष्य जो एक वार भी पूरे दिलसे और अपने अन्तःकरणसे हँसा है, बुरा नहीं हो सकता। हँसी भी क्या ही अद्भुत वस्तु है! हम इसके द्वारा मनुष्यके समूचे चरित्रको —उसके मनोगत भावोको—उसके हृदयको—अक्षरोमे लिखी हुई पुस्तकके सदृश पढ ले सकते है। × × × जो मनुष्य हँसना नहीं जानता वह छल विश्वासघात इत्यादि सभी कुछ कर सकता है। इतना ही नहीं; स्वय उसका जीवन ही पापण्डमय विश्वासघात है।"+ कार्लाइलका यह कथन अक्षरश. सत्य है। क्योकि हम आगे चल कर देखेगे कि *जो मनुष्य अपने सुख और आनन्दकी परवाह नहीं करता—जिसे सुख और आनन्दके साथ शत्रुता है—वह दूसरोंके कल्याण मगलका भी गला घोंट सकता है* । हृदयके सहानुभूति-शून्य होनेके कारण वह दूसरोके सुख दुःखको अनुभव नहीं कर सकता और इसलिए वह दूसरोके साथ कठोर व्यवहार भी कर सकता है।

मज़हबकी भूल।

अतएव मज़हबोका यह कथन कि आनन्दको विपके समान परित्याग करना चाहिए, ठीक नहीं है। आनन्दमे कोई पाप नहीं है। *आनन्दसे जीवनकी वृद्धि होती है और दुःखसे जीवनका ह्रास और नाश होता है। जीवनकी*

---

* देखो Spencer-Principles of Ethics Vol. I, Part I, the Data of Ethics esp. ch. VI—33-39 और Ethics by Dr. Saleelby P. 40

+ Sartur Resartus.

सेवा करना और उसे पूर्ण और उन्नत बनाना, इसके सिवा नीतिका कोई दूसरा लक्ष्य नहीं है। मौनकिउर कौनवेने सच ही कहा है—

"आनन्द ही जीवनका उद्देश है।×× मनुष्यके लिए इससे बढ़कर और कोई उत्तम आदर्श नहीं हो सकता। × × हज़ारों स्वर्ग मनुष्यको आनन्द प्रदान करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकते। यह आनन्द मनुष्यकी शारीरिक, हार्दिक और मानसिक लालसाओंके पूर्ण होनेसे ही प्राप्त होता है। × × चाहे मनुष्य विषयभोगके द्वारा या जीवनोत्सर्ग-के द्वारा इसे उपलब्ध करना चाहता हो, आनन्द ही उसकी एक कामना है। आनन्दकी ही खोजमें पतङ्ग दीपककी आगमें जल मरता है। आनन्दकी ही खोजमें तपस्वी अपनी कन्दरामें प्राणत्याग करता है।* आनन्दकी ही खोजमें शराबी शराबके कारण और कामान्ध पुरुष अपनी अनिवार्य्य काम-तृष्णाके द्वारा अपनी जान देता है। × × इन सबोंमें ही प्रत्येकके मध्य एक उच्च अभिलाषा, स्वतन्त्रताकी अभिलाषा, सम्पूर्ण जीवन प्राप्त करनेकी अभिलाषा विद्यमान है—एक नियन्त्रित शक्ति सौन्दर्यके स्वातन्त्र्यमें फट पड़ना चाहती है। यदि ये सर्व पतङ्ग अग्निके रंगीन चित्रसे यही आनन्द प्राप्त कर सकते—बिना राखका ढेर हुए भी सुखकी उपलब्धि कर सकते—तो उनकी यह बावली इच्छा दुःखसे शून्य और स्वच्छ होती।

"इसलिए हर मनुष्यको आनन्द प्राप्त करना चाहिए और हर मनुष्य निःसन्देह इसे प्राप्त करता यदि जीवनका मार्ग आत्मोत्सर्गके भ्रम

---

* सर्वाणि भूतानि सुखे रमन्ते, सर्वाणि दुःखस्य भृशं त्रसन्ते।
(—महा० शा० २३१,२७)

अर्थात् सभी प्राणी आनन्दसे सुखी होते हैं और दुःखसे असीम भय करते हैं

प्रमादोंसे भरा न होता—यदि, लोग मिथ्या शिक्षाओंके कारण आनन्दसे भय न खाते ! क्या दूसरोको आनन्दित बनाना हमारा कर्तव्य है ? क्या हमे दूसरोको सुख प्रदान करना चाहिए ? हम दूसरोंको ऐसी वस्तु क्यो दे जिससे हम स्वयं वंचित रहना चाहते है, जिसे हम स्वय बुरा समझते है तथा जिससे हम स्वय घृणा करते हैं ? कैसी मूर्खता है ! हमे आनन्दकी चाह रखनी चाहिए। हमे इसकी उपलब्धि करनी चाहिए और यदि हम ऐसा करेगे तो हम देखेंगे कि हमें अपने आनन्दके वितरण करनेमे—अपने आनन्दमे दूसरोको भागी बनानेमे—बड़ा सुख प्राप्त होता है ।

"नीतिका उद्देश यही है कि वह मनुष्यको अपने सुखकी चाहमें इस प्रकार प्रवृत्त करे कि जिसमे उसका अपना भी हित और पूर्ण विकास हो और दूसरोका कोई अहित न हो ।" *

"आनन्दकी जड धर्ममे है और धर्मका आनन्दके साथ बहुत बड़ा लगाव है। वह उसका चिर संगी है। स्मरण रक्खो कि दोनो एक दूसरेके साथ इस प्रकार बँधे हुए है जिसतरह बदली समुद्रके साथ।"

"मनुष्यको केवल धर्ममे ही न लगा रहना चाहिए और न सुख और लाभको ही अपनी कामनाका अन्तिम सोपान समझना चाहिए। मनुष्यको इन तीनोकी फिक्र सदा समान रूपसे करनी चाहिए।"

(—महा०, वनपर्व ३३,२८—३८)

---

* Quoted in "The Task of Rationalism in Retrospect and Prospect" by John Russel (M A. p 26 Gonway Memorial Lectures for 1920.

जो वस्तु सत्य, सुन्दर, पवित्र, धर्ममय और निर्दोष है वह आनन्द है। वह आनन्दप्रद भी अवश्य होती है। अतएव सदाचारका भी उद्देश जीवोंको सुखी बनाना ही है। मज़हबी सदाचारशास्त्र, तथा अवैज्ञानिक सदाचारशास्त्रके पण्डितोंके कुछ दलका यह मत है कि सदाचार या दुराचार सुख दुःखसे स्वतंत्र है। केवल ईश्वरकी आज्ञाओंहीका नाम सदाचार है तथा सदाचार और दुराचारके परखनेके लिए—यह निर्णय करनेके लिए कि कौन काम सदाचारके और कौन काम दुराचारके अन्तर्गत है—सुख दुःख-की तराजूकी ज़रूरत नहीं है। कुछ लोग सदाचारको ईश्वरकी आज्ञा तो नहीं समझते परन्तु उसे सुख दुःखसे स्वतंत्र ही मानते हैं। उनका कहना है कि सदाचार अन्तःकरणकी भाषा है। सदाचारको सुख और दुःखसे कोई सरोकार नहीं है। आगेके अध्यायोंके पढ़नेसे स्पष्ट हो जायगा कि सदाचारको ईश्वरकी आज्ञा या अन्तःकरणकी भाषा समझना कितनी बड़ी भूल है। यदि सदाचार ईश्वरकी आज्ञा है तो सदाचारको ईश्वरकी आज्ञा माननेवाले सभी मनुष्यसमूह एक ही कामको बुरा और एक ही कामको भला क्यों नहीं समझते? आज्ञाओंको स्पष्ट और साफ़ होना चाहिए। जिस कामको मानव-समाजका एक अंश सदाचार समझता है, दूसरा अंश उसी कामकी गणना सदाचारमें नहीं करता। पुनः यदि सदाचार अन्तःकरणकी भाषा है तो प्रत्येक अन्तःकरण एक ही तरहसे क्यों नहीं बोलता? एक अन्तःकरणकी आवाज़ दूसरे अन्तः-करणकी आवाजसे क्यों नहीं मिलती? फ़्रीजियन मनुष्य नर-

सदाचारका लक्ष्य और आनन्दके साथ उसका सम्बन्ध।

सदाचारसम्बन्धी अवैज्ञानिक मतका खण्डन।

हत्या करना वड़े गर्वकी वात अनुमान करता है। उसका अन्तःकरण उसे हत्या करनेसे तनिक भी नहीं रोकता । टर्कोमैन जातिका आदमी चोरी करनेको वड़ी प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखता है । इस समाजमें चोरों-को वहुत सम्मान प्राप्त है । हम जिस प्रकार प्रयाग, काशी, वद्री या रामेश्वर इत्यादि तीर्थोंकी यात्रा करते है उसी प्रकार टर्कोमैन जातिका आदमी वड़े वड़े और प्रसिद्ध डाकुओंकी कब्रकी जियारत करनेको जाया करता है—मानों डाकुओकी कब्र ही उसका तीर्थस्थान है ! परन्तु यहाँ इन वार्तोपर ठहरनेकी आवश्यकता नहीं है; इन्हे आगेके लिए छोड देना चाहिए।

स्पष्ट ही हे कि जिन कामोंसे जीवोंको सुख और आनन्द हो वह सदाचार और जिन कामोंसे जीवोंको दुःख और शोक हो वह दुराचारके अन्दर शामिल है । अनुमान करो कि कुछ मनुष्योंके शरीरमे छुरी भोकनेसे उन्हे आनन्द प्राप्त होता है और उनके हाथ पैर इत्यादि अवयवोको काट डालनेसे तो वे हर्षसे विह्वल हो जाते हैं। अनुमान करो कि किसीका धन चुरा लेनेसे उसे वड़ा लाभ होता है तथा उसके घरमे खानेपीनेकी उत्तमसे उत्तम सामग्रियोकी वर्षा होने लगती है । अनुमान करो कि कुछ मनुष्योके घरोंमे आग लगा देनेसे उनके घर दीप्तमान-रत्न-जटित सोनेके घरोमें परिवर्तित हो जाते है । तो क्या ये काम जिनको मानव-जातिका वहुत वड़ा अश अत्यन्त बुरा समझता है, अव भी वुरे समझे जायँगे ? क्या हत्या चोरी इत्यादि अव भी दुराचार अनुमान किये जायँगे ? उलटा क्या ये सव काम सदाचारके अन्तर्गत नहीं गिने जाने लगेंगे ? पुन अनुमान करो कि किसी रुग्ण पुरुषकी सेवा शुश्रूषा करनेसे, और ओषधि देनेसे उसे वहुत तकलीफ होती है । अनुमान करो कि किसी मातृ-पितृ-

हीन बच्चेकी रक्षा करनेसे उस बच्चेको बहुत कष्ट होता है, वरन् उस बच्चेको बिना अन्न जल इत्यादिके अकेले छोड़ देनेसे ही उसे बहुत आनन्द होता है। तो क्या इस अवस्थामे भी अनाथोकी रक्षा करना उत्तम समझा जायगा? क्या अनाथालयोका खोलना बहुत बड़ा पाप न होगा?

आनन्द ही—केवल एक व्यक्तिका नहीं—वरन् सभीका आनन्द—जो बिना किसीको कष्ट दिये प्राप्त होता है—नीतिका लक्ष्य है। आनन्द-कामनासे ही मनुष्य कामोमें प्रवृत्त होता है। यही सबोका ध्येय है—केवल उन्हें इसके प्राप्त करनेका ढंग मालूम नहीं है। आह, कौनवेके शब्दोंमे हम आनन्दरूपी दीपक पर जलकर मरनेवाले पतंग यदि राखके ढेर हुए बिना, इस आनन्दकी उपलब्धि कर सकते तो क्या ही अच्छी बात होती! नीतिविज्ञान हमे ऐसे ही उपाय बतलानेकी चेष्टा करता है।

मजहबकी भूल केवल इतनी ही है कि वह सभी सासारिक आनन्दोंको बुरा समझता है और सभीसे बलात्कार स्वार्थत्याग कराना चाहता है। परन्तु वैज्ञानिक नीति-शास्त्र आत्मरक्षा और समाजरक्षा दोनो पर समान जोर देता है। क्योकि विना आत्मरक्षाके समाजरक्षा संभव नहीं। वैज्ञानिक नीतिशास्त्रको आनन्दसे द्वेप नहीं है। इसका तात्पर्य्य यह नहीं कि वैज्ञानिक नीतिशास्त्रमे आत्म-बलिदान, आत्मोत्सर्ग या निस्वार्थताको कोई स्थान नहीं है। वैज्ञानिक नीतिशास्त्र इन वस्तुओंके महत्त्वको पूर्ण रूपसे स्वीकार करता है। उसका उद्देश यही है कि वह आत्मरक्षाके महत्त्वको भी—जिसे मजहब एकदम स्वीकार नही करता—पूर्ण रूपसे व्यक्त कर सके।

चौथा अध्याय।

सदाचारका स्वभाव और विकास।

१ नीतिका स्वरूप।

नीति सम्बन्धात्मक है।

किसी एक सुनसान जनशून्य टापू पर एक अकेला मनुष्य, जहाँ उसके कार्य्योंका प्रभाव उसके सिवाय किसी अन्य व्यक्ति पर नहीं पड़ सकता, बुद्धिमान् हो सकता है, किन्तु सच्चरित्र नहीं। वह मनुष्य अज्ञानी कहला सकता है, पर अपराधी कदापि नहीं। हम उसके साथ कोई नैतिक विशेषण नहीं जोड़ सकते। हम उसे सच्चरित्र या दुश्चरित्र, अच्छा या बुरा—यदि इन शब्दोका नैतिक अर्थ लिया जाय—कदापि नहीं कह सकते। अतएव नीति और नैतिक सम्बन्धके पैदा होनेके लिए कमसे कम दो व्यक्तियोकी आवश्यकता है। उदाहरणार्थ, सर्वप्रधान गुण सचाईका अस्तित्व ही नहीं हो सकता यदि ऐसा कोई मनुष्य न रहे जिसके साथ हम बात करे, या असत्-व्यवहार करे। ऐसी हालतमें सच्चे झूठे इत्यादि शब्दोका कोई अर्थ ही नहीं, क्योकि हम किसके साथ सच और किसके साथ झूठ बोलेगे। इन शब्दोंके उपयुक्त होनेके लिए कमसे कम एक और मनुष्यकी आवश्यकता है। इसी प्रकार कोई मनुष्य हत्या या चोरीका मुजरिम नहीं हो सकता, यदि अन्य कोई मनुष्य रहे ही नहीं जिसकी वह हत्या कर सके या जिसकी चीज चुरा सके। इसी प्रकार हमारे धोखेबाज और फरेवी कहलानेके लिए अन्य व्यक्तियोकी भी आवश्यकता है

जिन्हे हम धोखा दे सके या जिनके साथ हम फरेब कर सके। इससे यह सिद्ध होता है कि नीतिशास्त्र और आचार-सम्बन्धी सभी गुण सम्बन्धात्मक है। जहॉ हमारे कार्य्योंका प्रभाव केवल हमारे ही ऊपर समाप्त हो जाता है वहॉ सदाचरण और दुराचरणका अस्तित्व नही है। किन्तु जहाँ हमारे कार्य्योंका नतीजा बाहर भी प्रस्फुटित होता है, जहॉ हमारे कार्य्योंसे केवल हमारा ही नहीं, वरन् दूसरोका भी हित अहित और मङ्गल अमङ्गल होता है वहीं सदाचारकी उत्पत्ति होती है। नहीं तो ये शब्द एकदम निरर्थक है। अतः यह पूर्णतः स्पष्ट होता है कि नीति (Ethics) सम्बन्धात्मक (Relative) है। यदि हम और सब कर्तव्योंको छोड़कर केवल ईश्वरके प्रति हमारा जो कर्तव्य है उसीको स्मरण करे तो यहाँ भी दो व्यक्तियोकी—हमारी और एक सृष्टिके बनानेवाले दूसरे महान् व्यक्ति ईश्वरकी—आवश्यकता होती है।*

---

* परन्तु यहॉ पर इतना स्मरण रखना चाहिए कि नैतिक आचार—अर्थात् नैतिक दृष्टिसे अच्छे और बुरे काम—साधारण आचारके एक अश हैं और बिना पूर्णका ज्ञान प्राप्त किये खण्डका ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है। इसलिए नीति-विज्ञानके विद्यार्थीको साधारण आचारके अध्ययनकी भी बडी आवश्यकता है। पुन: साधारण आचरणसे नैतिक आचारका पृथक्करण भी सहज नहीं है। बाज़ बाज दफा तो यह कहना ही कठिन प्रतीत होता है कि किसी मनुष्यके किसी कामसे केवल उसकी ही हानि या लाभ होता है या उसका प्रभाव दूसरों पर भी पड़ता है। क्योकि समाज ज्यों ज्यो और जितना ही अधिक पेचीदा होता जाता है उतना ही अधिक प्रत्येक मनुष्यके कामका असर सारे समाज पर पडता है और शायद आधुनिक समाजमे मनुष्यके विरल ही काम ऐसे होंगे कि जिनका प्रभाव केवल मात्र उनके ही ऊपर पड़ता हो और अन्य मनुष्योको सूक्ष्म रूपसे भी न स्पर्श करता हो। पूर्व अध्यायमे आत्म-रक्षा पर ज़ोर देते हुए इस बातका किंचित् स्पष्टीकरण किया गया है। प्रत्येक मनुष्यका वैयक्तिक कल्याण मङ्गल अन्य सबोंके कल्याण मङ्गलके साथ आबद्ध है। हमारे

पुनः जिन व्यक्तियोके बीच नैतिक सम्बन्ध पैदा होता है उन्हे चैतन्य होना चाहिए। यानी *उनमें दुःख सुख अनुभव करनेकी शक्ति होनी चाहिए।* नीतिका यह बहुत ही स्पष्ट स्वरूप है। इस पर और अधिक कहनेकी आवश्यकता नहीं। हमे अपने थाली लोटे या कटोरेसे कोई नैतिक सम्बन्ध नहीं है। परन्तु हम अपनी गौ या

चैतन्य जीवोके मध्य ही नैतिक सम्बन्ध पैदा होता है।

कुत्ते या घोडेसे यह नाता नहीं तोड सकते। हम अपने बर्तनोको चकनाचूर कर डाल सकते है। हम अपने वस्त्रो जूतो इत्यादिको जीर्ण विदीर्ण कर डाल सकते है। हम अपने घर-द्वारको भस्मीभूत कर डाल सकते है। ऐसा करनेसे हमारी मूर्खता भले ही स्पष्ट हो, परन्तु हम किसी नैतिक अपराधके मुजरिम कदापि नहीं कहला सकते। परन्तु नैतिक कलङ्कका टीका लगाये बिना हम अपने

बलवान् और हृष्ट पुष्ट होनेसे दूसरोंका भी नफा है, क्योंकि इससे वस्तुओका मूल्य घटता है (?)। हमारे रोगमुक्त रहनेसे अन्य लोगोको भी लाभ होता है, क्यों कि स्वयं उनके बीमार पडनेकी सम्भावना कम हो जाती है। हमारी बुद्धिके बढनेसे दूसरोको भी फायदा है, क्योंकि नित्य प्रति लोगोकी मूर्खता और अज्ञानतासे उन्हे स्वयं कुछ न कुछ गैर सुभीता अवश्य होता है। पुन अन्य मनुष्योको छोड़कर यदि हम अपनी वर्तमान और भावी संततिके साथ अपने सम्बन्धको स्मरण करें तो शायद हमारा कोई भी कार्य नीतिके क्षेत्रसे बाहर नही कहा जा सके। यह पूर्व अध्यायमे ही वर्णन किया जा चुका है। यदि सदाचारकी वह परिभाषा जो हमने सातवे अध्यायमे दी है ठीक मानी जाय—अर्थात् सख्या और श्रेष्ठता दोनोके लिहाजसे जीवनको बढाना और पूर्ण करना यदि यही सदाचार माना जाय—तो मनुष्यका ऐसा कोई काम न रह जाय जो नीति-विज्ञानके क्षेत्रसे बाहर समझा जा सके, परन्तु नीतिका प्रधान स्वरूप वही है जो ऊपर दिया गया है। इसीलिए हमने भी इसी पर अधिक ज़ोर दिया है।

घरेलू जानवरोंके साथ कदापि कठोर और मनमाना व्यवहार नहीं कर सकते। इस लिए यह सिद्ध होता है कि नीतिकी जड चेतनतामें है। एक वार दो चैतन्य जीवोंका आपसमें सम्बन्ध होनेसे ही नीतिका आविर्भाव होता है। *जिस जीवमें जितनी अधिक चेतनता होगी—जितना अधिक सुख दुःख अनुभव करनेकी शक्ति होगी—उतना ही अधिक उसके साथ हमारा कर्तव्य भी होगा।* एक पत्थरके टुकड़े-के साथ हमारा जो कर्तव्य है उससे अधिक हमारा कर्तव्य एक वृक्षके साथ है और वृक्षके साथ हमारा जो कर्तव्य है उससे अधिक हम पशु पक्षियोंके सुख दुःखके ज़िम्मेवार हैं। इसी प्रकार हमारी सबसे वड़ी ज़िम्मेदारी मनुष्यके साथ है। *वैज्ञानिक सदाचारशास्त्र इस नीतिका समर्थन नहीं कर सकता कि चीटियोंको चीनी खिलाना और मनुष्यकी हत्या करना।* जैसा कि आगे चल कर स्पष्ट होगा वैज्ञानिक नीतिशास्त्र प्रकृतिके साथ चलना चाहता है—प्रकृतिकी सहायता करना चाहता है—और प्रकृति सव जीवोंकी समान परवाह नहीं करती।

नीति एक विकसित वस्तु है और मजहबसे स्वतत्र है।

अव दूसरा प्रश्न यह उपस्थित होता है कि हमारी सदाचार-वुद्धिकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई, हमने सत्यका महत्त्व कहाँसे सीखा, यह आदेश कि "साँच वराबर तप नहीं, झूठ वराबर पाप" हमे किसने वतलाया, हमें लैङ्गिक स्वच्छताकी शिक्षा किसने दी। इत्यादि। और स्थानोंकी तरह विकासशास्त्र यहाँ भी हमारी मददको आ पहुँचता है। वह वतलाता है कि हमारी सदाचार-वुद्धि हममें कहीं वाहरसे नहीं आई है। हमे ईश्वर या किसी देवता या किसी पवित्र धर्मग्रन्थने सच्चरित्र होनेकी प्राथमिक शिक्षा नहीं दी है; हाँ एक वार इस वुद्धिके पैदा होने पर पीछे इसकी कुछ सहायता अवश्य की

है । विकास-शास्त्रकी रूसे यह अभ्रान्त सिद्ध होता है कि हमारे शरीर और अवस्थाकी तरह हमारी सदाचार-बुद्धिका भी विकास हुआ है । इसका मूल भी हमारे पशुपूर्वजोमे ही था जो समय पाकर इस प्रकार फूला फला और भविष्यमें और भी फूले फलेगा । इसका बीज हममे कहीं बाहरसे आरोपित नही हुआ और न क्रिस्तान बाइबलके अनुसार किसी एक खास दिनको खुदाने एक तखती पर लिख कर सारे नैतिक सिद्धान्तोको हमारे हवाले कर दिया था । सभी विकसित वस्तुओकी तरह हमारी सदाचार-बुद्धिका भी विकास हुआ है, इसकी भी उन्नति हुई है, इसमे भी परिवर्तन हुआ है और इसका भी रूप बदला है, एवं भविष्यमे भी बदलता रहेगा । हृदयके फैलनेके साथ हमारी सदाचार-बुद्धिका भी प्रसार हो रहा है ।

हर युगकी सदाचार-बुद्धि दूसरे युगकी सदाचार-बुद्धिसे भिन्न होती है ।

यह कहना फजूल न होगा कि हर युगकी आचार-बुद्धि दूसरे युगकी आचार-बुद्धिसे भिन्न होती है । एक जमाना था जब हम अकुण्ठित कंठसे चीत्कार कर कहते थे कि—

" ढोल गँवार शूद्र पशु नारी,
ये सब ताड़नके अधिकारी ।"

परन्तु आज हम स्त्रीशिक्षा तथा नीच जातियोकी, नहीं नहीं अछूत पेरियो तककी, शिक्षा और उन्नतिके लिए क्या इस प्रकार व्यस्त है ? जातियाँ एक समय स्वयं ईश्वरके शरीरसे बनी थीं, स्वय ईश्वरने ही सभी जातियोंके कार्य्य निर्द्धारित कर दिये थे और उसीने हमे शूद्रोके साथ पशु पक्षियोंसे भी बुरा सलूक करनेका अधिकार दिया था; परन्तु आज हम जातिको वेदविरुद्ध क्यो बतलाते है, और अपने प्यारे सिद्धान्तोके सिद्ध करनेके लिए शब्दोके अर्थोंको इतना क्यों तोड़ मरोड़ रहे है एवं ना मग्ज खराब कर रहे हैं ?

किसान-विद्रोह (Peasant Revolt) के समयमे मार्टिन लूथर (क्रिश्चियानिटीके प्रोटेस्टैण्ट सम्प्रदायके सस्थापक) ने ज़मीन्दारोको आज्ञा दी थी कि "इन किसानोंका मूलोच्छेद करो, इनके शरीरमें तलवार भोंक दो, इनके वदनको टुकड़े टुकड़े कर डालो और पागल कुत्तोंके साथ जो व्यवहार किया जाता है वही इनके साथ करो, इनके सिरका भेजा निकाल कर खण्ड खण्ड कर डालो।" लूथरने ऐसा क्यों कहा था? इसीलिए कि विद्रोह करना किसानोंके लिए उचित न था, और ज़मीन्दारोंकी आज्ञाका पालन करना उनका साधारण कर्तव्य था। "स्वय ईश्वरने ही समाजमें उनका स्थान निर्धारित कर दिया था और कृतकार्य्य होनेके लिए उनकी कोशिश मानो ईश्वरको झूठा वनानेकी कोशिश थी।*"

पुराने समयकी क्रिश्चियानिटी गुलामीकी प्रथाको किस निगाहसे देखती थी यह आगेकी कथासे (जिसे स्पेन्सरने अपने Social Statics † नामी ग्रन्थके एकसौ तीसवें पृष्ठमें उल्लेख किया है) पूर्णतः स्पष्ट होता है। कर्नल डी ओयाली (D' oyley)ने—जो इँग्लैण्डकी ओरसे जमैकाके प्रथम गवर्नर थे—हुक्म दिया कि मेरी पलटनमे वाइवलकी १७०१ प्रतियाँ वाँटी जायँ। इसके कुछ समय पहले हब्शियोंकी शिकार करनेके निमित्त जौन ह्याय (John Hoy) जमैकामे १५ कुत्ते लाया था। उपर्युक्त आज्ञाके पास करनेके तीन ही चार दिनके पश्चात् डी ओयालीने यह हुक्म दिया कि सरकारी महसूलमेंसे जौन ह्यायको इन कुत्तोंका मूल्य दे दिया जाय। इसका क्या कारण था? और कुछ नही, केवल यही कि गुलामी बुरी न

---

* Christianity and Civilisation P III.

† Watts R. P. A. cheat Reprints

समझी जाती थी—यह साधारण बात मानी जाती थी। मनुष्यका अन्तःकरण अभी इतना सक्षोभ्य और उन्नत न हुआ था कि वह जान सके कि सभी आदमियोके सदृश गुलामोंके भी शरीर है और सभी आदमियोके समान भृत्यवर्ग भी सुख दुःख अनुभव करते हैं! परन्तु उसी योरोपसे आज गुलामीकी प्रथा उठ गई है, उसी योरोपमे आज स्वतत्रता और मनुष्यके समान अधिकारोंकी धूम है और क्रिश्चियानिटी कहती है कि मेरे ही प्रभावसे यह सब हो रहा है!

मज़हबके द्वारा नीतिकी उत्पत्ति नहीं हुई है, वरन् नीतिके कारण मजहब शुद्ध उन्नत और पवित्र हुआ है। समय समय पर मजहबके अन्दर ही पवित्रात्मा सुधारकोका जन्म होता है जो प्रचलित स्थूल विश्वासोको परिवर्तित कर मजहबको पवित्र और नीति-मय बनाते है। इस समयके सभ्य आदमीके मज़हबमे तथा प्राचीन मजहबमे या जंगली या वर्बर जातियोके मजहबमे कितना अंतर है, यह इतिहासके प्रेमियो पर विदित है।

हमारी सदाचार-बुद्धि हमारी परिस्थितिके अधीन है।

हमारी सदाचार-बुद्धि एक विकसित वस्तु है, जिसका विकास वशानुक्रम और परिस्थितिके नियमो द्वारा होता है। इसी लिए जाति, देश और कालके भेदसे इसके इतने रूपान्तर हुए है और है, इसी लिए प्रत्येक मनुष्यका धर्म और अधर्म उसके देश और कालके अधीन होता है। जो कर्म एक देशमे अत्यन्त धार्मिक है वही दूसरे देशमें घोर निन्दनीय समझा जाता है। एक देशमे चचेर भाई बहन आपसमें वैवाहिक सम्बन्ध कर सकते है, परन्तु दूसरे देशमे यह बहुत बड़ा पाप प्रतीत होता है। एक देशमें लोग अपनी सालीसे शादी कर सकते है, पर दूसरे दशमें यह बहुत बुरा माना जाता है। एक देशमे लोगोकी केवल एक शादी

हो सकती है, पर दूसरे देशमे अनेक होती है । एक देशमे विधवा–विवाह अति उत्तम और दूसरेमे अति घृणित माना जाता है । केवल विवाहमें ही नहीं, नीतिके हर एक विभागमे यही वात है। यदि किसी ईसाईको गोमासका एक टुकड़ा मिल जाय और यदि वह उसे अपने तथा दूसरेकी प्राणरक्षाके काममे न लावे तो वह समझेगा कि उसने वड़ा भारी पाप—महान् दुष्कर्म—किया । परन्तु यदि किसी हिन्दूसे यह काम हो जाय तो वह इसे आत्मघातसे भी वड़ा भारी पातक समझेगा। ये सव वाते सामयिक शिक्षा और संसर्गके फल है । पिछली शताव्दीमे भारतवर्पमें लुटेरोके कई समुदाय थे जिनको ठग कहते थे । वे राह चलते हुए पथिकोको मार कर उनका द्रव्य लूट लेनेहीमें अपना धर्म समझते थे । वे जितने ही अधिक मनुष्योकी हिंसा करते थे समझते थे कि उन्होने उतना ही अधिक धर्मका काम किया है । एक ठग अत्यन्त ही दु:खित होकर अपना मनस्ताप इस प्रकार प्रकट करता था—"मैने उतने आदमियोको नहीं लूटा और न गला घोट कर उतने आदमियोको मारा जितना कि मेरे पिताने लूटा मारा था । इसलिए मेर अन्त करणमें वेदना हो रही है, मुझे हार्दिक दु.ख हो रहा है ! !" *

उदाहरण—विवाह-सम्वन्धका विकास ।

इसी प्रकार लैङ्गिक स्वच्छताके सम्वन्वमे भी मनुष्यके विचारोने पलटा खाया है । प्रत्येक देश और प्रत्येक युगके लोग इसके सम्वन्धमें भिन्न भिन्न धारणा रखते आये है । प्राचीन समयके और कुछ जातियोके इस समयके भी स्त्री-पुरुप सम्वन्धको देख सुन कर हमें रोमाच हो आता है और अवाक् होना पड़ता है। हमारे क्रोध और घृणाकी कोई सीमा

---

* Descent of man, Murray (1909) P. 180

नहीं रहती। अधिक दूर जानेकी आवश्यकता नहीं। क्या आज कलका हिन्दू नियोगको * उसी दृष्टिसे देखेगा जिस दृष्टिसे उसे प्राचीन हिन्दू देखते थे? सभी बातोंमें अपने मज़हबके गुलाम हिन्दू इस सम्बन्धमे अपने मज़हबको अक्षरशः क्यों नहीं मानते? पुनः प्राचीन समयमें एक पुरुषके साथ बहुतसी स्त्रियोके विवाह करनेकी प्रथा थी; परन्तु बहुविवाह पर लोगोंके आज क्या विचार हैं?

इतना ही नहीं, समाज-विज्ञानके मनन करनेसे यह स्पष्ट होता है कि किसी समयमे समस्त मनुष्यजातिके मध्य पुरुष और स्त्रियोंके बीच अभेद संमिश्रण (Promiscuity) की प्रथा थी। एक पुरुषके लिए एक या एकसे अधिक स्त्री (Polygamy) की प्रथा तब तक जारी न हुई थी। उस समय सम्पूर्ण स्वच्छन्दता थी, कोई बन्धन न गढे गये थे। उस अवस्थामें पुरुष-स्त्रीका लैङ्गिक सम्बन्ध पशुओसे ऊँचा न था। हेरोडोटस कहता है कि अगाथिर्सस (सीथियन) जातिमें प्रचलित रीतिके अनुसार प्रत्येक पुरुषको प्रत्येक स्त्री पर समान अधिकार रहता है। उनका ख्याल है कि इस प्रकार वे लोग आपसमे एक दूसरेके भाई होगे। आयलैंण्डकी केल्टिक जातिके बारेमें स्ट्रैबो लिखता है कि वे सभी स्त्रियोसे--अपनी माँ और बहनसे भी--संसर्ग रखते है। इसमें लज्जा या शर्म कुछ भी नहीं। व्हेरोके कथनानुसार सीक्रोप्सके पूर्व ग्रीस निवासियोंकी भी यही हालत था। चीनमें फ़ूबीके राजत्वकाल तक समस्त पुरुषोंका समस्त स्त्रियों पर समान अधिकार

---

* नियोगकी प्रथा प्राचीन स्पार्टामें (और शायद समस्त ग्रीसमें भी) प्रचलित थी। स्पार्टा (Sparta) मे यह नियम जारी था कि बुड्ढे और दुर्बल पुरुष अपनी स्त्रियोंको बलवान् पुरुषोंको दे डालें ताकि वे लोग देशके लिए बलवान् सिपाही उत्पन्न करे। (Leckey History of European Morals watts (1911) Vol. II P 122)

था। कोई स्त्री किसी पुरुषविशेषके अधिकारमे न रहता थी। स्ट्रैबो और भी लिखता है कि फेलिक्स अरेबियाके लोग अपनी माँसे भी ससर्ग रखते है। हमारा महाभारत कहता है कि "स्त्रियाँ स्वतंत्र थीं और वे उच्छृंखलता और स्वच्छन्दताके साथ विचरण करती थी। यौवनके आवेगमे वे अक्सर सतीत्व-पथसे भ्रष्ट भी हो जातीं थीं; परन्तु दोपी नहीं समझी जाती थीं। ऋषि उद्दालकके पुत्र श्वेतकेतुको यह प्रथा बहुत बुरी लगी और उन्होंने यह नियम बनाया कि स्त्री अपने पतिके साथ और पति अपनी स्त्रीके साथ सत्यशीलतासे रहे"। मेजर रौसकिंग कहते है कि कौरम्बा जातिमे स्त्री-पुरुपोका अभेद समागम प्रचलित है। कुछ लोग कहते है कि हम लोगोका त्योहार होली, इसी अभेद समागमका अन्तिम निश्वास है।* आस्ट्रेलियामे लड़कियोका दश वर्पकी ही आयुसे चौदह पन्द्रह वर्षके लड़कोके साथ समागम शुरू हो जाता है और इसके लिए उनपर कोई नाराज नहीं होता। इसी अभेद संमिश्रणसे एक और प्रथाकी उत्पत्ति हुई है जो हमे अत्यन्त ही जघन्य और अश्लील प्रतीत होती है। प्रथम प्रथम कोई स्त्री किसी एक पुरुपकी निजी सम्पत्ति न थी। परन्तु बहुत दिनो तक यह अवस्था कायम न रह सकी। पुरुपोके हृदयमे अन्य वस्तुओके समान स्त्रियोको भी अपनी निजी सम्पत्ति बनानेकी इच्छा हुई और उन्होने एक या एकसे अधिक स्त्रियो पर अपना अधिकार जमाना आरम्भ किया। प्रचलित प्रथाके विरुद्ध समाजको यह काम बहुत बुरा लगा; परन्तु साथ ही साथ उसने देखा कि वह इस नये वेगके रोकनेमे नितान्त अशक्त है। अतएव यह तसफिया हुआ कि स्त्रीको

* Bulletin of the Indian Rationalistic Society Vol. I pp. 77-78। डाक्टर सुबोधकुमार वसुका यह लेख पढ़ने ही योग्य है।

पूर्णतः एक पुरुषके अधीन होनेके पूर्व एक वार वेश्याका काम करना पडेगा। हेरोडोटस कहता है कि वैविलोनमें यह रिवाज था कि प्रत्येक स्त्रीको जीवनमें एक वार व्हीनसके मन्दिरमें वैठना और किसी अपरिचित आदमीके साथ प्रेमसहवास करना पडता था। एक वार मन्दिरमे वैठने पर, जवतक कोई अपरिचित आदमी उसकी गोदमे चॉदीका एक टुकड़ा न डाल दे और मन्दिरके वाहर उसके साथ संभोग न कर ले तव तक वह स्त्री अपने घर वापस न आ सकती थी। चाँदी देने वाला उस स्त्रीको आशीर्वाद देता था कि व्हीनस (Venus) उस पर कृपा करेगी। वह चाँदीका टुकड़ा अत्यन्त छोटा हो सकता था, परन्तु स्त्री उसे अस्वीकार नहीं कर सकती थी, क्योंकि वह वहुत ही पवित्र समझा जाता था। जो पुरुप प्रथम प्रथम इस टुकड़ेको फेंकता था, स्त्री निःशव्द उसके पीछे हो लेती थी। वह किसी पुरुषको अस्वीकार नहीं कर सकती थी। इस कार्य्यके उपरान्त वह देवीके प्रति अपने कर्तव्यसे छुटकारा पाती और तव घर आती। इसके वाद अधिकसे अधिक द्रव्य देने पर भी वह कभी परपुरुषके पास नहीं जा सकती थी। स्ट्रैवो कहता है कि अर्मीनियन जाति अपनी क्वाँरी लड़कियोको अनेइटिस (Anaitis) देवीको समर्पण कर आती है और मन्दिरमे वहुत दिनों तक वेश्याओके समान जीवन विताने पर भी उन लड़कियोंको पति प्राप्त करनेमें कठिनाई नहीं पडती। एक प्राचीन चीनी परिव्राजकके कथनानुसार कम्वोडियाकी अवस्था भी कुछ इसी तरहकी थी। प्राचीन ग्रीसमे भी मज़हवी वेश्याओंकी भरमार थी। हमारे यहॉं भी देव-दासियोकी कमी न थी। कुछ वैष्णव सम्प्रदायोंके [illegible]भिचार तो मशहूर ही है। प्राचीन रोममे 'स्त्रीधन-' शून्य लड़की [illegible] ही अवज्ञाकी दृष्टिसे देखी जाती थी। अतएव युवतियाँ

विवाहके पूर्व अपने शरीर (वेश्यावृति) के द्वारा कुछ रुपया उपार्जन कर लिया करती थीं। परन्तु इस कार्य्यसे उनके विवाहमे कोई वाधा न पड़ती थी।

इन सब अवस्थाओके अतिक्रमण करनेके पश्चात् मनुष्यसमाजमे वैवाहिक प्रथाकी उत्पत्ति हुई। परन्तु आदि अवस्थाओमे रिश्ते और नातेका कोई खयाल नहीं किया जाता था। हर्न कहता है कि चियेवे जातिके लोग अक्सर अपनी वहनो और बेटियोंके साथ भी लैगिक सम्बन्ध रखते है। लैंग्सफोर्डने *कैमैग्मट* जातिके बारेमे भी यही कहा है। *कूकी* जातिमे प्रत्येक पुरुपकी शादी प्रत्येक स्त्रीके साथ हो सकती है, केवल माँ बेटेके व्याहका निपेध है। जस्टिन टर्टूलियन कहता है कि प्राचीन फारसमे वहाँका मजहब माँ वेटेके सम्बन्धकी भी अनुमति देता था।

लैङ्गिक स्वच्छताके सम्बन्धमे मनुष्यके विचार-वैचित्र्यके और भी बहुतसे नमूने मिल सकते है। पर्य्यटन-कारियोने अपनी पुस्तकोमे ऐसी बहुतसी जातियोका वर्णन किया है जो मेहमानकी सेवामे अपनी पत्नियों और वेटियोको भी उपस्थित करती है। अपने यहॉके प्रचलित आतिथ्यके नियमोके अनुसार वे ऐसा करनेके लिए वाध्य है। यह स्वागतका एक अंश है। किसी स्त्रीके समर्पण किये जाने पर यदि कोई उसे अस्वीकार कर दे तो इसे किचनूक जातिके लोग बडा भारी अपमान समझते है। इस जातिमें तथा अन्य रेड इण्डियन जातियोमे अविवाहिता स्त्रियाँ वेश्याओके सदृश अनेक पुरुपोके साथ ससर्ग रखती है। यह सर्वथा बुरा या अनुचित नही समझा जाता, यहाँ तक कि अपने आत्मीय लोगोकी अनुमतिसे स्त्रियाँ स्वयं परपुरुषोंके पास जाती है और उनसे प्रेमकी

भिक्षा माँगती है। चुकची जातिके लोग भ्रमणकारियोंके सामने अपनी स्त्री और बेटीतकको उपस्थित करते हैं और यदि उन्हें अस्वीकार कर दिया जाय, तो इसे वे अपना अक्षम्य अपमान समझते हैं। सीयूक्स जातिके बारेमें भी यही बात लिखी गई है। कमैस्कडेल अलीटस तथा उत्तरी एशियाकी कई जातियोंका भी यही नियम है। दक्षिण अमेरिकाकी जंगली जातियोंके बारेमे लिखा गया है कि वे स्त्रियोंके सतीत्वकी तनिक भी परवाह नहीं करतीं। एस्किमो जातिमें दो मित्र अकसर दो एक रात्रिके लिए अपनी स्त्रियोको अदल बदल कर लिया करते है और यह मित्रताकी पराकाष्ठा समझी जाती है! चिपेवन जातिके यहॉ भी ठीक ऐसी ही बात है। कैलमैक और करगीज जातिके बारेमें लिखा गया है कि वे अपनी स्त्रियोको प्रसन्नतापूर्वक अपने मित्रों और परिचितोकी सेवामें भेजा करते हैं तथा एक मित्र अपने दूसरे मित्रको अपनी स्त्रीके साथ हार्दिकता बढानेमे प्रोत्साहित करता है। डकोटा लोग विवाहके पूर्व स्त्रियोके सतीत्वकी रत्ती भर भी परवाह नहीं करते। प्राचीन नाइकेर-गुआमें एक वार्षिक त्योहारके दिन सभी स्त्रियॉ पूर्णतया स्वतन्त्र हो जाती थीं और वे जिस पुरुषको चाहतीं उसके साथ ससर्ग कर सकती थीं। इनके यहॉ कुमारियोंके लिए तो कोई रोक टोक थी ही नहीं। वे वेश्यावृत्तिके द्वारा समुचित धन कमाकर अपना विवाह करती थीं। मौगोलकारेन और डोडा लोगोंके मध्य परपुरुषसंगति एकदम बुरी नहीं समझी जाती, और न इसके छिपानेका प्रयत्न ही किया जाता है। रेडकारेन लोग स्त्री पुरुषके भेद-भावरहित समागमका समर्थन करते है और कहते है कि यह तो उनके यहॉकी पुरानी चाल है। 'हाइलैंडस ऑफ इथियोपिया' नामकी पुस्तकमें हैरिस लिखते है कि सतीत्वकी ओर तनिक भी परवाह नहीं की जाती और स्त्रीके निकाल ले

जानेके लिए यहाँ कानूनन अधिकसे अधिक पाँच आना जुर्माना है। अपर कौगो पर बसनेवाली जातियोके बारेमे लिखा गया है कि विवाहके पूर्व पिता और भाई प्रत्येक कुमारीको केवल दो गज कपड़ेके लिए किसी पुरुपके हवाले कर देते है और इससे वह स्त्री बुरी नहीं समझी जाती और न इसके कारण उसके विवाहमे ही कोई अडचन उपस्थित होती है। पील्यू द्वीपवालोंकी भी यही अवस्था है। टहीटी, मैकरोनेशिया और कैण्ड्रोन द्वीपकी जातियोका भी यही वृत्तान्त है। टैहिटियनोंके बारेमे कुकने लिखा है कि हम लोग जिस प्रकार किसी अवसर पर बहुतसे लोगोके मध्य बैठकर भोजन करते है, उसी प्रकार ये लोग खुले मैदानमे लोगोंकी दृष्टिके सामने अपनी कामाग्निको शान्त किया करते है। वोटियाक लोगोके मध्य किसी कुमारीके पीछे यदि नवयुवकोका दल नही चला करता तो यह उसके लिए बडे अपमानकी बात समझी जाती है। कुमारावस्थाहीमे स्त्रियोका माता बन जाना उनके यहाँ बड़े सौभाग्य और सम्मानकी वात है। इससे उसके पिताको अधिक धन मिलता है और वह पति भी धनाढय प्राप्त करती है। मध्य अमेरिकाकी प्राचीन चिपचा जातिका वृत्तान्त यो है कि यदि विवाहके पश्चात् किसी पुरुपको यह माळूम होता था कि उसकी स्त्रीका किसी पुरुपके साथ समागम नहीं हुआ है तो वह अपने भाग्यको कोसने लगता था और एक भी पुरुपका चित्ताकर्पण न कर सकनेके कारण अपनी स्त्रीको अत्यन्त तुच्छ अनुमान करता था। प्राचीन जापानियोके बारेमे डिकसनने लिखा है कि पुत्रियाँ अपने पिताकी आर्थिक अवस्थाको सुधारनेके लिए अपने शरीरको बेचा करती थीं और इस तरह अपने पिताको सहायता पहुँचा कर जब वे घर लौटती थीं तब तनिक भी अवज्ञाकी दृष्टिसे नही देखी जाती थीं, वरन्

पितृ-प्रेमके कारण उनका सम्मान बढ जाता था। वर्तमान रूसमें हाल तक कुमारी स्त्री पूर्णतया अपने ज़मीन्दारके अधीन होती थी।

बहुविवाहके सम्बन्धमें भी लोगोंके विचारोंमें बड़ी विचित्रता दृष्टिगोचर होती है। ब्रेचुआना जातिके बारेमें लिखा गया है कि वे एक पुरुषकी एक ही स्त्रीकी प्रथाको समझनेमें भी असमर्थ हुए, कल्पना करना तो दूर रहा। अरबकी कुछ जातियोने भी इस प्रथाको एकदम असम्भव समझा। मकोलोलो स्त्रियोने जब यह सुना कि इंग्लैण्डमे एक पुरुषके एक ही स्त्री होती है तो वे स्तभित हो गईं। अधिक स्त्रियोको रखना वहाँ सम्मानकी बात समझी जाती है। आफ्रिकाकी कुछ जातियोके सम्बन्धमें रीडने लिखा है कि यदि कोई विवाहित पुरुष एक और स्त्रीका भार वहन कर सकता है तो उसकी पत्नी उसे एक और विवाह करनेके लिए सदा तंग करती रहती है; यहाँ तक कि विवश होकर उसे विवाह करना ही पड़ता है और यदि वह विवाह करना अस्वीकार करता है तो उसकी स्त्री 'कृपण' कहकर उसका तिरस्कार करती है। अरौकोनियन स्त्रियोका भी यही वृत्तान्त है।

मै समाजशास्त्र पर पुस्तक लिखने नहीं बैठा हूँ, इसलिए मुझे समाजशास्त्रके जटिल और विवादग्रस्त प्रश्नोंके स्पर्श करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। पूर्व कालमे स्त्रीपुरुषके मध्य अभेद समागमकी प्रथा प्रचलित थी या उस समय भी किसी न किसी प्रकारका वैवाहिक बन्धन विद्यमान था, ये सब बाते हमे समाजशास्त्रवेत्ताओंको झगड़नेके लिए छोड़ देनी चाहिए। बात चाहे जो हो, यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि पूर्वकालमें आज कलकी सी

लैङ्गिक स्वच्छता न थी। इन उदाहरणोंसे यह पूर्णतः प्रमाणित हो जाता है कि नीति सम्बन्धात्मक है तथा अन्य वस्तुओंकी तरह हमारी आचार-बुद्धि भी एक धीरे धीरे विकसित हुई वस्तु है।

उदाहरण—भ्रूणहत्या और बाल-हत्या।

और और बातोंमे भी मनुष्यके विचारोंमे इसी प्रकार आश्चर्य्यजनक परिवर्तन हुए है। इसके भी दो एक उदाहरणों पर दृष्टि डाल लीजिए। भ्रूणहत्या—गर्भ नष्ट करना—हमारे देशमे अत्यन्त ही बुरा माना जाता है। परन्तु क्या यह प्रत्येक देश और प्रत्येक समयमें ऐसा ही माना जाता था? ग्रीसमे अरिस्टोटल केवल इसकी अनुमति ही नहीं देता बल्कि यहाँ तक कहता है कि आबादीके एक निर्दिष्ट सख्यासे अधिक बढ जाने पर नियम द्वारा लोगोंसे जबरदस्ती इस कामको कराया जाना चाहिए। रोममे भी यह दोष पूर्ण रूपसे फैला हुआ था। सिर्फ इन्द्रियपरता या दारिद्रहीके कारण ऐसा नहीं किया जाता था, बल्कि अपने सौन्दर्य्यको बचाये रखनेके हेतु स्त्रियाँ अक्सर प्रसवकार्य्यकी अपेक्षा भ्रूणहत्याको अच्छा समझती थीं। यह नैतिक व्याधि वहाँ इतने प्रबल रूपसे फैली हुई थी कि कुछ लोगोकी जीविका इस काममे सहायता पहुँचानेसे ही चलती थी। वहाँ ऐसी स्त्रियाँ विरल थी जिन्होने जीवनमे एक बार भी इस दुष्कर्मको न किया हो। यह कर्म करके वे बडी भारी प्रशंसाकी भागिनी होती थीं। *

इसी प्रकार बाल-हत्याका रिवाज भी अनेक देशोंमे प्रचलित रहा है। स्पार्टामे दुर्बल बालकोको उनके माता पिता अकसर मरनेके लिए

---

* देखो Leckey–History of European Morals Vol. II. pp. 8-15.

किसी एक स्थान पर रख आया करते थे। लाइकर्गस और सोलनके कानून तो मशहूर ही है।

नीतिकी नीव बहुत गहरी और मजबूत चट्टानोंसे बनी हुई है। यह बालूकी भीत नहीं है। इसकी स्थिति उन विचारों और अनुभवों पर है जो कि विकसित होते होते सभ्य मनुष्यका सहज स्वभाव बन गये है। सदाचारको उसी प्रकार किसीने पैदा नहीं किया है जिस प्रकार पाशव, मानव या वनस्पति संसारको पैदा किया है। आज भी यदि हम देखना चाहें तो स्वयं अपनी आँखोसे देख सकते है कि नीति धीरे धीरे और किन किन अवस्थाओमेसे होकर विकसित हुई है। आज भी हमें बहुत सी जातियाँ ऐसी मिलेगी जो नीतिमे एकदम कोरी है और बहुत सी ऐसी है जिनका नैतिक बचपन अबतक समाप्त नहीं हुआ है।

नीतिकी नींव।

आप एक बहुत साधारणसा उदाहरण ले लीजिए—हत्यासे घृणा। आप यह कहेगे कि इस प्रवृत्तिको ईश्वरने सभी मनुष्यो और सभी जातियोके हृद्यस्थ किया है, कोई भी मनुष्य या जाति आपको ऐसी न मिलेगी जो इस प्रवृत्तिसे विहीन हो। परन्तु ऐसा नहीं है। ऐसी अनेकानेक जातियाँ आजतक विद्यमान है जो अबतक रक्तपात करना जरा भी बुरा नहीं समझती। डियाक युवती उस चाहनेवालेको अवज्ञाकी दृष्टिसे देखती है जिसने कोई सर न काटा हो। अमेरिकन रेड इण्डियन रमणी अपने प्रेमीकी बहादुरीकी परख उसकी झोपडीमे लटकते हुए सिरोंके द्वारा करती है और जिसने जितने ही फरेब और धोखेसे वे सिर प्राप्त हुए हों वह प्रेमी उतना ही प्रतिष्ठित समझा जाता है।

सदाचारकी उत्पत्ति मजहबके द्वारा नही हुई है, वरन् यह पूर्णतः विकसित वस्तु है—जैसे हत्यासे घृणा।

इज्रेलके पुजारियों और पैग़म्बरोने 'अगोग'के टुकडे टुकड़े करना जिहोवा (Jehovah) के प्रति अपना कर्त्तव्य माना था और हिब्रू स्त्रियोंमे 'जेल'की प्रतिष्ठा इस कारण हुई थी कि उसने एक सोये हुए मनुष्यके सिरमे—जिसने कि उसके घरमे आश्रय ग्रहण किया था—छुरा भोका था। 'ईश्वरके प्यारे मनुष्य' डेविड-ने केवल एक जघन्य ज़नाके छिपानेके लिए निर्दयता एवं छल-कपट-पूर्ण अनेकानेक हत्यायें की थीं। इन स्थानो पर ईश्वर द्वारा दिया हुआ आदेश—'तू हत्या मत करना'—न जाने किस कौनेमे जा छिपा था! असंख्यो जङ्गली मनुष्योने कैदियो और अपरिचित लोगोको बिना किसी पसोपेश, अनुताप या पश्चात्तापके भक्षण कर डाला है। पर असंख्यों ब्राह्मण और बौद्ध—जिन्होंने कि मोजेज (Moses) या मोज़ेज़-प्राप्त तख्ती पर लिखे हुए आदेशोके बारेमे कभी सुना तक नहीं—हत्यासे यहाँ तक भागते हैं कि कीट पतङ्गतककी जान लेना भी उन्हे असह्य है। * "पश्चिम आफ्रिकावाले अधिकांश लोग नर-मास-भक्षक है और उनके बीच मारना या मारा जाना दैनिक जीवनकी एक साधारण घटना समझी जाती है।+" फीजियन मनुष्य नरहत्याको तनिक भी बुरा नहीं समझता—यहाँतक कि जबतक वह किसीकी हत्या नहीं कर लेता तबतक बचन रहता है। आफ्रिकाके कुछ अंशोमे जंगली जातियाँ अभीतक किसी राजा या सरदारके मरने पर उसकी स्त्रियों, गुलामो या नोकरोको मार डाला करती है ताकि

---

* Laing—Problems of the Future P. 97.

+ Lyal—Asiatic Studies, quoted in from May H. Kingsley' s "Travels in West Africa."

वे परलोकमे उसका साथ दें और उसकी सेवा करे। डहौमीमें लोग अकसर अभीतक इसी लिए मारे जाते है कि जिसमें उनकी आत्माये वर्तमान बादशाहका सम्वाद उस बादशाहके किसी मृत पूर्व-पुरुषके पास पहुँचा दें और वहाँसे जवाव ले आवे। इन लोगोके यहाँ प्रति वर्प कुछ लोग इसलिए मार डाले जाते है कि जिसमे मृत बादशाहको प्रति वर्प नये नये अनुचर प्राप्त होते रहे। ये लोग अपनी झोपड़ियोको मनुष्यकी खोपड़ियोसे सजाते है और उन खोपड़ियोको प्राप्त करनेके लिए युद्ध किया करते है। स्पष्ट ही है कि इन हत्याओके पीछे मज़हबका किंचित् समर्थन अवश्य मौजूद है। प्राचीन मेक्सिकोमे देवताओकी वेदियो पर हजारो मनुष्योका बलिप्रदान होता था और वहाँ लडाइयोके आरम्भ करनेका कारण देवताओकी भूख ही बतलाई जाती थी। भूखे देवताओकी जठराग्निको शात करनेहीके लिए लड़ाइयाँ छेडी जाती थीं। नर-बलिदानकी प्रथा व्यापक रूपसे प्राचीन फिनिशियनो, सिथियनो, यूनानियो, रोमनो, असीरियनो और यहूदियों प्रभृतिमे फैली हुई थी।

बुशमैन जातिके सम्बन्धमे लिविंगस्टोन लिखता है–"एक बुशमैन अग्निके समीप बैठ कर अपनी शूरताकी व्याख्या कर रहा था। उसने पाँच बुशमैनोकी हत्या की थी—जिनमे दो स्त्रियाँ, एक पुरुष और दो बच्चे थे। मैने कहा–'तुम भी कितने वडे दुरात्मा हो जो अपनी निज जातिकी स्त्रियो और बच्चोकी हत्या करके गर्व कर रहे हो! ईश्वर तुम्हे क्या कहेगा, तुम उसे क्या उत्तर दोगे!' उसने उत्तर दिया कि 'ईश्वर यही कहेगा कि मै बडा चालाक आदमी था'। यहाँ पर ईश्वरसे उस मनुष्यका तात्पर्य उसके मृत सरदारसे था।" विल्सन और फोल्किनने अपने युगैण्डाके

वृत्तान्तमें इस तरह लिखा है—"यूगैण्डाके बादशाहका एक जवान अनुचर था। वह एक सरदारका पुत्र था और मेरे पास राजभवनसे सम्वाद लाया करता था। एक दिन सुवहको वह बहुत खुश खुश मेरे पास आया और कहने लगा कि मैने अभी अभी अपने पिताका वध किया है। जब मैने उससे इसका कारण पूछा तब उसने उत्तर दिया कि मै पिताकी अधीनतामे काम करते करते ऊब गया था और मेरी इच्छा स्वयं सरदार बननेकी थी। अतएव मैने बादशाहसे सलाह ली तो उसने कहा कि तुम अपने पिताको मार डालो और स्वयं सरदार बन जाओ। इसी लिए मैने ऐसा किया।" कूकी जातिके लोगोका अनुमान है कि जो मनुष्य सबसे अधिक शत्रुओंकी हत्या करेगा वही स्वर्गका भागी होगा और स्वर्गमे उसके हाथो मारे गये लोग उसकी सेवा करेगे। पंजाबके उत्तर-पश्चिम किनारे पर बसनेवाली कुछ जातियोमे कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं जिसने अपने हाथोको नर-रक्तसे कलुषित न किया हो। वहॉका प्रत्येक आदमी अपने हाथो मारे गये लोगोकी संख्याको याद रखता है। कैलेफोर्नियामे भी एक समय ऐसा ही होता था। जगली जातियोके लोग अपने वृद्ध पिता माता और सम्बन्धियोको अक्सर मार डालते है। वेण्ड लोग अपने बूढे बाप मा और नातेदारोको—जो काम करने और लडनेके योग्य नहीं रहते—या तो मारकर खा डालते है और या उन्हे जीवित गाड़ देते है। अनेक जगली जातियोका यही वृत्तान्त है। वेट प्रदेशमें कोई बूढा सरदार यदि जीवित ही न गाड दिया जाय तो यह उसके लिए बड़े अपमानकी बात समझी जाती है। फिजीकी सदाचारबुद्धि भी एक समय इसी तरहकी थी। अपनी माताको जीवित गाड़नेके समय फिजी द्वीपका एक मनुष्य कहता था कि "माताके प्रेमके कारण ही

मै ऐसा कर रहा हूँ और मेरे सिवा अन्य कोई आदमी इस पवित्र कामको नहीं कर सकता है ।" वह उसकी माता थी और वह उसका पुत्र था, इस लिए अपनी माताको जीवित गाड़ देना उसका धर्म था। इन लोगोका विश्वास है कि परलोकमे मनुष्योंका जीवन उसी अवस्थासे प्रारम्भ होता है कि जिस अवस्थामें वे यहाँ मरते हैं। अतएव इसमे कोई सन्देह ही नहीं है कि जिस कामको हम लोग घोरतम पाप समझते है वही काम बहुत सी जगहोंमे धर्मकार्य अनुमान किया जाता है। ये काम केवल प्रसन्नतापूर्वक किये ही नहीं जाते, बल्कि इनके नहीं करनेसे उन लोगोको दारुण आत्मग्लानि होती है। नरहत्या एक समय किस दृष्टिसे देखी जाती थी इसका पता वरगिल्ड (Wergild) संस्थासे—जो प्रायः समस्त योरोपमे एक समय प्रचलित थी—पूरे तौर पर चल जाता है। प्राचीन यूनानमें भी यही प्रथा थी। इस प्रथाके अनुसार मनुष्यके जीवन या मरण पर जोर नहीं दिया जाता था, वरन् किसी मनुष्यके मरनेसे उसके परिवार या वशको जो हानि होती थी केवल उसी पर लक्ष्य रक्खा जाता था। किसी व्यक्तिकी हत्या करना समस्त राष्ट्रके प्रति अपराध नहीं अनुमान किया जाता था। हत्याका बदला लेना ही मृत पुरुषके सम्बन्धियोका काम था। अर्थ-दण्ड लेकर भी वे संतुष्ट हो सकते थे। परन्तु प्रत्येक मनुष्यका मूल्य समान न होता था। हर मनुष्यकी श्रेणी या समाजमें उसके स्थानके अनुसार उसकी हत्याके लिए अर्थदण्ड भी कानूनके द्वारा निश्चित किया हुआ था। गरज यह कि मानव-जीवन एक पवित्र वस्तु है, इस विचारने तबतक मनुष्यके मस्तिष्कमे जन्मग्रहण नहीं किया था। परन्तु आज सभीके जीवनकी समान परवाह की जाती है और सभी हत्याओके लिए एक ही दण्ड है।

मानव-समाज पर दृष्टिपात करनेसे विदित होता है कि मनुष्यने अपनी सहृदयता और समवेदनाके भावोंको भी बहुत कठिनाइयोंसे और अनेक दिनोंके बाद प्राप्त किया है। कारेन्स जातिके बारेमें मेसन कहता है कि एक बूढी स्त्री अपनी जीर्ण कुटीमें मरणासन्न हो रही थी। उसके पुत्र और पौत्र यद्यपि बहुत दूरपर न थे, तथापि बुलाने पर कोई उसके समीप न जाता था। एक और जंगली जातिकी स्त्रीका वृत्तान्त है कि उसने अपने बीमार पतिके लिए एक मुर्ग़ीके जबह करनेसे एकदम इन्कार कर दिया। उत्तरमें उसने साफ साफ कह दिया कि उसका पति तो मरेगा ही, पर साथ ही साथ उसकी मुर्ग़ी भी जाती रहेगी! हब्शी जातिकी कई उपजातियोंके बारेमें भी ऐसी ही बाते लिखी गई है। यद्यपि वे कठोर स्वभावके नहीं है और मारकाटसे उन्हे प्रेम नहीं है, तथापि उनके हृदयमें करुणा, दया, या अनुकम्पाका कोई भी भाव नहीं है। किसी मनुष्य या पशुको घोर यंत्रणा या कष्टमे लोटते हुए देख कर उन्हें असीम आनन्द होता है। अशाण्टी लोगोंके यहाँ तो यह कहावत ही प्रचलित है कि "यदि किसी दूसरे मनुष्यको कष्ट हो रहा है तो समझो कि एक लकडीके टुकडेको कष्ट हो रहा है। दूसरोके दुःखसे तुम्हे मतलब? तुम वृथा चिन्तित मत होओ।" उमारा जातिके बारेमे वौन कहता है—"यह तो सभी कोई जानते है कि दूसरी जातियोंमे वूढे और बेकार लोग मरनेके लिए छोड दिये जाते हैं; परन्तु यह तो विश्वासकी सीमाहीसे बाहर है कि कोई माता अपने बीमार बच्चेकी झोपड़ी पर दो एक ऑटी घास डालनेसे भी इन्कार करेगी और शीत और गर्मीसे उसकी रक्षा न करेगी।" ये

उदाहरण-सहानुभूति-का प्रसार।

लोग बीमार आदमीको झोपड़ीसे अलग और अग्निसे दूर ठंढेमें फेक देते है, ताकि उसकी मृत्यु शीघ्र हो जाय। मारुटूज जातिके बारे-मे कहा गया है कि रक्तपात इन लोगोको इतना प्रिय है कि मनुष्य-की यन्त्रणाको देख कर इनके आनन्दकी कोई सीमा नहीं रहती। उत्तरी अमेरिकाकी जगली जातियोका वृतान्त है कि वे अपने नव युवकोका अनुशासन उन्हे कठिन यत्रणा देकर किया करते हैं। इस जातिकी स्त्रियॉ और बच्चे भी दूसरोको कष्ट देकर आनन्दित होते हैं।

उदाहरण—चोरी और डकैतीसे घृणा।

प्रत्येक समय और देशके मानव-समाजोके अवलोकनसे पता लगता है कि चोरी और डकैतीके बारेमे भी मनुष्यके विचार सदा एक तरहके नहीं रहे है। कोमेञ्चा लोगोमे सबसे बडे चोरका सबसे अधिक सम्मान होता है। पटेगो-नियनोकी भी यही हालत है। पूर्वीय आफ्रिकामे पशुओका चोराया जाना तनिक भी बुरा नही समझा जाता। बहुत सी जगली जातियॉ—जो अपनी जातिकी सीमाके मध्य चोरी या डकैती नहीं करती—दूसरी जातिके लोगोकी वस्तुओंका चोराना या बलात् अपहरण करना प्रशंसनीय काम समझती है। बदीऊन लोग एक अपरिचित आश्रितकी रक्षा अपना प्राणतक देकर करते हैं, परन्तु उस मनुष्यके उनकी कुटीसे बाहर होते ही और अपनी सफरमें कुछ दूर आगे बढते ही उसे लूट लेते है और यदि इसमे उसकी हत्या तककी भी सम्भावना हो तौभी वे इस कामसे बाज़ नहीं आते। इउरोराई जातिके सरदारके बारेमें लिखा गया है कि जब तक कोई मेहमान उसकी बस्तीमे रहता है तब तक वह उसका पूरा सत्कार करता है, परन्तु बस्तीसे बाहर निकलते ही उसको लूट लेता है। फ़िजि-यनोके बारेमे लिखा गया है कि वह आदमी—जो अपने घरसे कुछ

ही गजकी दूरी पर किसी मनुष्यकी जान एक सामान्य छुरी या कुल्हाड़ीके लिए ले सकता है—उसी मनुष्यके घरमें प्रवेश करते ही अर्थात् चौखट पार करते ही उसकी रक्षा अपना प्राण देकर भी करनेको तैयार हो जाता है। टोका जातिमें छिपकर चोरी निस्सन्देह बुरी बात समझी जाती है, परन्तु रक्तपात करके जबरदस्ती दूसरोंसे वस्तुओंका छीन लेना सम्मानकी बात है। मवोंकी सभामें एक बार जब ओडनोव्हन यह उपदेश दे रहा था कि तुम लोगोंको लूट मारके हमले बन्द करना चाहिए, तो एक मनुष्य क्रोधसे चिल्ला उठा—"या अल्लाह, तो फिर हम लोगोंका जीवन ही किस प्रकार कट सकता है!" सीमान्त पर बसनेवाली पठान जातिकी कुछ मातायें ईश्वरसे सदा यह प्रार्थना किया करती हैं कि उनके पुत्र विख्यात लुटेरे हों। अफरीदी माताओंकी भी यही प्रार्थना होती है। टर्कोमैन जातिके यहाँ प्रसिद्ध डाकू और लुटेरा साधु और सन्त बनता है और लोग उसकी कब्रको तीर्थस्थान समझ कर वहाँ जियारतके लिए जाया करते हैं। कूकी जातिमें कौशलसे धन चोरानेवाले प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। इस विद्याकी वहाँ बहुत चाह है। अंगमी जातिके बारेमें भी लिखा है कि ये लोग पक्के चोर होते हैं। प्राचीन स्पार्टन लोगोंके सदृश उन्हे भी चोरीमे प्रवीण होनेका गर्व है। चोरी करते समय पकडे जाने पर ही चोर अवज्ञाकी दृष्टिसे देखा जाता है। चिनूक जातिका वृत्तान्त भी ठीक इसी तरहका है। बगैण्डा, फीजियन, और मैंगोल्यिन जातियोंके बारेमे भी यही बाते लिखीं गई है। बलूचिस्तानमे एक प्रसिद्ध प्रचलित पदका तात्पर्य्य यह है कि जो मनुष्य चोरी और हत्या करता है वह अपनी सात पीढी तकके पूर्वजोंको स्वर्ग भेजता है। वहाँ एक कहावत भी है कि जो आदमी चोरी और डकैती नहीं करता उस आदमी पर ईश्वर कदापि प्रसन्न नहीं हो सकता।

सहानुभूतिके सदृश न्यायबुद्धि भी सदाचारका एक प्रधान अंग है । परन्तु अद्य पर्य्यन्त इसके सम्बन्धमे भी मनुष्यके विचार बडे विचित्र दीख पडते है । जंगली जातियोकी न्यायबुद्धिके अनुसार एक जातिका कोई मनुष्य यदि दूसरी जातिके किसी मनुष्यके हाथों मारा जाता है तो हत्या करनेवाले मनुष्यके सिवा उस दूसरी जातिके अन्य किसी मनुष्यके मार डालनेसे भी जगली जातियोकी न्याय-बुद्धि सन्तुष्ट हो सकती है । उस दूसरी जातिके किसी मनुष्यको अवश्य मारा जाना चाहिए । चाहे हत्या करनेवाला मनुष्य मारा जाय या किसी निर्दोप व्यक्तिकी ही हत्या क्यो न हो—जंगली जातिके मनुष्योका अन्तःकरण इसमे कोई भेद अनुमान नहीं करता । फिलिपाइन टापूकी जंगली जातियोका वृत्तान्त है कि वे अन्तर्जातीय हत्याका हिसाब बराबर रक्खा करती है । जैसे किसी एक जातिके मनुष्योके द्वारा किसी दूसरी जातिके चार मनुष्य मारे गये तो दूसरी जातिके लोग इसे सदा याद रक्खेंगे । अब यदि हम मान लें कि इन्होने पहली जातिके केवल तीन ही मनुष्योंकी हत्या की है तो ये पहली जातिके एक और अधिक मनुष्यकी जान लेना अपना कर्तव्य समझेगे । बदला लेनेके लिए सबकी जान बराबर नहीं समझी जाती । क्वीअगनीज जातिके बारेमे ब्लुमेण्ट्रिटने लिखा है कि “इस जातिके मध्य रक्तका बदला रक्तसे लेना अति पवित्र कर्तव्य समझा जाता है । यदि किसी दूसरी जातिके किसी साधारण मनुष्यके द्वारा इस जातिके किसी साधारण मनुष्यकी हत्या होती है तो हिसाब बहुत सुगमतासे साफ हो जाता है, अर्थात् उस दूसरी जातिके किसी साधारण मनुष्यकी जान ले ली जाती है; परन्तु यदि किसी जातिकी उच्च श्रेणी-

उदाहरण—मनुष्यकी न्याय-बुद्धि-का विकास ।

का कोई मनुष्य मारा जाता है तो इसका बदला दूसरी जातिके किसी साधारण मनुष्यके मारनेसे नहीं चुक सकता। बदलेमे साधारण मनुष्यका मारना या कुत्तेका मारना समान समझा जाता है। हत्या करनेवालेके मारनेसे भी इनकी न्याय-बुद्धिकी संतुष्टि नहीं हो सकती। इसलिए जबतक हत्या करनेवाले मनुष्यके कुलका कोई आदमी उच्च श्रेणीमे शामिल नहीं कर लिया जाता है तब तक मृत मनुष्यके कुलके लोगोको प्रतीक्षा करनी पडती है। इसलिए अकसर बहुत वर्षोंतक मृत मनुष्यके कुलका बदला रुका रहता हे। बदला लेनेवाले लोग प्रत्येक अवस्थामे मनुष्यको मारकर उसके सिरको काट लेते है और उसे अपने साथ घर लाकर इस बातका त्योहार मनाते हैं और फिर उस खोपडीको झोपडीके सामने लटका देते है। अरेबियन जातियोंके बारेमे भी लिखा है कि खूनका बदला लेनेका अधिकार क्रमशः एक पीढीसे आगन्तुक पीढियोको प्राप्त होता है। शायद ईसाइयोकी बाइबुलकी न्यायप्रियता भी इसी तरहकी है। आज्ञाका उल्लंघन करनेके कारण ईश्वर आदमसे बदला तो लेता ही है, परन्तु इतनेहीसे उसकी सतुष्टि नहीं होती। वह आदमके वंशमात्रको शाप देता है और मानव-समाजमे अनेक व्याधियों इत्यादिको फैलाकर तथा उन्हे नरकमे भेज कर उनसे बदला लेता है और आगे अनन्त समय तक लेता ही रहेगा। अतएव जंगली मनुष्योकी न्याय-बुद्धिके सदृश ही बाईबुलका भी न्याय है। उसके अनुसार भी यह आवश्यक नही है कि अपराधके लिए अपराधीहीको दण्ड दिया जाय। आधुनिक आस्ट्रेलियनोका न्यायविधान यह है कि यदि किसी अपराधीका पता न लग सके तो उसके समस्त सम्बन्धियोंको मार डालना चाहिए। बाइबुलकी न्यायबुद्धि इससे भी बढी चढी मालूम होती है।

हमारी सदाचार-बुद्धि भी उन्हीं प्रवृत्तियोंसे उन्नत हुई है जिनको हमने अपने पशु पूर्वजोंसे प्राप्त किया है । * इसकी

सदाचारकी उत्पत्ति ।

जड़ हमारे सामाजिक नातोंमें है और इसकी उत्पत्ति हमारी सामाजिक प्रवृत्तिकी उत्पत्तिके साथ ही हुई है । नीतिने उसी दिन जन्म ग्रहण किया जिस दिन समाजने । साधारण कल्याण मङ्गल प्राप्त करनेके लिए हम जिस दिन समाजमे सम्बद्ध हुए उसी दिन हमने धर्म और अधर्म इत्यादि शब्दोका आविष्कार किया । उन कार्य्योंको जिनसे समाजको लाभ पहुँचे हमने अच्छा, प्रशंसनीय और धार्मिक कहा और जिनसे समाजको नुकसान हुआ बुरा, निन्दनीय और पापपूर्ण कहा । अतएव समाजरक्षा ही सभी नीतियोका लक्ष्य था । पहले पहल आदमीकी सहानुभूति उसके कुटुम्बके साथ हुई, पश्चात् वह मातृभूमिके प्रेममे परिवर्त्तित हुई और अन्तमे—जैसा कि भारतवर्षमे हुआ—यह विश्व-व्यापिनी हुई । केवल मनुष्य ही हमारी सहानुभूतिका भागी नहीं हुआ वरन् कीट पतंग तक भी हुए ।

इसी लिए मै कह चुका हूँ कि नीति सम्बन्धात्मक है । प्रत्येक युग और प्रत्येक देशके लोगोकी पड़तालके लिए नैतिक नियमकी कोई एक साधारण कसौटी विद्यमान नहीं है ।

उन्नतिमें बाधा—मनुष्य प्राचीनको सहजमे ही नहीं छोड़ता ।

मनुष्यका धर्मशास्त्र और उसका अन्तःकरण भी समाजके साथ साथ उन्नति करता है । जिन कामोको सभ्यताकी प्रथम सीढी पर वह अति उत्तम और पवित्र समझता है कुछ दिन पीछे उन्हींको वह अवज्ञाकी दृष्टिसे देखने लगता है, यद्यपि पुरानी चालें बहुत समय तक मनुष्यका

* देखो अध्याय पाँचवाँ ।

पिण्ड नहीं छोडतीं। प्राचीन नवीनसे सहजहीमें नहीं वदला जाता। *इसी लिए बहुत समय पीछे तक, उन्नत अवस्थामें भी, पुरानी बातोंका अवशेष रह जाता है, यद्यपि वे एकदम खोखली और मृतप्राय हो जाती है और उनसे हमारा कोई लाभ नहीं होता, वल्कि वे हमारे चरित्र और हृदय पर वहुत बुरा प्रभाव डालती है।* हमारे खाद्याखाद्यके नियमोंके और कुछ दिनो और महीनोंके पवित्र इत्यादि समझनेके भी यही कारण है। इसी कारण किसी शूद्र द्वारा छुई हुई वस्तु खा लेनेको हम नरहत्यासे भी बुरा समझते हैं। इसीलिए गो-हत्या नरहत्यासे भी घृणित समझी जाती है। मुसल्मानोके वहावी सम्प्रदायमें जना और हत्या तम्बाकू पीलेनेकी अपेक्षा साधारण दोप माने जाते है। साइबेरियाके समीप रहनेवाले रूसके कुछ धार्मिक सम्प्रदायोका भी यही हाल है। वे समझते है कि सभी पापोका प्रायश्चित्त हो सकता है, परन्तु तम्बाकू पी लेनेका कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है। "जंगली जातियोमे अपनी जातिके भीतरकी किसी कुमारीसे विवाह कर लेना, किसी मनुष्यकी हत्या करनेसे भी निपिद्ध समझा जाता है। इसी लिए हमारे यहाँ किसी स्त्रीका सतीत्वभञ्जन क्षमा किया जा सकता है, पर नीच-कुलोत्पन्ना रमणीसे विवाह करना कदापि क्षम्य नहीं है। इसीलिए विवाहका वन्धन ढीला होना उतना बुरा नहीं माना जाता जितना कि फैशनका।"* इसी लिए हम झूठ वोलनेको उतना बुरा नहीं समझते जितना कि तामचीन और एनामेलके वर्त्तनोंमे भोजन करनेको। हम झूठ वोल कर, चोरी कर, जना कर, पाखण्डी बन कर, मुकद्दमे लड़ कर, छल और धोखेसे दूसरोका सर्वमोचन करके भी पण्डित नहीं महात्मा तक

* Samuel Laing—Problems of the Future, and A modern Zoroastrian P 79. Watts, R. P. A. cheap Reprints Series.

कहला सकते हैं, समाजके उच्चतम आसन पर आरूढ रह सकते है और आदर या सम्मानके साथ देखे जा सकते है, पर भोजन-सम्बन्धी नियमोको तोड़ कर कदापि नहीं, चाहे हम हजारों सत्कर्म ही क्यो न करते रहे हो। यथार्थ दुष्कर्मके लिए हमारे यहाँ कोई जाति और समाजसे बाहर नहीं निकाला जाता।

वंशानुक्रमके नियमों द्वारा सदाचार और सामाजिक प्रवृत्ति दृढ होती है।

सभी नैतिक नियमोकी उन्नति वशानुक्रम (heridity), परिस्थिति, (environment) तथा प्राकृतिक चुनाव (Natural Selection) के नियमो द्वारा हुई है। इसका सबसे *साधारण नमूना हमें सभी सामाजिक जानवरों —चींटी और मधुमक्खियोंसे लेकर मनुष्य तक की—उस प्रवृत्तिमें मिलेगा* जो एक *घोंसले तथा एक छत्ते और एक समूहके निवासियोंकी हत्याका निषेध करती है और जो सबको साधारण भलाईके हेतु काम* करनेके *लिए* उत्तेजित *करती* है। जिन जीवोमें यह प्रवृत्ति अधिक बलवती होगी वे जीवनसग्राममे उतने ही सफल और दीर्घजीवी होगे और प्रत्येक पहली पीढी आगन्तुक पीढियोंमें पारम्परिक नियमोंके द्वारा इस प्रवृत्तिको मजवूत करेगी। माता पितासे केवल हमे अपना रूपरग मात्र ही नहीं प्राप्त होता, वरन गुण अवगुण और चाल ढाल भी प्राप्त होती है। *

---

* "Man Versus the State" नामी हर्बर्ट स्पेन्सरकी एक पुस्तकमे इसका एक वहुत ज्वलन्त उदाहरण दिया है। अपर हडसन पर वसे हुए एक छोटे शहरमें-जहाँ और जगहोकी अपेक्षा अपराध और दारिद्रकी मात्र ज्यादा है—एक स्त्री रहती थी जिसका नाम मार्गेट था। यह कुलटा एक वड़ी सन्ततिकी माता हुई। शहरके कागजों और दफ्तरोसे यह मालूम हुआ कि अनेक पगलों, सिढ़ियो, उन्मत्तों, नशेवाजों मूढो और वेश्याओं इत्यादिके अतिरिक्त उसकी ...मेंसे दो सौको सजा मिली थी।

पुनः इस प्रवृत्तिको हमारी परिस्थितिसे भी बड़ी सहायता मिलती है।

परिस्थिति-का प्रभाव।

'हम जैसे वायुमण्डलमे और जैसे संसर्गमे रहेगे हमारी आचारबुद्धि भी वैसी ही होगी। यह स्वयं स्पष्ट है। बल्कि ज्ञानयुक्त मनुष्योंके ऊपर वंशानुक्रमकी अपेक्षा परिस्थितिका ही अधिक प्रभाव पड़ता है। क्या हम कह सकते है कि हमारे बच्चोकी आचारबुद्धि एक ही तरहकी रहेगी चाहे वे इंग्लैण्डमे पालित हों या भारतवर्षमे, अमेरिकामे या असभ्य जगालियोके बीच? चाहे वे साधुओकी संगतिमे रहे या दुश्चरित्रोकी? बुरी परिस्थितिमे नैतिक जीवन कदापि निर्वाह नही किया जा सकता। अच्छेसे अच्छा मनुष्य भी यदि असभ्य और जगालियोंके मध्य रख दिया जाय, तो और किसी कारणसे न भी सही, परन्तु कमसे कम आत्मरक्षाके लिए तो उसे छल पापण्ड इत्यादिका आश्रय ग्रहण करना ही पड़ेगा।

सदाचारकी उत्पत्ति मनुष्यके अनुभवसे हुई है।

उपर्युक्त प्रमाणो और उदाहरणोसे यह सिद्ध होता है कि *सदाचारकी उत्पत्ति मनुष्यके अनुभव और तजुर्वेसे हुई। हत्यासे समाजको नुकसानी होती है, मनुष्यने यह उसी प्रकार जाना जिस प्रकार उसे यह मालूम हुआ कि आदमी पानीमें डूबता है और आगमें जलता है।*

मलागासी जातिके मध्य हत्या, चोरी और व्यभिचारके लिए नियम बने है। किसी मनुष्यके पिता-माताको कोसनेके लिए वहाँ अर्थ-दण्डकी प्रथा है। वह निष्प्रयोजन कसमे भी नहीं खाया करते। अपने नियमोके सम्बन्धमे पूछे जानेपर उन्होने उत्तरमे कहा कि "ये नियम उचित और सुखकारक है और इनके पालनेमे ही सुभीता है। यदि ये नियम न होते तो हम लोग एक साथ रह ही क्यो कर सकते

थे।" ओटाहिटन जातिके बारेमे कुक लिखता है कि "ये लोग भले और बुरे कामोके भेदको पहचानते है। इनका अन्तःकरण इस पहचानमे इनकी सहायता करता है। जब कभी ये दूसरोंके प्रति ऐसा काम करते है जिसे स्वयं अपनी प्रति किया जाना पसन्द नहीं करते तब स्वयं अपनी निन्दा करने लगते हैं।"

यथार्थ विकास और उन्नति बौद्धिक ही है।

प्राणिशास्त्रके सभी विद्यार्थी स्वीकार करेगे कि *यथार्थ विकास और उन्नति बौद्धिक ही है। विकासके पथ पर जीव जितना ही अधिक अग्रसर होता है उतना ही अधिक उसके काम विचार-पूर्ण होते है, अर्थात् उसके काम उद्देशहीन नहीं होते। दूसरे शब्दोंमें उसका ध्येय स्पष्ट होता है और वह जो कुछ करता है इसी ध्येयके साधनके लिए।* यह हो सकता है कि वह कामोंको प्रत्येक वार ज्ञानतः न करे परन्तु उसके काम *निरुद्देश* नहीं होते। *निम्न श्रेणीके जीवोंकी अपेक्षा उसके कामोंमें उद्देश-साधनका अधिक सामर्थ्य और क्षमता होती है। बहुतसे निम्न श्रेणीके जीवोंका शरीर-सचालन उतना ही उद्देश-हीन होता है जितना कि किसी उन्माद-पीड़ित मनुष्यका हाथ पैर पटकना।*

विकासके साथ साथ जीवोंके कामोका उद्देश और लक्ष्य स्पष्ट होता है और उनके कामोंमे उद्देश-प्राप्तिकी अधिक क्षमता होती है।

इन्फ्यूजोरीयम (Infusorium) जातिके जीवाणु (Protozoa) सदा तैरते ही रहते है, परन्तु उनके निरन्तर गतिशील रहनेका कोई अभिप्राय नहीं होता। वे अन्य किसी जीवका पीछा करनेके लिए या अन्य किसी जीवसे बचनेके लिए नहीं तैरते रहते। उनका गतिशील रहना पूर्णतः *निरुद्देश* होता है। *ज्ञानतः और स्पष्ट* पर *लक्ष्य* न रखकर जब कभी तैरते तैरते वे किसी

खाद्य पदार्थके समीप पहुँच जाते हैं तो उसे ग्रास कर लेते हैं और जब कभी वे स्वयं अन्य जीवोंके पास पहुँच जाते हैं तो उनके द्वारा स्वयं कवलित हो जाते हैं। इन क्षुद्र जीवोंमेंसे—जिनकी आयु अधिकसे अधिक कई घण्टोंको होती है—ज्ञानेन्द्रियोंके एकदम अनुन्नत रहनेके कारण, सैकड़े निन्नानवे इस पूर्ण आयुको भी प्राप्त नहीं कर सकते। भोजन न प्राप्त कर सकने या अन्य जीवों द्वारा कवलित हो जानेके कारण इनकी अकालमृत्यु हो जाती है। *ध्येय और आचारमें साफ़ सम्बन्ध न होनेके कारण* यह स्पष्ट ही है कि जीवनका कायम रहना *अनुकूल वाह्य घटनाओं* पर ही निर्भर है। अब यदि हम जल-जीवोंहीमेंसे एक दूसरे-प्रकारके जीवों—रौटिफर (Rotifer)—को लें, तो हम देखेंगे कि यद्यपि ये जीव भी अपने विकासमें बहुत पीछे हैं, तथापि पूर्वोक्त जीवोंकी अपेक्षा कहीं अधिक उन्नति कर चुके हैं। इनके शरीरके पिछले भागमें रोयें होते हैं जो पहियेके सदृश घूमते हैं और जिनके द्वारा ये अन्य जीवोंको पकड़कर अपने उदरस्थ कर लेते हैं। अपनी दुमके द्वारा ये अन्य-वस्तुओंमें लटक जा सकते हैं तथा अपने अवयवों और समस्त शरीरको सिकोड़ कर विपदसे अपनी रक्षा भी करते हैं। इन जीवोंमें ज्ञानेन्द्रियोंकी किंचित् उन्नति हो चुकी है। *उद्देग और कार्य्यके मध्य एक प्रकारसे कुछ सम्बन्धके स्थापित हो जानेके कारण* इन जीवोंका जीवन पूर्वोक्त जीवोंके सदृश *पूर्णतः वाह्य घटनाओं पर निर्भर नहीं है,* क्योंकि ये जीव *किंचित् ज्ञानतः* अपना भोजन पकड़ते हैं और आपत्तियोंसे अपनी रक्षा करते हैं, यद्यपि इनकी यह शक्ति अभी बहुत ही न्यून है। परन्तु इन जीवों और पूर्वोक्त जीवोंके बीचका अन्तर स्पष्ट है। इसीलिए इनकी आयु भी अपेक्षाकृत बड़ी होती

अन्तरको एक और उदाहरणके द्वारा स्पष्ट करना अच्छा होगा। हम मोलस्का (Mollusca) जातिकी दो उपजातियो—असीडीयन (Ascidian) और सेफोलोपोडा (Cephalopoda)—की तुलना करे। इनमेसे पहले जीवोका जीवन पूर्णतः बाह्य घटनाओंके अधीन है। पानीका झकोरा इन्हे सदा इधर उधर लिये फिरता है। इनका जलमे रहना भी इनकी इच्छाके ऊपर निर्भर नही है। हो सकता है कि लहरो द्वारा ये जलमे ही इधर उधर घुमाये जाते रहें, परन्तु यह भी सम्भव है कि इन ही लहरो द्वारा जलसे एकदम निर्वासित भी हो जायँ और किनारेपर अपनी जान खोये। अन्य जीवोसे ये अपनी रक्षा भी नहीं कर सकते और *दैवयोगसे ही* अन्य समुद्रीय जीवोके उदरस्थ होनेसे बचते है। अतएव यह स्पष्ट ही है कि इनके कामोमे उद्देशसाधनका सामर्थ्य नहीं है। परन्तु सफोलोपोडा जातिके जीव उनसे बहुत कुछ उन्नत है। ये *ज्ञानतः* शिकार पकडते है तथा शत्रुओसे अपनी रक्षा भी कर सकते है। रीढ-युक्त (Vertiberate) जीवोकी तुलनासे भी यही बाते दृष्टिगोचर होती है। मछली खोराककी तलाशमे जलमे इधर उधर घूमती रहती है और अपनी दृक्-शक्ति या घ्राणशक्तिके द्वारा बहुत नजदीकसे ही खोराकका पता लगा सकती है तथा किसी बड़ी मछलीके समीप आते ही बड़े वेगसे भागती है। यद्यपि मछलीने कार्य्य और उद्देशके बीच सम्बन्ध स्थापित कर लिया है तथापि यह सम्बन्ध अभीतक घनिष्ठ नहीं हुआ है। यह सम्बन्ध बहुत सधारण दर्ज़ेका है। परन्तु जब हम एक वहुत उन्नत जीवको लेते है तो देखते है कि उसमे कार्य्य और उद्देशके बीचका यह सम्बन्ध बहुत दृढ हो गया है। हाथी अपनी घ्राणशक्ति या दृक्-शक्तिके द्वारा बहुत दूरसे ही खोराकका पता लगा लेता

है। भागनेकी ज़रूरत होने पर वह बहुत तेजीसे भाग भी सकता है। पुनः रक्षाके लिए उसे हर समय भागनेकी जरूरत भी नहीं रहती है। वह दाँत, सूँड़ और भारी पैरोके द्वारा शत्रुओ पर हमला भी कर सकता है और उनसे प्राण भी वचा सकता है। उसकी बुद्धिका विकास बहुत कुछ हो चुका है। वह सारे कामोको ज्ञानपूर्वक करता है। सरस फलोसे लदे हुए वृक्षोकी डालोको तोडता है तथा खाद्य और अखाद्य वनस्पतियोको पहचानता है, ठंढकके लिए जलमे घुसता है, सूँड़से अपने शरीर पर जल डालता है, वृक्षकी डाल तोड़कर उससे पखेका काम लेता है—उससे मक्खियोको भगाता है और आवाज देकर अपने झुण्डको विपदकी सूचना भी देता है। अतएव यह निर्विवाद है कि हाथीका जीवन वाह्य घटनाओ पर औरोकी अपेक्षा कहीं कम अवलम्बित है। अब यदि हम मनुष्यके आचरणको देखे तो यह निर्विवाद सिद्ध होता है कि *मनुष्यके कार्य्य और उद्देशमें घनिष्ठतम सम्बन्ध स्थापित हो गया है।* मछलीके इस क्षणके भ्रमणका उसके पहलेके भ्रमणसे कोई सरोकार नहीं है और न उसके आजके भ्रमणका भविष्यके भ्रमणसे कोई सरोकार होगा। परन्तु असभ्यसे असभ्य मनुष्यके आचरणमे भी *पूर्वापरका सम्बन्ध वहुत कुछ स्थापित हो गया है।* वह अपने अनुभवोको याद रखता है और उनसे काम लेता है। युद्धमे कष्ट होने या हार होनेसे वह अस्त्रोका आविष्कार करता है, जलसे पार होनेकी असुविधाओको स्मरण रख कर नौकायें वनाता है तथा शीत और गर्मीसे कष्ट प्राप्त करनेके कारण झोपड़ियाँ बनाता है। उसके कामोमे *निश्चितता, विवेचना और बुद्धिमत्ताका बहुत कुछ समावेश हो चुका है। इसी लिए जीवनसंग्राममें मनुष्यको सबसे अधिक शिष्टता प्राप्त हुई है।*

नीची श्रेणी और ऊँची श्रेणीके जीवोकी तुलनासे ऊपर जो निष्कर्ष निकला है वही निष्कर्ष मनुष्योकी सभ्य और असभ्य जातियोंकी तुलनासे भी निकलता है। यदि भोजनहीके सम्बन्धमें विचार किया जाय तो विदित होगा कि जंगली मनुष्यका जीवन सभ्य मनुष्यकी अपेक्षा बाह्य घटनाओं पर कहीं अधिक निर्भर है। जंगली मनुष्यको शिकार बहुत मुश्किलसे प्राप्त होता है। वह नित्य, नियमित रूपसे ज़रूरतके समय भोजन नही प्राप्त कर सकता। कल भोजन मिलेगा या नही, इसे वह निश्चित रूपसे नहीं कह सकता। अतएव भोजन मिलने पर वह ज़रूरतसे कहीं अधिक परिमाणमे भोजन कर लेता है, क्योकि कलका तो कोई ठिकाना ही नहीं है; हो सकता है कि कई दिनो तक लगातार उपवास करना पडे। याकूट जातिके एक पॉच वर्षके बच्चेके सम्बन्धमे लिखा है कि वह तीन मोमबत्तियाँ, कई सेर मक्खन और पीले साबुनका एक बड़ा टुकडा फौरन भक्षण कर गया! याकूट और टौगीज जातिके वयःप्राप्त लोग प्रतिदिन बीस सेरसे भी अधिक मास चट कर डालते है! परन्तु सभ्य मनुष्य नियमित रूपसे और आवश्यकताके अनुसार अपेक्षातः कहीं अल्प परिमाणमे भोजन करता है। उसकी खाद्य वस्तुओका चुनाव भी उत्तम होता है। अपने भोजनके लिए वह सम्यक् रूपसे बाह्य घटनाओके अधीन नहीं है। वह कृपिविद्या जानता है और प्राप्त हुए भोजनको भविष्यके लिए भी सञ्चित रख सकता है। उसके भोजन तरह तरहके, सुस्वादु और स्वच्छ होते है। उसके वस्त्र जल वायुके अनुकूल होते है और वह ज़रूरतके अनुसार अपने वस्त्र बदलता रहता है। इसी प्रकार सभ्य और जगली मनुष्योके घरोमे भी अन्तर है। भेद केवल मकानकी सुन्दरताहीमें नही है, वरन् सभ्य मनुष्यके भवन जल वायु और ज़रूरतोके अनुकूल होते है। सभ्य

और असभ्य मनुष्यके दैनिक जीवन और काम धन्धो पर दृष्टिपात करनेसे तो आकाश पातालका अन्तर दीख पड़ता है। क्षणमात्रके लिए भी यदि हम व्यवसाय, राजनीति या सभ्य जीवनकी अन्य जटिलताओको स्मरण करेंगे तो कहना पड़ेगा कि *सभ्य मनुष्यके कार्य्य और उद्देशमें घनिष्ठतम सम्बन्ध स्थापित हो गया है।* दूसरे शब्दोंमें सभ्य मनुष्यके कार्यों द्वारा कहीं अधिक उद्देशकी प्राप्त होती है और वह किसी कामको निष्प्रयोजन नहीं करता। अन्य जीवोंकी अपेक्षा *बाह्य जगतसे सभ्य मनुष्यका बहुत कुछ सम्बन्ध-विच्छेद हो चुका है। मनुष्य सोलह आने बाह्य जगतकी घटनाओंके अधीन नही है।* **वंशवृद्धि या समाज-रक्षाके** सम्बन्धमे भी विचार करनेसे यही स्पष्ट होता है कि जीवकी उन्नतिके साथ साथ उसकी यह शक्ति भी बढती है। मछलियॉ करोड़ो अण्डे देती है जिन्हे अन्य क्षुधातुर मछलियॉ बड़े वेगसे भक्षण करजाती है। इनमेसे कुछ अण्डोके बचने ही पर मीन-वंशका जारी रहना सम्भव है। यहॉ कार्य्य और उद्देशमे एकदम समायोग नहीं स्थापित हुआ है। पर इन मछलियोंसे वे मछलियॉ कही श्रेष्ठ है जो अपने अण्डकोपमे ही अपने अण्डोको से लेती है या जिनके मध्य नर अण्डोकी रक्षा करता है। यहाँ कार्य्य और उद्देशके मध्य किंचित् समायोग स्पष्ट दीख पडता है। इनके बाद हम देखते है कि पक्षी घोसले बनाते और अण्डे सेते है। इस विपयकी विवेचना सातवे अध्यायमे की जा चुकी है, इस लिए अब यहाँ लिखनेकी जरूरत नहीं जान पड़ती।

आचार और उद्देशके समायोगका ही नाम सदाचार है।

सदाचारके द्वारा ही मनुष्यने इतनी उन्नति की है। सदाचारके ऊपर ही सभी उन्नति निर्भर है और सदाचार-नियमोंके या दूसरे शब्दोमे जीवन-नियमोके पालनसे ही मनुष्य उन्नति कर सकता है। सदाचारके द्वारा ही कार्य्य और उद्देशमे समायोग स्थापित होता है। *वैज्ञानिक दृष्टिसे जिस आचारका लक्ष्य और उद्देश स्पष्ट हो तथा*

जिसके द्वारा उद्देश-प्राप्तिकी सबसे अधिक सम्भावना हो वही सदाचार है। एक सच्चरित्र आदमीका समस्त जीवन नैयमिक रूपसे संचालित होता है। *उसके किसी काममें उच्छृंखलता नहीं होती।* उसके सभी काम *शृंखलाबद्ध और सूत्र-ग्रथित* होते है *और उनमें विधान, व्यवस्था और नैयमिकताकी बू आती हैं,* यहाँतक कि किसी दी हुई अवस्थामें हम उसके कामोंको *अग्रिम बतला सकते हैं। उसके आच-रणोंमें पूर्वापरका सम्बन्ध है।* किसी साधारण आदमीने जो सदा सत्य पथ पर नहीं चलता, यदि किसीसे रुपये उधार लिये हैं तो हम नहीं कह सकते कि वह रुपये वापस करेगा या नहीं, या उन रुपयोंको वसूल करनेके लिए नालिश करनेकी आवश्यकता होगी या नहीं। यदि उसने किसीसे स्थान-विशेष या समय-विशेष पर उपस्थित होनेका वादा किया है तो हम नहीं कह सकते कि वह अपने वादेको पूरा करेगा या नहीं। हम नही कह सकते कि किसी अवसर पर वह सत्य बोलेगा या झूठ। परन्तु सच्चरित्र आदमीके सभी काम नैयमिक होते हैं। उसके कामोंमें पूर्वापरका सम्बन्ध है, इसलिए अवस्था-विशेषमे हम उसके कामोंको अग्रिम बतला दे सकते हैं। एक पूर्णतया सच्चरित्र आदमीके कारोवारमें *गणितविद्याके अंकोंकीसी यथार्थता विद्यमान* रहती है। वह अपने वादोंको सम्यक् रूपसे पूरा करता है। यदि उसने किसीके साथ कोई समझौता किया है तो वह उसे अक्षर अक्षर पूरा करता है। यदि उसने किसी-को कोई वचन दिया है तो वह उसका रत्ती रत्ती पालन करता है और यदि उसने कारोवारके सम्बन्धमे किसी तरहका कौल करार किया है तो वह हर तरहसे उसका पालन करता है। वह जब कभी बोलता है तो सत्य ही बोलता है। यदि उसने विवाह किया है तो वह पिता और पतिके सभी कर्तव्योंको पालन करता है। एक शब्दमे उसके सभी काम

व्यूहके मध्य सिपाहियोंके सदृश कठिन अनुशासनके अन्दर रहते हैं। असंयमित या विचार-हीन आचरणका ही नाम दुराचार है।

विकासके साथ साथ जीवोंके आचरणमें विविध-ताका भी समावेश होता है।

एक बात और है । *विकासके साथ जीवोंके आचरण केवल संयमित और नियमित ही नहीं होते*, वरन् *विभिन्न भी होते हैं। उनमें नानात्व और बहुविधता आ जाती है।* ऊपर असभ्य मनुष्यके जीवनकी एकरूपता और सभ्य मनुष्यके जीवनकी विविधताके सम्बन्धमें अनेक बाते कही जा चुकी हैं। यह विविधता सभ्य मनुष्य-के जीवनमें पराकाष्ठा पर पहुँच गई है, क्योंकि उसका सुख दुःख, मंगल अमगल, समाजके साथ आवद्ध है। वह केवल ऐसे ही कामोको नही करता जिनका सरोकार उसके वैयक्तिक जीवनसे हो, वरन् ऐसे कामोको भी करता है जिससे समस्त समाज या समस्त मानव जातिका भी लगाव होता है। यह स्पष्ट ही है कि उस आदमीके सभी आचरण, जो केवल अपनी ही वयक्तिक आवश्यकताओंको पूरा करता है, सदा एक ही तरहके होंगे। परन्तु उस आदमीके आचरण, जो केवल अपनी ही नहीं वरन् अपनी स्त्री और बच्चोंकी भी फिक्र रखता है, स्वभावतः भिन्न होंगे। पुनः एक देश-भक्तके आचरणमें उक्त मनुष्यके आचरणसे भी अधिक विविधता पाई जायगी। यदि अपने वैयक्तिक हितके साथ साथ मनुष्य अपने पारिवारिक उत्तरदायित्व तथा अपने नागरिक उत्तर-दायित्वको भी स्मरण रक्खेगा तो स्वभावतः उसे बहुत तरहके काम करने पड़ेगे। उसे शिक्षासम्बन्धी, राजनीति-सम्बन्धी, और व्यवसायसम्बन्धी इत्यादि सभी बातोंमें भाग लेना पड़ेगा। संक्षेपमें विकासके साथ साथ जीवनके काम केवल संयमित और नियमित ही नहीं होते, वरन् *जटिल और विभिन्न* भी हो जाते है। इसीलिए ऊपर कहा गया है कि यथार्थ उन्नति

बौद्धिक ही है तथा सदाचारकी उत्पत्ति मनुष्यके अनुभव और तजुर्बेसे हुई है। *इसीलिए बुद्धिकी महत्ता पर जोर देना वैज्ञानिक नीति-शास्त्रका एक प्रधान काम है। जिस कामको प्राणिसंसार अज्ञानपूर्वक, विना ध्येयको स्मरण रक्खे, प्रायः निरुद्देशताके साथ—या ज्ञानके धीमे प्रकाशके द्वारा करता आया है, मनुष्यके लिए उचित है कि वह उस कामको पूर्ण साहस, उत्साह, और वैज्ञानिक कौशलके साथ* सम्पन्न करे। ज्ञानसे युक्त होने पर वह अँधेरेमे न टटोलता फिरे। उद्देशको जान लेने पर वह बुद्धि-ग्राह्य और उपयुक्त साधनोसे उसके प्राप्त करनेकी चेष्टा करे। *जीवनके इतिहास पर नजर डालनेसे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि यथार्थ सदाचार भी यही है।*

हमारे अधिकार और कर्तव्य-के भावोंमें उलट फेर।

अधिकार और कर्त्तव्य एक ही सिक्केके उलटे और सीधे पृष्ठ है। प्रथम प्रथम वल और अधिकारमे कोई भेद न था। जो वलवान् था वही अधिकारी भी था। 'जिसकी लाठी उसकी भैस' की कहावत चारितार्थ होती थी। धीर धीरे यह सिलसिला परिवर्त्तित होने लगा। अन्तमे ज्ञान, सहृदयता, सहानुभूति, दया एव इन्साफके भावोके वढनेसे अधिकारकी स्थिति केवल वल पर न रही, वरन् दुर्वलोकी दुर्वलता पर, और आश्रयहीनोकी आश्रयहीनता पर हो गई। हम यह समझने लगे—यद्यपि अवतक हम लोगोंने इसे पूर्णरूपसे हृदयगम नहीं किया है—कि जो सवसे अधिक वलवान् है, जिनका सवसे अधिक अधिकार है उन पर सवसे अधिक कर्त्तव्यका वोझ है। पहले जिनके ऊपर हम जुलम करते थे अव उनका अधिकार मानने लगे है। इसके कुछ उदाहरण देख लीजिए। *

---

* इस विपयकी विशेष आलोचना करना चाहे तो पाठक केरिडनकी The Darkness, the Dawn and the Day नामक पुस्तकको देख सकते हैं।

कुछ उदाहरण–१ स्त्रियोंके साथ व्यवहार।

सबसे पहले आप स्त्री पुरुषके भेदको ले। यह भेद सभी ऊँचे जानवरोमे विद्यमान है। पुरुष बल और पराक्रमसे युक्त है, स्त्री अबला, कोमल और दुर्बल है। प्राचीन पुरुषने स्त्रीवर्ग पर उसकी कमजोरीके कारण अपना साधारण और स्वाभाविक आधिपत्य जमाया था। वह उनको यदि लड़ाईमे गिरफ्तार करता तो जीवनपर्य्यन्त अपनी लौंडी बना कर रखता था। पुराने जमानेमे एक परिवार और दूसरे परिवारके बीच बहुतसी लड़ाइयोका उद्देश केवल स्त्री-प्राप्ति ही होता था। इससे उन्हे दोहरा फायदा होता था। प्रथम तो उनकी संख्या बढती और दूसरे उनके द्वारा पैदा हुए बच्चोसे उनके परिवारका गौरव बढता। प्राचीन रोमके इतिहासमे स्त्रियोंके इस प्रकार गिरफ्तार किये जानेके अनेको उदाहरण है। प्राचीन रोमकी जनसख्या इसी प्रकार बढी थी। स्त्री-हरण तथा स्वयम्वरसे स्त्रियोंके ज़बरदस्ती छीन लानेके अनेको उदाहरण हमारे इतिहासमे भी विद्यमान है। पैशाच, आसुर और गान्धर्व विवाह हमारे यहाँ भी प्रचलित थे। यह उस समयकी बात है जब विवाहकी प्रथा उन्नत और पवित्र नहीं हुई थी। स्त्रियाँ उस समय सम्पूर्णतः अधिकारविहीन थी। पुरुषवर्गके जूठेसे उनकी उदरपूर्ति होती थी। निजजनित सतति पर भी उन्हे कोई अधिकार नही था। घरमे उनका स्थान गाय भैंस इत्यादि पालतू जानवरोसे ऊँचा नही था। इन जानवरोके समान ही वे पुरुषवर्गकी सम्पत्ति थी। उन्नत समाजमे इन बातोका अवशेष अब भी बहुत कुछ मिलता है।* जरा सोचनेसे

---

* मनुस्मृतिके इस प्रसिद्ध श्लोकको स्मरण कीजिए—

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्रीस्वातंत्र्यमर्हति॥—मनु० ९,३

आपको अनेको उदाहरण मिल सकेगे। असभ्य जातियोके इतिहासमें आपको ऐसे अनेकानेक उदाहरण मिलेगे जहाँ पुरुषोंके मरनेके वाद धन सम्पत्तिके साथ साथ उनकी स्त्रियाँ भी उनके साथ जीती गाड़ दी गई थीं या वलिदान कर दी गई थीं। स्त्रियोके सम्बन्धमे एक समय मनुष्यके विचार कहाँ तक नीचे और अश्लील थे यह आपको केवल इन दो शब्दोके अर्थ पर ध्यान देनेहीसे अच्छी तरह स्पष्ट हो जायगा। १–'जन' यह फारसीका शब्द है। 'जद' मस्दरसे 'अमर' है। अर्थ है मार। यानी सिवाय ताड़न प्रताड़नके स्त्रियोके साथ और कोई उत्तम व्यवहार मुनासिव नहीं। २–'औरत' इस अरवीके शब्दका अर्थ है गुह्यस्थान। अर्थात् स्त्रियॉ केवल अपने गुह्य स्थानके नामसे पुकारी जाती थीं।

चियेवयन, कूकी, टूपी, पटैगोनियन तथा अन्य वहुतसी जातियोमें भारी काम धंदा स्त्रियोहीके मत्थे रहता है। कष्ट-साध्य कामोको स्त्रियाँ ही करती है। पुरुपोका काम लडने और शिकार करनेके अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। आफ्रिकामे भी ऐसे ही प्रमाण मिलते है। वहॉ स्त्रियॉ ही घर बनाती है, खेत जोतती है और अनाज उपजाती हैं। जलावन और पानी लाना, तथा भोजन पकाना भी उनहींके मत्थे है। कठिनसे कठिन परिश्रम-साध्य कामोमें भी पुरुप स्त्रियोकी मदद नहीं करते। एक काफिर पुरुपने एक वार कहा था कि "मेरी स्त्री मेरे बैलके तुल्य है, अतएव उसे बैलहीके सदृश कठिन परिश्रम करना पड़ेगा।" अमारा जातिके वारेमे ऐण्डरसनने लिखा है कि इस जातिके पुरुषवर्ग एकदम आलसी होते है। जो काम स्त्रियॉ नहीं करती हैं वह गुलामोंके सुपुर्द किया जाता है। कौगोपर वसनेवाली जातियोके वारेमे लिखा है कि कृषिकार्य्य सोलहो आने स्त्रियो और गुलामोके जिम्मे ही रहता है। राजाकी

पुत्रियाँ और पुत्र-वधुये भी खेतीका काम करती है। पेरुविन जातिके सम्बन्धमे लिखा है कि परिश्रम करना स्त्रियोहीका काम है। जमीन जोतना, बीज बोना, फसल काटना यह सब स्त्रियोहीका काम है। उनके पति घरमे बैठकर, सीने पिरोने, बेल बूटे काढने, कपड़े बुनने तथा अन्य स्त्रियोचित कामोको करते रहते है। लोकमतके अनुसार कठिनसे कठिन कामोंमे—अत्यन्त दुःखमे भी—पुरुषवर्ग स्त्रियोकी सहायता नहीं कर सकते। ऐसा करनेसे उनकी बडी बदनामी होती है। डकोटा जातिके बारेमे लिखा है कि "लड़ाईके समय—वाग्युद्धमे–एक स्त्री दूसरी स्त्रीसे कहती है–तुच्छ स्त्री, मैने तेरे पतिको आग लगानेके लिए झोपड़ीमे लकड़ी ले जाते हुए देखा है। तू कहाँ थी जो तेरे पतिको स्त्री बनना पडा!" ये जातियाँ इस व्यगको सबसे बुरी गाली अनुमान करती है। अब यदि हम वर्तमान समयमे अपने समाजके मध्य स्त्रियोके स्थानको स्मरण करेगे तथा इस सम्बन्धमे इन जंगलियोके विचारोसे अपने विचारोकी तुलना करेंगे तो हमे अपने और इन जगलियोके मध्य बहुत कुछ सादृश्य दीख पडेगा। परन्तु यहाँ पर हम इस विषयके अन्दर प्रवेश करना आवश्यक नही समझते। एस्किमो जातिके मध्य स्त्रियाँ बहुत भारी भारी पत्थर ढोते हुए देखी गई थीं। कुछ पत्थर इतने भारी थे कि जिनसे उनके शरीरतकके टेढे होनेकी सम्भावना थी। परन्तु पुरुषवर्ग समीपमें ही खड़े खड़े चुपचाप उदासीनताके साथ तमाशा देख रहा था और इनकी सहायतामे वह एक उँगली तक हिलाना निष्प्रयोजन समझता था। अपनी स्त्रीको मार कर खाजानेका फिजियन मनुष्योको पूरा अख्तियार है। फ्यूजियनो और आस्ट्रेलियनोके मध्य, स्त्रियाँ भोजनके लिए वध की जाती है। इन उदाहरणोंके पश्चात् स्त्रियोके गाय बैलके

-सदृश खरीदे और बेचे जानेकी तो बात ही चलाना व्यर्थ है। यह प्रथा अनेक जातियो और देशोंमे प्रचलित है।

परन्तु सौभाग्यसे मनुष्यमे वे भाव विद्यमान थे जो दया, सहृदयता और इन्साफके स्वरूपमे प्रकाशित होते है। बुद्धि ज्ञान एवं अनुमानके बढने पर, स्त्रियोकी दुर्बलता, उनकी तकलीफे और उन पर किये गये अत्याचारोको देख कर पुरुषोके हृदयमें एक अदृश्य यन्त्रणा हुई, दया और सहानुभूतिका संचार हुआ, जिससे उन्होंने अपने कठोर व्यवहारको कोमल बनाया। यथासमय यह भाव और भी उन्नत हो गया, यहॉ तक कि आज स्त्रियोके अधिकार और पुरुषोंके कर्तव्यकी घोषणा उच्च स्वरसे हो रही है। परन्तु कुछ ही समय पहले केवल पुरुषोहीके अधिकारका डंका पिट रहा था। अधिकार और कर्तव्यका यह उलट फेर अभीतक समाप्त नहीं हुआ है। हम अभीतक स्त्रियोके साथ हार्दिक सहानुभूति नहीं रखते और न उनका यथार्थ सम्मान ही करते है, तौभी पहलेकी अपेक्षा उनका भाग्य एकदम पलट गया है। निःसंदेह एक युगान्तरसा प्रतीत होता है।

२ पिता-पुत्रका सम्बन्ध।

दूसरा उदाहरण पितापुत्रके सम्बन्धका है। प्राचीन असभ्यावस्थामे पिता पुत्रसे अच्छा भोजन करता था। पुत्रपौत्रोपर पिताको स्वाभाविक अधिकार प्राप्त था। पिता शासन-कर्त्ता और पुत्रवर्ग शासित होते थे। वह आज्ञा देता था और वे उसे पालन करते थे।वह राजा और हाकिम,पुत्रवर्ग उसकी रियाया—उसकी प्रजा। प्राचीन समयका राजा खानदानका सरदार, पिता या पूर्वज ही हुआ करता था। राजनीतिसे यह निर्विवाद सिद्ध है कि राज्य या शासनपद्धतिका अंकुर यही था। यहॉ भी वही युगान्तर हुआ है जो हम पहले देख चुके है। स्थानाभावके कारण मै इस

पर सविस्तर विचार नहीं करना चाहता। Fustel De Coulanqes की The Ancient City नामक पुस्तकमें प्राचीन ग्रीस और रोममें पुत्र पर पिताको क्या क्या अधिकार प्राप्त थे, उनकी पूरी सूची दी है। पाठकवर्ग चाहे तो उसे देख सकते हैं। रोमनसमाजमें पिता पुत्र या पुत्रियोंको प्राणदण्ड तक दे सकता था। यही बात प्राचीन यहूदी समाजमें भी थी। बाइबुलके ओल्ड टेसटामेण्टसे भी यही बातें टपकती हैं। स्पेन्सर कहता है * कि चीनमें स्त्रीके लिए अपने पति पर कोई अभियोग लगाना अक्षमणीय दोप है और पिताकी आज्ञा भंग करना वैसा ही घोर पातक समझा जाता है जैसा कि हत्या करना। प्राचीन समयमें पिता पुत्रका क्या सम्बन्ध था तथा पिता पुत्रके साथ क्या व्यवहार रखते थे, इसके कुछ प्रमाण हमें जगली जातियोंसे भी प्राप्त होते हैं। फिडजिअन और निउगैनाकी जातियाँ अपने बच्चोको अक्सर दूसरी जातियोंके हाथ बेच डालती है। आस्ट्रेलियन अपने बीमार बच्चोंको निःसहाय छोड़ देते है। अक्सर बच्चोकी चर्बी और मासको वे अपनी बसियोंमें गूँधते है।

बुशमैन लोग अपने बच्चोको बिना किसी अनुताप या पश्चात्तापके मार डालते हैं। हौटेण्टौट लोग अकसर अपने बच्चोको जीवित गाड़ देते हैं। प्राचीन समयमें समग्र बच्चोंकी हत्या होती थी। प्राचीन यूनान और रोमकी बाते तो मशहूर ही है। टयूटन और केल्ट जातियाँ भी ऐसा ही करती थीं। उस युगके लिए बच्चोंका बेचा और खरीदा जाना साधारण बात था। प्रायः सभी असभ्य जातियोंमे यह प्रथा अद्यपर्य्यन्त प्रचलित है। बाइबुलके पूर्वभागसे विदित होता है कि यह प्रथा प्राचीन यहूदी जातिमें भी पूरे तौरसे प्रचलित थी। गरज यह कि उस समय पुत्रोको कोई अधिकार न थे। प्राचीन रोमका पेट्रिया पोटेस्टास (Patria Potes-

tas कुलपतिका अधिकार) मशहूर ही है। वहॉ पुत्र पिताकी आज्ञा या इच्छाके विना विवाह तक नही कर सकता था और न वह कानूनन किसी सम्पत्तिका स्वामी हो सकता था *। विप्लवके पूर्व तक आधुनिक फ्रासमे भी पुत्र पुत्रियोंके साथ गुलामोका सा व्यवहार किया जाता था। क्रुद्ध हो जानेपर पिता अपने वयःप्राप्त पुत्रोंको भी कारागार भेज सकता था और अपनी पुत्रियोको बलात् स्त्रियोके मठोमे कैद कर सकता था। अर्थात् उन्हे अधिकार था कि वे अपनी पुत्रियोको सांसारिक सुखोसे वंचित रख कर उन्हे आजन्मके लिए जोगिन बना दे।

पुत्र पुत्रियोके प्रति पितावर्गके कठोर आचरणोके कुछ उदाहरण ऊपर दिये जा चुके है। उनके साथ ही मातापिताके प्रति पुत्रोंके कठोर आचरणके भी बहुतसे उदाहरण प्राप्त होते है। बूढे माता-पिताको मार डालने या जीवित गाड़ दिये जानेके सम्बन्धमे हम पहले ही कह चुके है। फिजीमें लड़कोको प्रथम पाठ यही सिखलाया जाता है कि वे अपनी माताओको पीटा करे। हैटेण्टौट जातिके बालक अपनी माताओको बड़े बडे डण्डोसे पीटा करते है और इस तरह अपनी माताओके पीटनेको वे अपनी मानरक्षा अनुमान करते है। इसे वह पुरुषार्थ और साहसका काम समझते है। अपनी माताके द्वारा कुछ ताड़न प्रताड़न होनेपर जुलू जातिके बालकको अपनी माताके मार डालनेतकका

---

* अपने भारतीय समाजकी हालत जाननेके लिए मनुस्मृतिका यही श्लोक पर्य्याप्त होगा —

भार्या पुत्रश्च दासश्च त्रय एवाऽधना स्मृता.।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम्॥ —मनु ८, ४१६।

अर्थात् मनुके अनुसार स्त्री पुत्र भी गुलामों और अन्य वस्तुओंके सदृश कुल-पतिकी सम्पत्ति है। उन्हें स्वय कोई स्वत्व प्राप्त नही है, वे किसी सम्पत्तिके स्वामी नही हो सकते। उनकी कुल-सम्पत्ति कुलपतिकी ही सम्पत्ति है।

जातिमे अपनी मातासे क्रुद्ध हो जानेपर एक पुत्र यह कहते हुए सुना गया था—"मेरी माँ बहुत बकती है। वह जबतक जीवित है, तब तक मुझे जरा भी चैन नहीं मिल सकता। मैं उसे अवश्य बेच डालूँगा—चाहे मुझे पाँच रुपयेसे अधिक या एक घण्टे-के अतिरिक्त और कुछ भी न मिले।" वे केवल ऐसा कहते ही नहीं, वरन् करते भी हैं। माताओंके साथ पुत्रोका यह व्यवहार तो समझमें भी आ सकता है, क्योंकि असभ्य समाजमे स्त्रियोका स्थान पशुओं और गुलामोसे किसी भी प्रकार ऊँचा नहीं है; परन्तु असभ्य समाजमें पिताके साथ भी पुत्रोका वर्ताव अच्छा नहीं दीख पड़ता। वघून जातिके मध्य नित्य प्रति ही वयःप्राप्त पुत्रोका पिताओके साथ झगड़ा हुआ करता है। पूर्व आफ्रिकाकी जंगली जातियोके वारेमें वर्टन कहता है कि शैशवावस्थाके समाप्त हो जाते ही पिता और पुत्र परस्पर के शत्रु हो जाते है। निष्कर्ष यही है कि मनुष्यके इतिहासमे किसी समय माता पिता और सन्तानोंके मध्यका सम्बन्ध किसी भी प्रकार पशुओसे उन्नत न था।

अब अधिक उदाहरण देनेका स्थान नहीं है। पाठकवर्ग यदि विचारेगे तो नैतिक वुद्धिके इस प्रकार पलटा खानेके उन्हे दैनिक जीवनमे ही अनेकों उदाहरण मिल जावेंगे। इस प्रकार पहले बड़े छोटोके ऊपर, धनवान् धनहीनोंके ऊपर, मालिक भृत्योंके ऊपर, उच्चकुलोत्पन्न नीचे कुल वालों पर, और ब्राह्मण अन्त्यज जातियों पर अपना साधारण आधिपत्य मानते थे; परन्तु उपर्युक्त भावोके प्रभावसे यहाँ भी हेर फेर उपस्थित हुआ है और इससे हम भावी युगमें बल पराक्रम और असमानताजनित अन्य सभी अनुचित अधिकारोके मिट जानेकी प्रतीक्षा कर सकते हैं।

सारांश यह है कि मनुष्य अकेले स्वेच्छाचारी स्वार्थपूर्ण स्वतंत्र जन्तुसे धीरे धीरे एक सहृदय और सामाजिक जानवर बन रहा है। एकान्तवासीसे वह सहवासीमें परिवर्तित हो रहा है। यह परिवर्तन सम्पूर्णताकी ओर जितना ही अग्रसर होगा उतना ही मनुष्यका सामाजिक स्वभाव, उसकी सहृदयता और सहयोगी शक्तियाँ हमेशा इस्तेमाल किये जानेके कारण मजबूत होती जायँगी और उसका स्वतंत्र स्वार्थपूर्ण स्वभाव काममें नहीं लाये जानेके कारण लुप्त होता जायगा। परन्तु ये कुप्रवृत्तियाँ अभीतक पूर्णरूपसे जीवित हैं और कौन कह सकता है कि मनुष्य यदि चेष्टा और सुधार द्वारा इन्हें न उखाड़ फेंके तो और कितने दिन तक जीवित रहेंगी। बहुत उन्नतसे उन्नत जातियोंके बारेमे भी हम यह कदापि नहीं कह सकते कि उन्होने अपने प्राचीन स्वतत्र, असामाजिक, स्वार्थपूर्ण स्वभावको एकदम परित्याग कर डाला है। हमारे यहाँ चिकित्सालय, अनाथालय, विद्यालय, आदि भले ही स्थापित हों और मातृपितृ-हीन बच्चों, दुर्बलो, असमर्थों, निःसहायोंके पालन पोषणका भले ही कुछ प्रबन्ध हो, परन्तु युद्धक्षेत्रका भयकर चित्र अभी तक हमारी आँखोके सामने नाचा करता है। हम अभीतक देखते हैं कि निर्दयतामें मनुष्य पशुओंसे भी कहाँ तक अधिक बढ़ सकता है। हम देखते हैं कि अपनी बुद्धि और ज्ञानके द्वारा उसने हिंसाके क्या क्या यन्त्र निकाले हैं। हम देखते हैं कि अपनी हिंसक और लोभी प्रवृत्तियोके छिपानेके लिए उसने 'स्वदेशप्रेम' इत्यादि कैसे कैसे अनोखे शब्दोंका आविष्कार कर रक्खा है। हम अबतक युद्धको और युद्धमें मरनेको आदरणीय समझते

मनुष्यने अपने स्वेच्छाचारी और स्वार्थपूर्ण स्वभावको अब भी सर्वथा नहीं छोड़ दिया है।

है । निःसन्देह अवसर आ पड़ने पर मजबूरीकी हालतमे लड़ाईसे भागना वड़ा अधर्म और कापुरुपता है, पर लडाईके लिए लड़ाई किसी प्रकार भी आदरकी वस्तु नहीं हो सकती । आश्चर्य्य है कि हत्या या ज़ना करनेवाला एक व्यक्ति तो समाजद्वारा दण्ड पावे और लड़ाईमे सारा समाज उन्हीं सव कार्य्योंको प्रसन्नतापूर्वक करे! हम अव-तक देखते है कि वलवान् अवल पर, पुरुप स्त्री पर, पिता पुत्र पर, वड़ा छोटे पर, ब्राह्मण शूद्र पर, अमीर ग़रीव पर, और मालिक नौकर पर अत्याचार कर रहे हैं । हम अव तक देखते है कि स्वार्थवश होकर मनुष्य अवतक किन किन धोखेवाजियोका और किन किन चालाकियोंका आश्रय लेता है एवं कितने वड़े वड़े अपराध कर डालता है ।
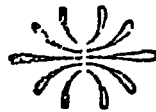
पाँचवाँ अध्याय ।

पशु-संसारमें सदाचारकी झलक ।

इस बातको प्राणिविद्याके सभी ज्ञाता जानते हैं कि ऐसे भी अनेक प्रकारके जीव है, जो सामाजिक है और यह स्पष्ट है कि सहानुभूतिके विना सामाजिकता नहीं हो सकती तथा इस सहानुभूतिमे ही सदाचारकी जड है । अतः जानवरोकी सामाजिकताको देख कर हमे मानना पडता है कि उनमे भी सदाचारका अकुर विद्यमान है । सामाजिक जानवर अपनी जातिके जानवरोंके साथ रहनेमें सुखी होते है, संगियोके प्रति सहृदयता दिखलाते है और अपने जातिवालोकी मदत भी करते है ।

जानवरोकी सामाजिकना अकसर इस हदतक पहुँच जाती है कि कभी कभी हम कई उपजातियो (Species) को भी एक साथ रहते हुए पाते है । डारविन कहते है कि अमेरिकामें वन्दरोंकी कई उपजातियॉ—-जिनका जातिविभेद एकदम स्पष्ट है—साथ रहती है । काग, साधारण कौवे और मैना पक्षियोंके झुण्ड भी एक साथ ही निवास करते हुए देखे गये है । मनुष्य कुत्तोको पालता और प्यार करता है, पर कुत्ते भी क्या अपने स्वामीके साथ कम स्नेह दिखलाते हैं ? एक कुत्ता अपने मालिकके साथ चुपचाप घंटो तक सन्तुष्ट वैठा रहेगा, चाहे उसकी ओर कुछ भी ध्यान न दिया जाय, पर यदि वह अपने स्वामीसे बिलग अकेला हो, तो दस मिनट भी चुप नहीं रह सकता और कातर स्वरसे भूकने लगता है । इसी तरह यदि

मालिक कहीं जा रहा हो और अपने कुत्तेको साथ न ले जाय, तो उसे बहुत दुःख होता है और वह संग चलनेके लिए ऊधम मचाने लगाता है। लेखकने स्वयं देखा है कि दो शामिल रहनेवाली गायोंमेसे एकके हटाये जाने पर दूसरी अश्रुपात करने लगी और कुछ देरके लिए उसने घास खाना छोड दिया। जंगली घोड़े और हाथी झुण्डोंमें रहा करते है। पालतू घोडे और हाथी अपने साईसो और महावतोंको अच्छी तरह पहिचानते है और उनके प्रति सहानुभूति दिखलाते हैं। इनको तो जाने दीजिए, कृमियों तककी कई जातियाँ सामाजिक जीवन निर्वाह करती हैं। इस विपयमे मधुमक्खियों और भौंरोका तो नाम लेना ही पर्य्याप्त होगा। श्वेत चीटियो और टरमाइट जातिके कीडोंमें श्रम-विभागकी भी छाया दीख पड़ती है। इनमे सिपाही और मजदूर सभी मौजूद है। सौवा जातिकी चींटियोंमें घरमें काम करनेवालों और बाहर काम करनेवालोंका विभाग पाया जाता है। वाज्र जातिकी चींटियाँ अन्य जातिकी चींटियोको गुलाम बना कर रखतीं है। जिस प्रकार हम गाय, बैल, कुत्ते आदि पालते है, उसी प्रकार कई जातियोकी चींटियाँ, अन्य कीड़ोंको पालती हैं। इसी लिए सर जौन लबकने कहा है कि ऐसी अनेक जातिकी चींटियाँ हैं, जिनमे पालतू पशुओकी संख्या मनुष्योंसे भी अधिक पाई जाती है। यद्यपि अभी इनमे भाषाकी उत्पत्ति नहीं हुई है, तथापि ये सङ्केतोंसे ही भाषाका काम निकाल लेती हैं। इनमें पृथ्वी खोदने, सड़क बनाने और भवन निर्माण करनेकी कला भी प्रचलित है। टकीने कौंगोमें चींटियोका एक गाँव देखा था जो वहाँके मनुष्योंके गाँवोंसे भी अधिक नियमपूर्वक और सुन्दरताके साथ बना हुआ था। शिवन्फ कहता है कि टरमाईट जातिकी चींटियोके अन्त-

भौम नगरके भाण्डागारो, कमरों, मार्गों और पुलो आदिका वर्णन करनेके लिए एक बृहत् पुस्तककी आवश्यकता होगी ।* बहुतसे पक्षी और दूध पिलानेवाले जानवर अकसर अपने गरोहके इर्द गिर्द अपनेमेसे ही कुछ ऐसे पहरेदारोको खडा कर देते है जो झुण्डको आपत्ति और विघ्नकी चेतावनी देते रहते है । प्रायः बन्दरोंके झुडका एक सरदार हुआ करता है । सामाजिक जानवर अकसर एक दूसरेकी सेवा और मदद भी करते है । किसी साथीको खुजली हो जाने पर यह देखा गया है कि घोडे उसके बदनको आहिस्ता आहिस्ता दाँतोंसे खुजलाते है और गाये जीभसे चाटती है । बन्दर एक दूसरेके शरीरसे जूँ निकालते है । ब्रहेमने लिखा है कि बन्दरोंका एक झुंड एक दफा किसी कंटकाकीर्ण झाडीके मध्यसे निकला और इससे उनके शरीरमे कुछ काँटे चुभ गये। तब उन्होने परस्पर एक दूसरेकी शरण ली । प्रत्येक बन्दरने पेड़की एक डाल पर लेटना आरम्भ किया और दूसरे बन्दरने एक एक करके बडी सावधानीसे प्रत्येकके शरीरसे काँटे निकालनेका काम जारी कर दिया। बहुतसे शिकारी जानवर मिलजुल कर शिकार करते हैं और शिकार पकडनेमें अपने साथियोकी सहायता करते है। हवासिल(Pelican)का झुण्ड एक साथ शिकार करता है । बबून पत्थरोको हटा कर कीडे खोजते है और यदि कभी उन्हें बहुतसे कीड़े मिल जाते है तो वे उन्हे अपने साथियोंमे बाँट कर भक्षण करते हैं । अमेरिकामें जंगली बैलोंकी एक ऐसी जाति है जो किसी आपत्तिके आ पडने पर गायो और बछडोंको बीचमे रख कर उन्हे चारो ओरसे घेर लेती है और बाहरसे जी जान लड़ाकर उनकी रक्षा करती है । इस देशके महिषकुल (भैसों) का भी यही हाल है । बाघ या अन्य किसी

---

* See Spencer-Principles of Sociology Vol. I Prat 1-3.

हिंसक जानवरके पहुँचने पर वे एक प्रकारकी व्यूहरचना करते हैं और अपने झुंडमेंसे प्रत्येकको आपत्तिसे बचाते हैं । अबीसीनियामें ब्रहेमने देखा था कि बबूनों (बन्दरों) का एक झुण्ड किसी तराई-को पार कर रहा था । कुछ बन्दर तो पहाड पर चढ चुके थे और कुछ तराईहीमें थे । उन पर कुत्तोंने आक्रमण किया । इस पर पहाड़ पर चढे हुए नर बन्दर तुरंत नीचे उतर आये और मुँह फाड़ फाड़ कर दाँत पीसते और चिल्लाते हुए कुत्तो पर ऐसे वेगसे टूट पड़े कि कुत्तोंको चम्पत होते ही बना । इस पर कुत्ते फिर ललकारे गये, पर तब तक बन्दर पहाड़ पर चढ़ गये थे, केवल एक छः महीनेका बच्चा ही तराईमें रह गया था । वह मददके लिए बड़े जोरसे चिल्लाने लगा और जान बचानेके निमित्त एक चट्टान पर चढ गया । कुत्तोंने उसे घेर लिया और वे उसे पकड़ना ही चाहते थे कि पहाड़ परसे एक बहुत बडा नर बन्दर उतरा और बच्चेको पुचकार कर साथ ले चलता बना । कुत्ते देखते ही रह गये, उनसे कुछ न बन आया । ब्रहेमने एक और भी दृश्य देखा था । एक बाज़ बन्दरके एक बच्चेको पकडे हुए था, परन्तु वह पेडकी डालसे बहुत मजबूतीके साथ हुआ चिमटा हुआ था और इस कारण बाज़ उसे ले जानेमें समर्थ न होता था । इसी समय झुण्डके सारे बन्दर चिल्लाते हुए बड़े वेगसे झपटे और बाज़को घेरकर उन्होने उसके इतने पर उखाड़ डाले कि उसे प्राण बचाकर भाग जाना कठिन हो गया ।

इतना ही नहीं, मनुष्यके सिवा अन्य जीवोंमें हमें सहृदयताकी भी झलक दिख पडती है । कप्तान स्टैन्सबरीने अमेरिकाकी एक खारी झीलमें एक बहुत वृद्ध और अन्धे हवासिलको देखा था जिसे उसके साथी भोजन कराया करते थे और इस कारण वह खूब

हृष्ट पुष्ट था। मिस्टर ब्लिथने देखा था कि कुछ कौवे अपने दो तीन अन्धे साथियोको भोजन कराते थे। डारविनने मुर्गोंके सम्बन्धमे भी यही बात सुनी थी। कप्तान स्टैन्सवरीहीने लिखा है कि एक झरनेकी तेज धारामे एक हवासिलके बच्चेके वह जाने पर आधे दर्जन हवासिलोने उसे बाहर निकालनेमे सहायता दी थी। डारविनने स्वय एक ऐसे कुत्तेको देखा था जो एक टोकरीमे पडी हुई बीमार बिल्लीके समीपसे उसके मुँहको दो एक बार चाटे विना कभी आता जाता न था। यदि मालिक पर कोई आघात करना चाहता है तो स्वामिभक्त कुत्ता उस आदमी पर तत्क्षण आक्रमण कर बैठता है। कुत्तेके इस आचरणको हम क्या कहेगे ? क्या इसमेसे सहानुभूतिकी गन्ध नहीं आ रही है ? एक स्त्रीके पास एक छोटासा कुत्ता था। एक आदमीने झूठमूठ केवल परीक्षाके हेतु उसे यह दिखलाना चाहा कि वह उसकी मालकिन पर आघात करना चाहता है और इसलिए उसने अपना हाथ उठाया। यह देखते ही कुत्ता फौरन कूद पड़ा और उस आदमीसे बदला लेनेके लिए तत्पर हो गया। इसके बाद जब वह आदमी वहाँसे हट गया तब कुत्ता अपनी स्वामिनीकी गोदमे जा बैठा और अपनी दुम हिलाकर तथा अन्य प्रकारसे उसे दिलासा देने लगा और प्रेम प्रकट करने लगा। यह दृश्य देखकर लोगोका हृदय द्रवीभूत हो गया। कई वर्ष व्यतीत हुए कि एक चिड़ियाखानेके एक नौकरने मुझे अपनी गर्दन परका ताजा जख्म दिखलाया और एक बड़े और भयानक बबून (बन्दर) की ओर इशारा करके बतलाया कि इसीने यह जख्म किया है। बबूनके साथ एक छोटासा बन्दर भी रहता था जो उससे बहुत भय खाता था और उसके डरसे सदा ही सिटपिटाया रहता था; परन्तु वह इस आदमीका परम मित्र था। अपने मित्रको

जोखिममे पड़ा देख कर वह उसकी जान बचानेके लिए उतारू हो गया और चीखता हुआ बबूनको दाँतोसे काटने लगा । आखिर इसी छोटे बन्दरकी सहायताके द्वारा वह आदमी किसी प्रकार वहाँसे निकल भागा और मुश्किलसे अपना प्राण बचा सका ।

जानवरोमे बड़ोंका आदर करने और नेताकी आज्ञामे चलनेकी प्रवृत्ति भी पाई जाती है । अबीसीनियाके बबून जब कभी किसी बागको लूटना चाहते हैं तो चुपचाप अपने नेताके पीछे चलते है और यदि कोई अबुद्धिमान् नौजवान बन्दर असावधानताके कारण जरा भी शोर गुल करता है तो उसे बूढे बन्दर तमाचा लगाकर ठीक कर देते हैं और इस प्रकार उसे चुप रहने तथा आज्ञा पालन करनेकी शिक्षा देते है । क्या इससे यह साफ तौरपर प्रकट नहीं होता कि उनमें मनुष्य-समाजका अंकुर यहाँ ही था ? हाथी दलदलमे फँस जाने पर जिस वस्तुको पाते है उसे ही अपने घुटनेके नीचे रखकर दबा लेते हैं ताकि वे दलदलमे और भी गहरे न धँस जायँ। अपनी पीठपर बैठे हुए सवारोंके साथ भा वे यही वर्ताव करते है, अर्थात् उन्हे भी सूँडसे पकड़कर नीचे दबा लेते है; परन्तु अपने महावतके साथ ऐसा कदापि नहीं करते ।* ऐसी विपत्तिके समय भी महावतके प्रति हाथी सरीखे भारी जानवरकी यह दृढ़ भक्ति और सत्यशीलता कम सराहनीय नहीं है ।

स्पेन्सर के 'प्रिन्सिपल्स आफ एथिक्स' नामक ग्रन्थकी दूसरी जिल्दके परिशिष्ट 'डी' में, मिस्टर टा मन जोन्सके कई अत्यन्त ही बहुमूल्य और पूर्णतः वैज्ञानिक ढगसे किये गये अन्वेपणोंका वर्णन है । अन्वेपण इतने अच्छे हैं कि उनमेंसे दो एकके उल्लेख करनेके लाभको मै संवरण

---

* See the Descent of Man, Part v, CHH. III, IV, V.

नहीं कर सकता । मिस्टर जोन्सके 'पच' नामक कुत्तेके आचरणसे यह पूरे तौर पर स्पष्ट होजाता है कि जानवरोमे भी दया, न्याय, सहृदयता तथा दूसरोको कष्ट न देनेके भाव कहाँ तक विद्यमान रह सकते हैं। इस कुत्तेके सम्बन्धमें मिस्टर जोन्स लिखते है कि मेरा कुत्ता किसी जीवित वस्तु-को नहीं काटता। जब मै उसकी पीठके चमडेमे तेज़ चाकूकी नोक भोकता हूँ, तो वह मेर हाथको अपने मसूढोके बीच पकड लेता है। यदि वह चाहे तो अपने कल्लेसे मेरी कलाईको दबाकर मास क्या हड्डी तकको चबा जाय, परन्तु नहीं, मै उसे चाहे कितना भी तग क्यो न करूँ, कितने ही जोरसे चाकू क्यो न भोकता जाऊँ, वह कदापि अपना मुख बन्द नहीं करता। वह मेरी कलाईको इतने जोरसे भी नहीं पकडता कि उसपर उसके दॉतोके निशान पड़ जायँ। इस कुत्तेकी आचार-बुद्धिके सम्बन्धमे मिस्टर जोन्सने एक और भी बडी आश्चर्य्यजनक बात लिखी है। वे कहते है कि मै लॅगडा हूँ और बिना छडीकी सहायताके नहीं चल सकता। मेरा कुत्ता मेरी जरूरतोको यहॉ तक समझता है कि जब मै उसे किसी मामूली लकडी या छडीसे तग करता हूँ तो वह उसे तो अपने दाँतोसे दबा कर तोड़ देता है, परन्तु जब मै उसे अपने आधार-दण्ड या टहलनेकी छडी-से तग करता हूँ तो वह उसे पकड तो अवश्य लेता है परन्तु तोड़ता नहीं है—तोडना तो दूर रहा उस पर उसके दॉतोके निशान तक नहीं पाये जाते।

मिस्टर जोन्स किस वैज्ञानिक चतुरतासे परीक्षा करते थे और इसलिए उनके निष्कर्ष कहॉ तक मान्य है—यह मै उन्हींके शब्दोमे प्रकट कर देना चाहता हूँ। वे पूछते है कि पंच मुझे क्यो नहीं काटता ? उत्तरमें कहा जा सकता है कि वह मुझसे बहुत डरता है—

भयके कारण ही उसे काटनेकी हिम्मत नहीं होती। परन्तु जिन लोगोने पंचके साथ मेरी मित्रता देखी है वे इसे कदापि स्वीकार नही कर सकते। कुत्तेको मुझसे इतनी प्रीति है कि यदि उसे कभी अपने बदनसे कोई कीडा या काँटा निकलवाना होता है या दरवाजा खोलवाना होता है, तो वह फौरन मेरे पास चला आता है, चाहे मै कैसा ही जरूरी काम क्यो न कर रहा हूँ। यदि वह देखता है कि मै अपनी डेस्कके समीप बैठकर कुछ लिखने पढ़नेका काम कर रहा हूँ, तो पास आकर खड़ा हो जाता है और अपने आगेके दाहिने पैरको मेरी बाजूपर रखकर अपने बाये पैरसे मेरे कन्धेको खुजलाना आरम्भ करता है। जब तक मै उसकी जरूरतको रफा न कर डालूँ तब तक वह बराबर ऐसा ही किया करता है। क्या यह भयका लक्षण है? फिर भी यह कहा जासकता है कि उसे मुझपर इतना विश्वास है कि वह हृदयसे यही समझता है कि मै उसे कदापि दुःख नही दे सकता। साथ ही आप यह भी कह सकते है कि जब यह कुत्ता केवल एक ही वर्षका था तब एक शिकारीके फैरसे घायल हो गया था और मैने इसके शरीरसे ३० छर्रे निकाले थे। अतः इस शस्त्रक्रियाको स्मरण करके कुत्ता शायद यह समझता हो कि मेरा चाकू गडाना सर्वथा निष्प्रयोजन नहीं है—यह भी हितहीके लिए होगा; परन्तु उक्त सब कारणोमेसे एक भी ठीक नहीं है। भयकी तो बात ही चलाना व्यर्थ है। यदि दूसरे कारणको सत्य माना माना जाय, तो कुत्ता जब अन्य छडियोको अपने दाँतोसे तोड़ मरोड डालता है, तब मेरे आधार-दड पर अपने दाँत तक भी क्यो नहीं गड़ाता? कहा जा सकता है कि इसका कारण दुर्बलता और कायरता है और इसीसे अन्य कुत्तो द्वारा काटे जाने पर

भी वह प्रतीकारकी चेष्टा नहीं करता है। परन्तु यदि कायरता ही उसके प्रतीकार न करनेका कारण होती तो वह निस्संदेह अन्य कुत्तोके समीप आने पर या भूकने पर भागनेकी चेष्टा करता। परन्तु न तो वह भागता ही है और न जवावमे भूकना ही वन्द करता है। मै अनेक वार चेष्टा करता हूँ कि पंचको किसी प्रकार भगा दूँ ताकि वह जख्मी न हो सके; परन्तु वह डटा ही रहता है और इसलिए अक्सर वहुत जख्मी हो जाया करता है। एक दिन मै पचके साथ एक बहुत ही तंग गलीसे होकर गुजर रहा था कि एक वहुत बड़े कुत्तेने उसपर हमला किया और उसे इतने जोरसे काटा कि उसके मुँहसे रक्त वहने लगा। यह पहला ही मौका था, जब मैंने पंचको हमलेका प्रतिरोध करते देखा। परन्तु पंचने वदलेमे उस कुत्तेको काटा नहीं, वल्कि एक बढ़िया वैज्ञानिक रीतिसे और विना रक्त वहाये अपनी रक्षा की। पंचने उस कुत्तेके एक पिछले पैरको वड़ी मजवूतीसे पकड़ लिया और उसे जमीनसे इतना ऊपर उठा दिया कि कुत्ता लड़खड़ा गया। यदि पंच चाहता तो उसे पृथ्वीपर पटक देता और वहुत आसानीसे वदला वसूल कर लेता; परन्तु उसने ऐसा नहीं किया। दूसरा कुत्ता थोड़ी देर तक चुप चाप खड़ा रहा। वह भली भाँति समझ रहा था कि मैने ज़रासा भी इधर उधर किया कि गिर पड़ूँगा और तव सर्वथा अपने शत्रुके अधीन हो जाऊँगा। पच उस कुत्तेके पैरको सिर्फ पकड़े हुए था, काट नहीं रहा था; इसलिए उसे कोई तकलीफ नहीं हो रही थी। अन्ततः उस कुत्तेने अपने सिरको पीछे घुमाकर पंचको काटना चाहा। परन्तु पचने उसके इस प्रयत्नको विफल कर दिया। उसने कुत्तेके पैरको ज़मीनसे और भी ऊपर उठा दिया और उस पैरको कुत्तेके मुँहकी तरफ़ उलटा ले गया जिससे कि पंचके शरीर और

कुत्तेके मुँहके मध्य पूर्ववत् अन्तर बना रहे। कुत्ता जितना ही अपने मुँहको काटनेके लिए घुमाना चाहता, पच उतना ही उसके पैरको दूसरी ओर ले जाता। इसी प्रकार दोनो कुत्ते एक वृत्तमें लगभग दो मिनट तक नाचते रहे। इसके बाद एक गाडीको आती हुई देखकर मैने विवश होकर उन्हें छुडाकर अलग अलग कर दिया। मिस्टर जोन्सने इस तरहकी सैकड़ो घटनाये अपनी आँखोसे देखकर लिखी है। तब क्या इसे कायरताका लक्षण कह सकते है? उक्त सब बातोसे यह साफ़ सिद्ध होता है कि जानवरोमे भी निस्स्वार्थता, न्यायपरता और सहृदयताके कुछ अंग विद्यमान हैं।

इस बातका तो बहुतोने अनुभव किया होगा कि चलते चलते, टमटम या गाडीमे जुते हुए घोडे बीचमे आजानेवाले बच्चों या मनुष्योंको स्वय बचा जाया करते है। इस सम्बन्धमे मिस्टर जोन्सने एक बड़ा ही विस्मयोत्पादक उदाहरण दिया है। मिस्टर जोन्सके घरमे उनकी एक नातेदार स्त्री भी निवास करती थी और वह कभी कभी मिस्टर जोन्सके घोड़ेको चलाया करती थी। परन्तु वह इतनी बहरी थी कि पीछेसे आनेवाली गाडियोंके शब्दोको बिल्कुल नहीं सुन सकती थी और इसलिए वह रासको इधर उधर कस कर घोडेको दाहिने या बाये नहीं मोड़ सकती थी। मिस्टर जोन्सने कई मर्तबे परीक्षा करके देखा कि रास जब स्वयं उनके हाथोमे रहती थी, तब घोड़ा बाये मुडनेके लिए रासके बाये कसे जानेकी प्रतीक्षा करता था, किन्तु जब उनकी नातेदार स्त्री घोडेको हाँकती तो घोडा पीछेसे किसी गाडीके आनेका शब्द सुनकर स्वयं ही बाये मुड जाता था। एक दफा बहुत से लड़के एक सडक पर खेल रहे थे और वे प्रायः सारी सडक पर फैले हुए थे। परीक्षाके हेतु मिस्टर जोन्सने लगाम ढीली कर दी

एक किनारे पर सिर्फ गाड़ीके पार होने भरके योग्य सकीर्ण स्थान छुटा हुआ था, जहॉ लड़के न थे। घोड़ा स्वय मुड़ गया और अपनी चालको कम करके, वहुत होशियारीसे इस संकीर्ण स्थानसे पार हो गया और पार निकल जाने पर तेज़ीसे दौड़ने लगा। इस घोडेका दिल कितना नाज़ुक और प्रेममय था, इसका भी एक उदाहरण मिस्टर जोन्सने दिया है। एक दिन वे अपनी स्त्रीके साथ गाड़ीमे बैठे हुए कहीं जा रहे थे। रास्तेमे अपनी स्त्रीके साथ एक वैज्ञानिक प्रश्न पर वाद-विवाद करत करते वे इतने निमग्न हो गये कि विना ज़रूरतके ही घोड़े पर चावुक चलाने लगे। इसके पहले वे घोड़ेको कभी मारते नहीं थे, सिर्फ अपने शब्दोके ही द्वारा उसकी चालको तेज़ किया करते थे। आखिर दो चावुक खा चुकने तक तो घोड़ा चलता गया; परन्तु तीसरे चावुकके पड़ते ही वह रुक गया। यह देख स्त्रीने मिस्टर जोन्सका ध्यान आकर्षित किया और कहा,—देखिए निष्कारण मार खानेसे प्रिन्स (घोड़ा) दुखी होकर कातरतासे आपकी ओर निहार रहा है। घर आने पर जब घोड़ा गाड़ीसे खोला गया तो रोज़के मामूलके अनुसार वह अस्तवलमें न जाकर सीधे मिस्टर जोन्सके पास चला आया और बहुत कोशि-श करके उसने मिस्टर जोन्सका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। उसने अपने नथुनोंसे मिस्टर जोन्सको छुआ और तब जहॉ तक हो सका वहॉ तक अपने नथुनोको पीड़ित स्थानके समीप तक ले जाकर पीडाका संकेत किया और जब तक कि मिस्टर जोन्सने इस स्थानको धुलवा नहीं दिया तब तक वह इसी तरह करता रहा। मिस्टर जोन्स-की ज़रूरतको उनका घोड़ा यहॉ तक समझता था कि वह उनके गाड़ी पर सवार हुए विना, लाख प्रयत्न करने पर भी, आगे नहीं

बढता था। जब तक मिस्टर जोन्स गाड़ी पर न बैठ जाते तब तक घोड़ेका चलाया जाना असम्भव था। किन्तु यदि अन्य कोई मनुष्य छूट जाता तो घोड़ा आगे बढनेमे जरा भी आपत्ति न करता था।

मिस्टर जोन्सके ही एक और वृत्तान्तसे पता चलता है कि जानवरोमें आज्ञाकारित्व, इन्द्रिय-दमन और आत्म-संवरण कहाँ तक हो सकता है। मिस्टर जोन्सके पास एक कुत्ती थी जो उपयुक्त ऋतुमे कुत्तोकी प्रेम-दृष्टिसे बहुत संतुष्ट होती थी। परन्तु मिस्टर जोन्सने उसकी इस प्रवृत्तिमे बाधा डालनेका प्रयत्न किया और उसका नतीजा यह हुआ कि जब कुत्तीकी आयु चार वर्षकी हुई, तब उसने कुत्तोकी परवा करनी ही छोड़ दी और तब उसे ऋतुकालमे भी बाँध कर रखनेकी कोई जरूरत न रही। यह कुत्ती १३½ वर्षकी अवस्थामे मरी और अन्त समय तक अक्षत-योनि रही। इस सम्बन्धमें मिस्टर जोन्सका एक और उदाहरण उल्लेखनीय है। उनका 'पंच'—जिसके बारेमे ऊपर अनेक बातें लिखी जा चुकी है—चीनी खाना बहुत पसन्द करता था। आज्ञाकारिताकी परीक्षा करनेके लिए मिस्टर जोन्सने कुत्तेको चीनी दी; परन्तु मना करते ही वह चीनीको भक्षण करते करते रुक गया—उसने चीनी परसे अपना मुँह अलग कर लिया। कभी कभी मिश्रीकी डलीको मुँहमे ले चुकने पर भी वह एक बार 'न' कहते ही उसे फेक देता था। लेटे हुए कुत्तेके चारो तरफ मिश्रीकी डली रख देने पर मिस्टर जोन्सने यह अनेक बार देखा कि एक बार 'न' कर देनेपर, बिना 'हाँ' कहे वह मिश्रीकी डलीको कदापि नहीं छूता था। एक बात और थी। एक बार 'हाँ' कहने पर भी कुत्ता फौरन मिश्रीकी डलीको न छूता और दोबारा हुक्मकी प्रतीक्षा करता; परन्तु एक दफा भी 'न' कहते ही मिश्री खानेसे रुक जाता। शायद वह सोचता

था ।कि एक बार 'हाँ' करने पर भी मालिक शीघ्र ही 'न' कह बैठेंगे, इसलिए जहाँ तक हा सके बातको निश्चित कर लेना ही अच्छा है। किन्तु सबसे बड़ी आश्चार्य्य-जनक वात तो यह है कि याद मिस्टर जोन्स मिश्रीका कोई बडा डला छोड़ देते तो उनका कुत्ता या कुत्ती कोइ उसे न छूती, परन्तु यदि छोटा टुकड़ा पड़ा होता तो वे रुक रुक कर उसके समीप आते और यदि मना न किये जाते तो डरत डरत खा जाते। अर्थात् वे सामान्य अपराध और बड़े अपराधके भेदको समझते थे। मनुष्योके सदृश पशु भी अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तिको कहाँ तक दमन कर सकते है, यह बात उक्त उदाहरणोसे पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है। विचारपूर्वक देखनेसे यह भी विदित हो जाता है कि मूर्खों और अकर्मण्योंसे पशु भी घृणा करते है। मिस्टर जोन्सकी कुत्ती जिसके सम्बन्धमे हम अभी ऊपर कुछ कह आये है—बड़ी तैरनेवाली थी। परन्तु उनके पास एक और कुत्ता था जो तैरनेमे इतना प्रवीण न था। एक दिन कुत्ती मालिकके साथ नौकाद्वारा जलसे पार होते समय, अपने स्वभावके अनुसार पानीमे कूद पड़ी आर तैरने लगी, देखादेखी कुत्ता भी कूद पडा, परन्तु वह थोडी ही देरके बाद डूबने लगा। उसकी इस दुर्दशाको देखकर कुत्ती उसकी ओर झपटी और उसे गर्दन पकड़ कर जलसे बाहर ले आई। कुछ देरके बाद उसने उस कुत्तेको मजबूतीके साथ पकड़कर खूब हिलाया और इस तरह कुत्तेके प्रति घृणा और अवज्ञा प्रकट की। इसके बाद भी वह सदा इस कुत्तेके साथ घृणा और लाछनाके भाव दिखलाती रही, तथा यो भी कभी कभी खेलते खेलते वह उसे गर्दन पकडकर हिला दिया करती। कुत्तोमे सहृदयताकी मात्रा कितनी हैं, मिस्टर जोन्सने इसकी भी परीक्षा की थी। उन्होने इसी कुत्तीके सम्बन्धमे लिखा है कि वे जब

कभी अपनी बहनपर बनावटी क्रोध दिखलाकर आघात करना चाहते थे, तो वह बहनके पक्षका अवलम्बन करके इन पर टूट पड़ती थी, और जब कभी बहन इनपर आघात करना चाहती थी तो कुत्ती मिस्टर जोन्सके पक्षमें हो जाया करती थी। मिस्टर जोन्सने इस प्रकारकी परीक्षाये अनेक बार कीं और उनमे कुत्ती सदा दुर्बलोके ही पक्षका समर्थन करती हुई देखी गई।

मिस्टर जोन्सकी परीक्षाओसे यह भी विदित होता है कि जिस तरह मनुष्योमें कुछ लोग ऐसे भी है, जो वास्तवमें अपने हृदयसे तो सदाचारको पसन्द नहीं करते, परन्तु ख्याति प्राप्त करनेके लिए या समाज द्वारा अच्छे कहे जानेके अभिप्रायसे अच्छे काम किया करते हैं, साथ ही उपयुक्त अवसर मिल जाने पर और भेदके खुल जाने-की कोई सम्भावना न होने पर बुरे कामोके करनेमे भी नहीं हिचकि-चाते हैं। अर्थात् अन्तःकरणसे सदाचारी न होने भी पर जिस तरह मनुष्योंमे बाहरसे सदाचारी नजर आनेवाले कुछ लोग विद्यमान हैं, उसी तरह कुछ जानवर भी सदाचारका ढोग रचा करते हैं। जिस तरह सच्चे और सदाचारी जानवरोके कुछ उदाहरण ऊपर दिये जाचुके है उसी तरह प्रसङ्गवश यहाँ जानवरोके जाहिरी सदाचार-का भी एक उदाहरण दिया जाता है। मिस्टर जोन्सके पास जूडी नामकी एक कुत्ती थी जिसे वैज्ञानिक परीक्षा करनेके ही निमित्त उन्होंने खरीदी थी। खरीद कर ले आने पर मिस्टर जोन्सने इस कुत्तीके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया, उसे प्रेमके साथ खिलाया पिलाया और रक्खा; परन्तु इसका नतीजा उलटा ही हुआ। कुत्तीका स्वभाव और भी क्रूर हो गया और वह हर किसी पर टूटने लगी। एक दिन मिस्टर जोन्सने उसे अच्छी तरह पीटा। इससे उसके स्वभावमे अद्भुत परि-

वर्तन हो गया। वह मिस्टर जोन्सके साथ तो अच्छा वर्ताव करने लगी, अर्थात् उन्हें प्यार करने लगी और उनका हुक्म मानने लगी; परन्तु दूसरोके साथ उसके व्यवहार और आचरणमे वही क्रूरता वनी रही। जूडी चोरी भी करती थी। परन्तु उसकी चोरीमे इतनी सफाई थी कि वह मनुष्योकी चतुरताको भी मात कर देती थी। मिस्टर जोन्सकी रसोई बनानेवाली दाई रसोईकी वस्तुओंको ऐसे यत्नके साथ रखती थी कि उनतक जूडीका पहुँचना असम्भव था। परन्तु जूडीने चोरीका एक अनोखा ढंग निकाल लिया। चोरी करनेके पूर्व वह अच्छी तरह सोच लिया करती थी कि उसकी चोरी किसी पर प्रकट न हो जाय। वह देख लेती थी कि सव प्रकारसे सन्नाटा है और कोई मनुष्य समीप नहीं है। स्वय तो वह किसी तरह उन वस्तुओ तक पहुँच न सकती थी, इसलिए पहले मिस्टर जोन्सकी विल्लियोमेंसे एकको कुर्सी पर चढनेके लिए विवश करती, इसके वाद जब उसके अनुरोधसे विल्ली कुर्सी परसे उछल कर टेंवुलपर पहुँच जाती और वहाँसे मास ले आती, तब जूडी उससे मांस छीन लेती और स्वय भक्षण कर जाती। मिस्टर जोन्सको वड़ी कठिनतासे इस चोरीका पता चला; क्योकि कुत्ती वड़ी होशियारीसे चोरी करती थी। पहले तो मिस्टर जोन्सने इस तमाशेको छुपकर देखा। इसके वाद उन्होने कुत्तीके सामने प्रकट होनेका निश्चय किया। परन्तु कुत्ती भी चालाकीमें कम न थी। मिस्टर जोन्स जब जब कुत्तीके पास पहुँचते, तब तब वह गुर्राती हुई तेजीके साथ बिल्लीके पास पहुँचती और मासको उसके पास डालकर उसपर क्रोध प्रकाश करती और उसे रगेदकर बहुत दूर भगा देती। अपने दोपको बिल्लीके मत्थे मढनेके लिए कुत्तीकी यह व्याकुलता क्या मनुष्योके आचरणसे कुछ कम है? इस उदाहरणसे यह भी प्रमाणित होता है कि जानवरोंमें

भी भले बुरे कामोंकी पहचान—सदाचारकी कुछ मात्रा—अवश्य विद्यमान है। यद्यपि जूडीके आचरण बहुत ही बुरे थे; परन्तु यह निस्सन्देह है कि वह अपने मनमें चोरी करनेको अच्छा न समझती थी। अतएव सदाचारका किंचित् अङ्कुर जानवरोंमें भी ज़रूर विद्यमान है और इसी साधारण अंकुरसे सदाचारके विशाल वृक्षकी उत्पत्ति हुई है।

प्रायः सभी असभ्य और जंगली जातियाँ अपने छोटेसे कुल या परिवारके साथ सहानुभूति रखती है। सम्पूर्ण जाति या समग्र मनुष्यों-के हित अहितसे उन्हें कोई सरोकार नहीं रहता। उन्हें केवल अपनी छोटी और परिमित मण्डलीके कल्याण मङ्गलसे ही मतलब रहता है। इस छोटीसी मण्डलीके मध्य एक दूसरेके प्रति जंगलियोंका सद्व्यवहार अक-सर बहुत पवित्र और सच्चा होता है। बल्कि कुछ अंगोंमें तो सभ्य जातियाँ भी इनकी बराबरी नहीं कर सकतीं। सत्य बोलनेका महत्व भी ये जानते हैं, पर केवल अपनी मण्डलीहीके लोगोंके साथ सच बोलते हैं। अन्य जाति या अपरिचित लोगोंके साथ झूठ बोलनेमें या उन्हें धोखा देनेमें कोई अपराध या पाप नहीं समझते। इससे यह अच्छी तरह विदित होता है कि सामाजिक प्रवृत्तिके द्वारा और आत्म-रक्षाके लिए ही मनुष्यने पहले पहल सदाचारको सीखा है। पर-न्तु जिस प्रकार मनुष्य केवल वृष्टि और धूपसे बचनेहीके निमित्त मकान बनाना सीखता है और पहले लकड़ीके टुकड़ों और पत्तोंसे ही झोपड़ियाँ बनाता है, परन्तु पीछे इसी छोटे अंकुरसे महान् और आकाशको चूमनेवाली, नाना प्रकारकी कला, चित्रकारी इत्यादिसे सुसज्जित अट्टालिकाओंका आविर्भाव होता है, उसी प्रकार इस छोटेसे अंकुरसे समाजकी उत्पत्ति होती है और पीछे यह सदाचारसे महान्, विश्वव्यापी, सहृदयतायुक्त धर्म बन जाता है।

छठा अध्याय ।

१-सदाचार और प्राकृतिक चुनाव ।

इस विषयका थोडासा आभास चौथे अध्यायमें दिया जा चुका है; परन्तु विषयकी गुरुताके कारण इसपर एक स्वतंत्र अध्याय लिखनेकी आवश्यकता जान पड़ती है । पाठक देख ही चुके हैं कि सदाचारकी उन्नतिमें प्राकृतिक चुनावके नियमने कितना बडा भाग लिया है तथा इसके द्वारा सदाचारकी कितनी उन्नति हुई है । क्योंकि यह स्पष्ट है कि जीवन सग्राममे सदाचार-युक्त जीवों और जातियोंको सदाचारहीन जीवों और जातियोकी अपेक्षा अधिक महत्त्व प्राप्त होता है ।

मानवीय उन्नतिमें सदाचारका भाग ।

डारविनने अपनी ‘ डिसेन्ट ऑफ मेन ’ या मनुष्यकी उत्पत्ति नामक पुस्तकमें यह दिखलानेकी चेष्टा की है कि मानवीय उन्नतिमे सदाचारने कहाँ तक सहायता की है । प्रत्येक मनुष्यको—जो यह सोचता है कि आचार मेरी निजकी या जाती वात है और प्रकृति केवल शारीरिक और मानसिक वलका ही ख्याल करती है—नैतिक वलका नहीं—यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिए । डारविनके अनुसार हर जगह मनुष्यसे लेकर छोटेसे छोटे जीवोमें भी जीवन-कलह (Struggle for existence) विद्यमान है । जो जीव अपनेको सबसे अधिक अपनी परिस्थितियोके अनुकूल वना

जीवन-कलहमें शारीरिक वलकी अपेक्षा नैतिक और मानसिक वलसे ही फैसला होता है ।

सकता है और जीवनके नियमोंको पालन करता है वह सबसे अधिक शिष्ट या जीनेके योग्य है। वही अपनी सन्तति छोड़ जाता है। अयोग्य जीव मरणको प्राप्त हो जाते हैं। हर एक जाति उन, गुणोंको —जिसके द्वारा वह दूसरी जाति (Species)से बलवती होती है— परम्परागत नियमोंके द्वारा अपने वंशजोंमे आरोपित और दृढ करती है।

केवल शारीरिक बलमें मनुष्य हाथी और भैसेका सामना नहीं कर सकता, तौभी अपनी बुद्धिके कारण वह उनसे बलवान् बना हुआ है। वह भाला तलवार और बन्दूकका आविष्कार करता है और उन्हें परास्त करता है। इसी प्रकार मनुष्यकी एक जाति और दूसरी जातिके मुकाबलेमे भी शारीरिक बल उतना काम नहीं करता जितना कि मानसिक बल करता है। लड़ाईमें भी केवल उसी जातिकी विजय नहीं होती जिसकी सेना असख्य हो या जिसकी फौज हृष्ट पुष्ट हो, वरन् उस जातिकी होती है जिसके अफसर योग्य हों और जिसके लड़ाईके तरीके उत्तम और नूतन हो। डारविन आगे बढ कर यह भी बतलाते है कि *सदाचारयुक्त होनेसे हमें जीवन-कलहमें मदद मिलती है।* इस प्रतिद्वन्द्वमे एक सदाचारयुक्त जाति दूसरी सदाचारहीन जातिको अवश्य पराजित करती है। दूसरे शब्दोंमें *सचरित्रोंकी मदद प्रकृति उसी प्रकार करती है जिस प्रकार मोटे शरीरवालों या अतुल मानसिक शक्तिवालोंकी।* ऐसे बहुतसे नियम है जिनके सहारे समाज खडा है और पुष्ट तथा बलवान् है। यदि कोई समाज नियमोका उल्लंघन करेगा, यदि वह इन सर्वशक्तिमय नियमोका कुछ भी आदर न करेगा, और ससारको केवल क्रीड़ास्थल समझेगा तो समझ लीजिए कि उस समाजको जीवनका भेद ज्ञात नहीं है और इसलिए कुछ ही समयमे उसका नाम संसार-पृष्ठ पर से एकदम उड़ जायगा।

डारविनके मत पर एक दूसरे प्रकार-की टीका।

परन्तु डारविनके मत पर लोग एक दूसरे प्रकारकी भी टीका करते है। अकसर कहा जाता है कि प्रकृति बलवानोकी रक्षा करती है और दुर्बलोको रसातल भेजती है। अतएव बलवानोको निःसकोच अपना हित साधना चाहिए, और दुर्बलोंको मरनेके लिए छोड़ देना चाहिए। क्योंकि प्रकृतिका यही नियम है और यही उसकी इच्छा भी है। यदि कोई मनुष्य अपनेको शिक्षित बना सके तो अच्छा है, नही तो उसे अशिक्षित ही छोड़ दो। यदि कोई स्त्री अपने पुरुषार्थसे अपना अधिकार प्राप्त कर सकती है तो अच्छा है, नहीं तो उसे अधिकार-हीन ही रहने दो। यदि कोई मनुष्य इतना चालाक है कि वह दूसरोको धोखा दे सकता है, यदि वह इतना बलवान् है कि दूसरों पर अत्याचार कर सकता है तो उसे ऐसा करने दो, क्योकि बल और बुद्धियुक्त होनेके कारण यह उसका सामान्य अधिकार है। *

उक्त टीकाका खण्डन।

परन्तु जैसा हम अभी देख चुके है डारविनके मतका यह अनुवाद डारविनके मतसे एकदम विरुद्ध है। निःसन्देह इस प्रकारकी सामाजिक अराजकता एक समय—संसारके आदि युगोमे—अवश्य विद्यमान थी; क्योकि उस समय हमारी सदसद्विवेकबुद्धि (ईमान Conscience) जागृति नहीं हुई थी। परन्तु स्मरणीय बात यह है कि वे जातियाँ—जिनमें सामाजिक सहानुभूति एकदम नहीं थी—जीती नहीं बचीं और न उन्होने अपना कोई वंशज ही छोड़ा। वे उन श्रेष्ठ सदाचारयुक्त

---

* And they should take who have the power
And they should keep who can

—*Wordsworth's RobRoy*

जातियोसे—जिनकी सामाजिक प्रवृत्ति उन्नत हो चुकी थी—मुक़ाबला न कर सकीं और आज भी जो ऐसी जातियाँ बच रही हैं वे असभ्य जङ्गली और पशुओ जैसा जीवन व्यतीत करती है। उनके शरीर और देश पर आधिपत्य जमाना बलवती जातियाँ अपना अधिकार ही नहीं वरन् अपना कर्तव्य और धर्म भी समझती हैं। जिस प्रकार वनस्पति और पशु श्रेष्ठ मनुष्यके हितसाधनका यन्त्र बनते है, उसी प्रकार नीची जातियाँ भी ऊँची और श्रेष्ठ जातिके सुखसाधनका यन्त्र बन जाती है।

सदाचारसे ज़ीवन-संग्राममें लाभ। कुछ उदाहरण।

यह अच्छी तरह स्पष्ट है कि जीवनसंग्राममे सदाचारयुक्त जीवोको सदाचारहीन जीवोंकी अपेक्षा अधिक योग्यता प्राप्त होती है। एक उदाहरण लेकर देखिए। शान्त स्वभाव होना सदाचारका एक अङ्ग है। शान्त स्वभावका अर्थ चुपचाप दूसरोका आघात सहना नहीं है, वरन् दूसरोको निरर्थक कष्ट न देनेकी इच्छा रखना, या झगड़ालू और क्रूरस्वभावयुक्त न होना है। जाहिरा यह मालूम होगा कि जबरदस्त लोगोकी जबरदस्ती उन्हें जीवनसंग्राममे सफलता प्रदान करती है। पुरानी अस्तव्यस्तताके समयमें—जब कोई सिलसिला या प्रबन्ध नहीं था, जब समाज बिल्कुल छिन्न भिन्न था, और उन समाजोंमें जिनमे अब तक भी अनियम विद्यमान है—ऐसे लोगोंको कुछ फायदा पहुँच सकता है; परन्तु स्थायी व्यवसायी समाजमे सफलताके लिए यह गुण कदापि उपयुक्त नहीं है। समाजका अर्थ ही है—सम्मेलन, सहयोग, और समानता। फिर जो मनुष्य असमाजिक स्वभावका होगा, जो नियमाधीन न होना चाहेगा और अकेला सारे समाजे पर अत्याचार करना चाहेगा, आप स्वयं सोच सकते है कि वह कहाँ तक कृत-

कार्य्य होगा? समाजकी सम्मिलित शक्तिके सामने वह अकेला क्या कर सकेगा? इस बातको आप स्वय समझ सकते हैं कि एक शान्त अहिंसक और एक विवादी अत्याचारी निर्दयी मनुष्य, इन दोनोमेसे किसकी जान अधिक जोखिममे है। इसके सिवाय झगड़ालू स्वभाववालोकी अपेक्षा शान्त स्वभाववाले सन्तान उत्पन्न करनेकी और अपने वशके जारी रखनेकी योग्यता भी अधिक रखते हैं।

उदाहरण—ऐन्द्रिय संयम।

ऐन्द्रिय संयम भी सदाचारका एक अङ्ग है। असंयमी मनुष्य सोचता है कि यदि जहन्नुममे जाना होगा तो वही चले जायँगे यहाँ तो चैन कर लो; पर प्रकृति उसे चैन नहीं लेने देती। उसका शरीर और मन जर्जर हो जाता है, उसका अन्तःकरण उसके शरीर और मनको दग्ध किया करता है और शरीर और मनमे विकार उत्पन्न कर देता है। उसकी जवानी, स्वास्थ्य, सौदर्य्य एवं सुख और शान्तिका प्रतिमा-विसर्जन हो जाता है। वह नाना प्रकारकी कठिन बीमारियोंका शिकार बनता है और अकालमे ही कालकवलित हो जाता है।

स्त्रियोके प्रति सद्व्यवहार रखना भी सदाचारकी एक बडी आज्ञा है। यह सर्वथा स्वाभाविक है। इसमे अतिप्राकृतिक लेशमात्र भी नहीं है। प्रकृतिकी आज्ञा यहाँ भी वैसी ही कड़ी है। विषयासक्त पुरुष और स्त्री यह सोच सकते हैं कि उनकी इन्द्रियलोलुपतासे उन्हे कोई हानि नहीं पहुँचती, परन्तु प्रकृति उन्हें शारीरिक रोग और मानसिक यंत्रणाये प्रदान करती है। वह विपयलोलुप स्त्रियोंको सन्तानहीन बनाती है, मानों वह उसकी सन्ततिसे घृणा करती है। और यदि इस प्रकारके पुरुप और स्त्रियोको सन्तान होती भी है, तो दुर्बल, रोगग्रस्त और लघुजीवी होती है। इन्दियासक्त स्त्री पुरुष यदि एकान्तमें छिप कर

प्रकृतिके आईन-विरुद्ध दुष्कर्म करते है तो क्या वे सोचते है कि हम प्रकृतिको भी धोखा दे देगे ? नहीं नहीं, कदापि नहीं। प्रकृति अन्धी नहीं है। उसकी दृष्टि बड़ी सूक्ष्म और सर्वगामिनी है। वह सब कुछ देखती है और तुरत ही आईनके अनुसार ऐसे लोगोको सजा देती है। ऐसे लोगोकी शारीरिक और मानसिक शक्तिका शीघ्र ही विनाश हो जाता है, मस्तिष्कदौर्वल्यके कारण वे शीघ्र ही पागल हो जाते है, सन्तानहीन हो जाते है और उनका जीवन क्लेशमय बन जाता है। प्रकृति उन्हें घृणासे आच्छादित कर देती है। इसके सिवाय उन्हे जो मानसिक अनुताप और मानसिक यंत्रणाये होती है, उनकी तो गणना ही नहीं हो सकती। अब यदि हम व्यक्तियों (अकेले मनुष्यो) को छोड़ कर मनुष्य समूहो यथा समाजोको लेकर देखे तो उपर्युक्त गुणका महत्त्व और भी अधिक स्पष्ट हो जायगा। यह स्वयं सिद्ध है कि जो जाति अधिक *इन्द्रिय-संयम रखनेवाली होगी और स्त्रियोंका सम्मान करेगी तथा जिस जातिकी विवाह-प्रथा स्थायी और पवित्र होगी, वह दूसरी जातियोंकी अपेक्षा अधिक बलवती और दीर्घजीविनी होगी।*

अण्डमन द्वीपकी वैवाहिक प्रथा।

अण्डमन द्वीपके आदिम निवासी या जङ्गली बाशिन्दे अपनी स्त्रीकी परवाह उसी समय तक करते है जब तक कि उसके बच्चे स्तनपान करते है। इसके वाद वे उस स्त्रीको छोड़ देते है और दूसरी स्त्रीको ग्रहण करते हैं। तब त्यक्त स्त्रीको केवल अपना ही नहीं वरन् अपने बच्चेका भी भरण पोपण करना पडता है। क्या प्रकृति इसकी कुछ परवाह नही करती ? क्या वह सर्वथा उदासीन है ? एक नवीन लेखकके विचारानुसार अण्डमनवासियोकी जाति शनैः शनैः मृत्युके गालमे घुसती जा रही है। उस अन्वेषकने

केवल एक ही ऐसी स्त्रीको देखा था कि जिसके तीन बच्चे थे। इस जातिके कुछ ही मनुष्य चालीस वर्षकी आयु प्राप्त करते है। अब अनुमान कीजिए कि यदि मातायें भी उतनी ही स्वार्थरत हो जायँ जितने कि वहाँके पिता होते है और दूध छोड़ने पर वे भी बच्चोंको उसी प्रकार छोड़ दे जिस प्रकार पिता छोड देते है तो यह जाति ससारमे कितने समय तक टिकी रह सकती है? *निःस्वार्थताहीसे समाज, जाति या कुटुम्ब जीवित और कायम रहता है।*

सदाचार ही सब प्रकारके जीवनका अवलम्ब है।

डारविनने सप्रमाण सिद्ध किया है कि सामाजिक प्रवृत्ति थोड़ी थोड़ी और जानवरोमे भी विद्यमान है। छोटी छोटी चिड़ियाँ भी अपने बच्चोंके बचानेके लिए भयानक आपत्तिका सामना करती है और अनेक बार अपनी जान तक खो देती है। यदि ससारमे केवल स्वार्थपरता ही होती, तो इस भू-पृष्ठ पर उन पौधो या उन क्षुद्र कीट पतङ्गोके सिवाय कि जिनके बच्चे जन्म लेनेके साथ ही अपनी फिकर आप कर सकते है और जिनके लालन-पालनकी आवश्यकता नहीं पड़ती—और किसी प्रकारके जीव न बचते। सभी ऊँची श्रेणीके जीवधारी इसी वजहसे जीवित है कि आदिमे उनकी खूब रक्षा की गई है और उनका यथेष्ट लालन पालन हुआ है।

सदाचार ही मनुष्योंको पशुओसे विभाजित करता है।

मनुष्योका पशुओसे इस कारण भेद है कि उनकी सामाजिक प्रवृत्ति पशुओकी अपेक्षा कहीं बलवती है। *डारविनके कथनानुसार जीवधारियोंके उस भागको मनुष्य कहते है कि जिसके भीतर बुद्धि, विवेक और निःस्वार्थता परम्पराके नियमों द्वारा बलवती हो गई हो।* इन्हीं गुणोके कारण मनुष्यको प्रकृति-और जीवों पर श्रेष्ठता प्राप्त हुई है। यदि समुद्रकी मछलियाँ और

पृथ्वी परके पशु मनुष्यके समान बुद्धि और सहानुभूतिसे युक्त होते, तो क्या उनका पकड़ा और मारा जाना इतना सहज होता ? क्या वे मनुष्यके साथ पूरी पूरी बराबरी नही कर सकते ? हम मनुष्य इस कारण है कि हम लोग एक दूसरेकी परवाह करते है और वे पशु इस कारण है कि उनमे सामाजिकता नहीं है। मौका पडने पर प्रत्येकको अपनी लड़ाई आप लड़नी पड़ती है; वे परस्पर प्रेम और सहानुभूतिके सूत्रमे गुँथे हुए नही हैं।

एकता ही बल है, यह एक साधारण सिद्धान्त है। प्रतिक्षण प्रति-मुहूर्त, प्रतिघण्टे और प्रतिदिन हम इसे अपनी ऑखोंसे देखते है। अकेला मनुष्य एक पत्थरके टुकडेको भी नहीं उठा सकता, परन्तु बहुतसे मनुष्योंकी बुद्धि और बलके सहयोगसे बड़े बडे पहाड भी विदीर्ण कर डाले जाते हैं। समाज भी इसी एकताका विकास है। सदाचार इस एकताके साधनका उपाय है, अतएव जिस समाजमे जितनी अधिक एकता होगी वह उतना ही अधिक बलवान् होगा।

जातियोंमें जीवन-कलह और उसमें सदाचारका भाग।

जीवनके लिए केवल मनुष्य ही नहीं, वरन् जातियाँ भी लड़ा करती हैं और प्राकृतिक चुनावका नियम (Law of Natural Selection) अयोग्य जाति-योका विनाश उसी प्रकार करता है जिस प्रकार अयोग्य व्यक्तियोंका। इस विषयमें डारविनके कथन-का समर्थन कौन न करेगा ? उन जानवरोको भी—जो झुण्डो और यूथोमें रहा करते हैं और मिल जुल कर शत्रुओसे अपनी रक्षा या उनपर आक्रमण करते है—आपसमे सद्व्यवहार करना पडता है और यदि उनका कोई सरदार होता है तो उन्हें उसकी आज्ञा माननी पड़ती है। जब जानवरोंकी

यह दशा है तो आप विचार कर सकते है कि मनुष्योंको सच्चरित्र होनेकी कितनी आवश्यकता है? यदि किसी जातिके मनुष्य आपसमें सदा हत्या, डकैती और धोखेबाजी किया करते है, तो अपने किसी बाहरी शत्रुके न रहने पर भी वे कितने दिन तक जीवित रह सकते हैं? और यदि कहीं उनका कोई शत्रु भी हुआ तो फिर कितने शीघ्र वे उसके अधीन हो जायँगे? बात यह है कि कोई जाति या परिवार जीता रह ही नहीं सकता यदि उसमें दुराचारकी अपेक्षा सदाचारकी मात्रा अधिक न हो। मानो प्रकृति हमें सच्चरित्र होनेके लिए मजबूर करती है चाहे हममें सदाचार या धर्मप्रेम हो या न हो। केवल वे ही जातियाँ जीती रहती है और पूर्ण जीवन प्राप्त करती हैं जिनमें आत्मवशता, सद्व्यवहार, सार्वजनिक-हित-साधनकी इच्छा तथा नियमाधीन रहनेका स्वभाव विद्यमान हो। दूसरी जातियाँ जो प्राकृतिक शर्तोंको पूरा नहीं करतीं अवश्य विनाशको प्राप्त होती है। डारविन कहते हैं कि जिस जाति या कौममें देशभक्ति, सद्व्यवहार, आज्ञापालन, बहादुरी, दया और सहानुभूतिकी मात्रा बढी हुई है—जहाँ एक दूसरेकी मदद करनेके लिए सदा तत्परता रहती है—जहाँ लोग सार्वजनिक हितके लिए आत्मोत्सर्गसे भी नहीं हिचकते—वह जाति निःसन्देह दूसरी जाति पर विजय प्राप्त करेगी और इसीका नाम प्राकृतिक चुनाव है।

सभ्य जातियोको सदाचारकी और भी अधिक आवश्यकता है। इसीके कारण ससारमे सभ्य राष्ट्रोंके झण्डे आकाश चूम रहे है। डारविनके मतके अबोध अनुवाद करनेवाले हमे अपनी सर्व-जन-हितैपिताके रोकने तथा अपने अनाथालयो और अस्पतालोंके बन्द करने तथा गरीबों निराश्रयोको कोई आश्रय न प्रदान करनेकी मन्त्रणा देते है, पर यह सभ्यताकी ऊँची सीढ़ी पर चढ़ना नहीं है, वरन् उससे

नीचे उतरना और फिरसे जङ्गली बनना है। यह उन अमेरिकन रेड इण्डियनोंका—जो अपने दुर्बल और जर्जर साथियोंको मैदानमें मरनेके लिए छोड देते हैं, या उन फिजीयनोंका—जो अपने माता पिताके वृद्ध होने या बीमार पड़ने पर उन्हें जीते गाड़ देते है, या उन जानवरोंका—जो अपने जख्मी साथियोंको अपने गरोहसे बाहर निकाल देते है और तड़पा तड़पा कर उनका प्राण लेते हैं—अनुकरण करनेके समान है। नहीं, डारविनके ऐसे निठुर अनुवाद करनेवालोंसे बहुतसे जानवर और जंगली भी अपने भावों और जजबातमें कहीं श्रेष्ठ है। डारविनने ऐसे हिन्दुस्तानी कौओंका जिक्र किया है जो अपने दो तीन अन्धे साथियोका भरण पोपण करते थे। * डारविनने स्वयं अपनी ऑखोंसे एक ऐसे कुत्तेको देखा था जो एक टोकनीमें पड़ी हुई बीमार बिल्लीके समीपसे, उसके मुँहको दो एक बार चाटे बिना, कभी आता जाता न था। यदि तुम इस सामाजिक प्रवृत्तिका विनाश कर दो, मनुष्यान्तरस्थ दया और सहानूभूतिके स्रोतको शुष्क कर डालो, तो देखोगे कि बहुत ही जल्द समाजका विच्छेद हो जायगा, समाज ढीला पड़ जायगा, उसके अंग शिथिल हो जायँगे, अराजकताका साम्राज्य हो जायगा और समाज और जातिके निर्माणका काम फिर जडसे शुरू करना पडेगा। युद्धमें—अन्तर्जातीय प्रतिद्वन्द्वतामें—सदाचार-शून्य जातिका अवश्य विनाश होगा। सामाजिक जातिके देशप्रेम, जातिप्रेम, उत्साह और ऐक्यके मुकाबलेमें ऐसी जातियोको अवश्य नीचा देखना पडेगा। सदाचार ही एक ऐसी आकर्पण शक्ति है जो समाजको स्थिर और कायम रक्खे हुए है। प्राण-पखेरूके उड़ जानेसे शरीरमें किसी आकर्पणके बाकी न रहने पर जैसे अणुओ और पर-

* देखो इसके पहलेका अध्याय।

माणुओसे बना हुआ संगठित शरीर एकदम छितरा जाता है, वही दशा सदाचार-विहीन समाजकी भी होती है।

नैतिक पतनसे ही जातियोंका पतन होता है।

इसमे किसीको भी सन्देह न होगा कि प्राचीन मिश्र (इजिप्ट) खुल्द, वैविलौन, असीरिया, और फारसका विनाश इसी कारण हुआ कि वे जीनेके योग्य न थे। इसी कारण ससार-विजयी रोम जङ्गलियों द्वारा परास्त हुआ और प्राचीन यूनानका जीवनान्त हुआ, और इसी कारण एकता-विहीन होनेके कारण हमारी भी वर्तमान अवनति हुई। स्पार्टा बुद्धिमे दूसरे यूनानी राष्ट्रोसे श्रेष्ठ नहीं था, परन्तु वह केवल अपनी एकता और राष्ट्रीय नियमोके सदा आदर करनेहीके कारण थोड़े दिन तक यूनानमे अपना मस्तक सबसे ऊँचा किये रहा। इसलामके इतिहासमे भी यही बात हुई। केवल एकता और सहधर्मियोके प्रति अनन्त प्रेमके कारण ही इसलामने एक समय तहलका मचा दिया था और युद्धमें अपनेसे अधिक श्रेष्ठ और उन्नत जातियोंके भी छक्के छुड़ा दिये थे। विद्या और बुद्धिमें एक प्राचीन अथीनियन (एथेन्स-निवासी Athenian) आधुनिक अमेरिका और इंग्लण्डके आदमियोसे उतना ही बढा हुआ था जितना हब्शियों (Negros) से आजकलके अँगरेज और अमेरिकन। तो फिर कला, शिल्प और सौन्दर्य्यकी खान इस अलौकिक जातिकी मृत्यु क्यो हुई? सामाजिक दुराचारके कारण, खुले शब्दोमें विवाह-प्रथाके कमजोर होने एव उसके उठ जानेके कारण और वेश्यायोके एकाधिपत्य लाभ करनेके कारण। यहाँ पर प्राचीन ग्रीस और रोमके व्यभिचारका उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा। इन देशोके व्यभिचारका स्मरण करनेसे यह साफ सिद्ध होता है कि यही इन देशोंके अधःपतनका प्रधान कारण था।

प्राचीन ग्रीस और रोममें व्यभिचार।

प्राचीन ग्रीसमें वेश्याओंको जो प्रधानता प्राप्त हुई थी, वह और किसी देशमें नहीं हुई। वहाँके समाजमें उनका जो स्थान था, उनके पास जो धन-वैभव था और उनमें जो गुण तथा सौन्दर्य था, वह हमारे लिए कल्पनातीत है। ग्रीस-कलाकी जान वेश्यायें ही थीं। यूनानी मूर्ति-तक्षक उनको लक्ष करके देवियोंकी मूर्तियाँ गढा करते थे। ग्रीसका प्रसिद्ध चित्रकार एक मालिनकी लडकीको बहुत प्यार करता था और फूलोंके वीचमें विठा कर उसका चित्र खींचा करता था। उसने अपने काममें इसी प्रकार निपुणता प्राप्त की थी। पिण्डार और साइमोनाइडीज (ग्रीसके प्रसिद्ध कवि) वेश्याओंकी स्तुति किया करते थे। पिरिक्लीज़की प्रेमिका अस्पेसिया केवल अपने सौन्दर्य्यके लिए ही नहीं, वल्कि अपने गुणोंके लिए भी प्रसिद्ध थी। पिरिल्कीज़-को वाक्चातुर्य्यकी शिक्षा उसीसे मिली थी और उसके वड़े वड़े व्याख्यानोंको अकसर वही लिख दिया करती थी। राष्ट्रीय वातोंमें भी पिरिक्लीज उससे सलाह लिया करता था। अन्य दार्शनिकोंकी तरह साक्रेटीज (सुकरात) भी उसकी मजलिसोंमें जाया करता था। डायोटिमा नामक एक दूसरी वेश्यासे स्वयं सुकरातने भी शिक्षा पाई थी। सुकरातने इस वातको स्पष्टतासे स्वीकार किया है और उसके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की है। लियोन्टियम नामकी वेश्याको इस वातका गर्व था कि वह एपिकुरसके मुख्य शिष्योंमेंसे एक थी।

परन्तु क्या प्राचीन ग्रीसकी सभी वेश्याये इसी तरहकी थीं? नहीं, कदापि नहीं। उनका अधिकांश जैसा कि सर्वत्रका नियम है पाप और अधमताके गहरे कूपमें सरसे पैर तक डूवा हुआ था। पूर्वोक्त उदाहरणोंके देनेका तात्पर्य्य केवल इतना ही है कि प्राचीन ग्रीसमें वेश्यायें किस दृष्टिसे

देखी जाती थी, इस बातको पाठक समझ जायँ। यद्यपि वहाँ वेश्याओंका वह सम्मान नहीं था जो विवाहिता स्त्रियोंको प्राप्त था, तथापि ग्रीस-निवासी यह समझते थे कि धर्मपत्नी और वेश्या इन दोनोका स्थान जीवनमे नियत है और इन दोनोंहीकी आवश्यकता है। वेश्याओंकी इस प्रधानताका, उनके वैभवका और उनके प्रति लोगोकी असीम श्रद्धाका प्रभाव ग्रीस देश पर अच्छा न पडा। वैवाहिक बन्धन नीची दृष्टिसे देखा जाने लगा। एक ग्रीक कविका कथन है कि "विवाहितावस्थामें दो ही दिन बड़े आनन्दके हैं—एक दिन तो वह, जब पति अपनी नई दुलहिनको प्रथम प्रथम आलिंगन करता है, और दूसरा वह दिन, जिस दिन वह अपनी स्त्रीको कब्रमे सुला आता है।" इन ही कारणोसे लोग विवाहितावस्थाको नापसन्द करने लगे। कौटुम्बिक जीवनको छोड़ कर लोग कुलटाओं और वेश्याओके साथ जीवन बिताने लगे। विवाहित लोग भी खुल्लमखुल्ला वेश्यायें रखते थे।

बुरे दिनोंके आनेके पहले रोमकी भी यही शोचनीय अवस्था हुई थी। वहाँके लोग भी विवाहसे इसी प्रकार विरक्त हो गये थे। पूर्ण स्वतन्त्रताके सामने वैवाहिक बन्धनको कोई पसन्द न करता था। विवाहबन्धन अत्यन्त ढीला हो गया था। जरा जरासी बात पर साधारणसे साधारण और मिथ्यासे मिथ्या बहाना मिलने पर यह छिन्न हो सकता था। केवल पुरुप ही नहीं, स्त्रियाँ भी बड़ी फुर्तीसे विवाहोच्छेद कर देती थीं। सेनेका कहता है कि रोममें ऐसी भी स्त्रियाँ थीं जो वर्षोंको कौन्सलो (रोमके प्रधान मजिस्ट्रेटो) के चुनाव और उनकी तबदीलीसे नहीं बल्कि अपने [illegible] संख्या परसे गिना करती थीं! एक रोमनलेखक ऐसी

स्त्रियोका ज़िकर करता है कि जिनके दस दस पति हो चुके थे। जुब्हनल (Juvenal) ने एक स्त्रीके बारेमे लिखा है कि पॉच वर्षके अन्दर उसके आठ पति हो चुके थे! सेंट जेरोमने एक ऐसी स्त्रीका वृतान्त लिखा है जो अपने तेईसवें पतिके साथ रहती थी और अपने पतिकी इक्कीसवीं स्त्री थी! हो सकता है कि ये असाधारण घटनायें हो; परन्तु विवाहकी अस्थिरता तथा समाजकी नैतिक अवस्थाका इनसे अच्छी तरह पता चल जाता है। रोमका नैतिक अधःपतन यहाँ तक हो चुका था कि टाइबेरियसके समयमें एक ऐसा कानून बनानेकी जरूरत हुई जिससे उच्च कुल-की रमणियॉ अपना नाम वेश्याओंके रजिस्टरमे न लिखा सकें—वेश्याये न बने। रोममें कुछ तमाशे और अभिनय ऐसे भी होते थे जिनमें नग्न वेश्याओकी दौड़ होती थी। रोमके मुग्धाभिनयो (Pantomimes) मे अश्लीलता और पाप-कादर्य्यके अतिरिक्त और कुछ न होता था। लोग यहॉ तक विपयासक्त हो गये थे कि प्रायः प्रत्येक घरकी दीवारों पर अश्लील चित्र अङ्कित होते थे। अतः कोई आश्चर्य्य नहीं यदि रोम जैसे प्रतिभाशाली और शक्ति-सम्पन्न साम्राज्य-का विनाश हो गया। ग्रीस और रोमकी नैतिक अवस्थाके इतिहासका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए लेकीकी History of European Morals नामक पुस्तकको पढना चाहिए।

समाजिक उन्नतिके लिए लैंगिक स्वच्छता परमावश्यक है। शुद्ध लैंगिक सम्बन्ध—एक पुरुप या एक स्त्रीके एक ही पति या पत्नी होनेकी प्रथा—से ही समाजका मंगल हो सकता है। व्यभिचारग्रस्त समाज अधिक दिनो तक जीवित नहीं रह सकता। ऐसे समाजमे बच्चोंका लालन पालन अच्छी तरहसे नहीं हो सकता और इसलिए

ऐसे समाजके लोग दुर्बल और अयोग्य होते हैं। फल यह होता है कि कुछ ही दिनोमे उक्त समाज काल-कवलित हो जाता है।

शुद्ध और उन्नत पारिवारिक जीवनके लिए शुद्ध और सुदृढ वैवाहिक प्रथाका स्थापित होना अनिवार्य है। जब हम यह स्मरण करते हैं कि पुरुप और स्त्रीके मिलनेसे ही सच्चरित्रता, सहृदयता, सहिष्णुता, इत्यादिका आरम्भ होता है, तब लैंगिक स्वच्छता पर विशेष कहना अनावश्यक प्रतीत होता है। सदाचारका अंकुर—निस्वार्थताकी जड़—पुरुष और स्त्रीके इसी सम्बन्धमे है। जाति, देश या ससारके प्रति प्रेम दिखलानेके पहले मनुष्य अपनी स्त्री, और पुत्र पुत्रियोंके साथ ही प्रेम दिखलाता है। स्त्री और परिवार ही निःस्वार्थताके शिखर पर चढनेकी प्रथम सीढियाँ हैं। विश्रृंखल लैंगिक सम्बन्धके द्वारा मनुष्य-स्वभावकी कठोरता और स्वार्थपरताका विनाश नहीं हो सकता। उसका जीवन ही निःसार और फीका हो जाता है और उसमे तथा पशुमे कोई भेद नही रह जाता। विचारकोसे छिपा नहीं है कि पुरुप स्त्रीका प्राकृतिक खिंचाव ही सारी ललित कलाओं, कविताओ और उपन्यासोंकी जान है। तब व्यभिचारग्रस्त समाज इनका रसास्वाद कैसे कर सकता है? ऐसे समाजमे ऐसी कोई शक्ति विद्यमान नहीं है जो पुरुपों या स्त्रियोको अपनी पत्नियो या पतियों तथा बच्चोंके लिए कष्ट झेलनेके लिए उत्तेजित कर सके। यदि विचार कर देखा जाय तो विदित होगा कि साधारणसे साधारण मनुष्य भी केवल अपने ही लिए जीवन धारण नहीं करता। मामूलीसे मामूली आदमी भी अपनी स्त्री और बच्चोंके लिए कष्ट उठाता है। अतः विवाह ही सदाचारका प्रथम शिक्षक है।

तब, इसमे कोई सन्देह नहीं रह जाता कि मानव-समाजकी भलाईके लिए लैंगिक स्वच्छता अनिवार्य्यतः आवश्यक है। इसलिए

प्रत्येक मनुष्यको सचेत हो जाना चाहिए और अपने उत्तरदायित्वका खयाल कर लेना चाहिए। हमे याद रखना चाहिए कि वह मनुष्य जो वास्तवमे दुराचारी न होने पर भी—केवल मनसे भी स्त्रियोंके बारेमें बुरे विचार रखता है, उनकी अवज्ञा होने पर क्रोध नहीं करता है और उन्हे अपवित्र दृष्टिसे देखता है, या अपने चित्तमे जघन्य विचारोको स्थान देता है, और अपवित्र परिहाससे अपने होठोको कलुषित करता है—वह हमारी सामाजिक दुराचाररूपी तरङ्गोको और भी चञ्चल बनाता है, तथा संसार और मानव-समाजका अहित करता है।

प्रकृतिका न्याय और उसका संदेश।

प्राकृतिक चुनावका नियम पहले विद्यमान था और भविष्यमे भी रहेगा। अपराधियोको दण्ड देनेमे प्रकृति जरा भी सङ्कोच नहीं करती। प्रकृति उच्च और गम्भीर स्वरके साथ चिल्ला चिल्ला कर कह रही है कि "वह जाति—जिसके कि शासक विलासतामे डूबे हुए है, कामोन्माद-मे सराबोर हैं, इन्द्रियपरतामे तर बतर है, दुर्बलो, दरिद्रो, और अनाथोसे घृणा करते है—जीवित नहीं रह सकती। कमजोर जातियो पर दॉत लगाये, टकटकी बाँधे, मुहँ फाड़ कर बगुलोंके समान उन्हें उदरस्थ करनेकी कामना रखनेवाली बलवती जातियॉ जीती न रहेगी। जो जाति केवल बल और तलवारके ही साम्राज्यको मानती है वह तलवारसे ही मरेगी। न्याय, धर्म और सदाचारके अतिरिक्त मैं किसी भी देश या जातिकी परवाह नहीं करती। ऐ ससारकी वर्त्तमान जातियो, यदि तुम मुझे ध्यानमे न रक्खोगी, तो बाबिलौन, यूनान और रोमकी तरह तुम भी सदाके लिए अन्तर्हित हो जाओगी। मै न्याययुक्त, धार्मिक और पुण्यात्मा राष्ट्र चाहती हूँ। मुझे सीधे सादे स्वभावके, स्वच्छ हृदयके, निर्विकार दिलके तथा ज़ुबानके सच्चे मनुष्य प्रिय है। मै

ऐसे लोगोको प्यार करती हूँ जिन्हें सत्य जीवनसे भी प्यारा है, और जो अपने राष्ट्रके दीपनिर्वाण होने तकको उसके पापाचारी और अन्यायी होनेसे भला समझते है। मै इतना ही चाहती हूँ। ऐ मनुष्यकी सन्तानो, क्या तुममें मुझे तृप्त करनेकी शक्ति है? यदि तुम मुझे सन्तुष्ट कर सकोगे तो मै तुम्हे सदाके लिए अजर अमर और अजेय कर दूँगी; जवतक सूर्य्यमे ताप, चन्द्रमामें ठढक, नभमे नक्षत्र, और आकाशमें नीलवर्ण है—नही नहीं जब तक कालका स्रोत बहता है, तब तक मै तुम्हारी यशःकीर्ति और सुख्यातिकी दुन्दुभी बजाती रहूँगी।"

अतएव सत्यपथ पर चलनेमें, पापो, बुराइयो, अन्यायो और निर्दयतासे लड़नेमे, ससारके ताप और दुःख निवारण करनेकी चेष्टामें, दुर्बलोको अधिकारकी उपलब्धि कराने और उन्हें अत्याचारसे मुक्त करनेकी कामनामें प्रकृति भी हमारा साथ देती है। प्रकृतिके अनन्त शक्तिशाली नियम हमारा साथ देते है। प्रकृति हमें सन्तुष्ट दृष्टिसे, प्रफुल्ल मुखसे, और मन्द मुसकाते हुए होठोसे देखती है। सदाचारकी ओर प्रवर्तित होनेके लिए मनुष्यको इससे अधिक और क्या जाननेकी आवश्यकता रह जाती है?

२—युद्ध, जीवन-संग्राम और सदाचार।

स्पेन्सरने विकासको तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया है। उसका वर्गीकरण इस प्रकार है—निर्जीवविकास (Inorganic Evolution), आंगिक विकास (organic Evolution) और अंगातीत विकास (Superorganic Evolution)। विकासवादके विद्यार्थीको प्रथम श्रेणीमें वे बातें मिलती है जिनका वर्णन ज्योतिषशास्त्र और भूगर्भशास्त्रमे किया जाता है—यथा, पृथ्वीका पहले क्या स्वरूप था तथा एक साधारण बदलीसे इस पृथ्वीका और इस परके सारे पदार्थोंका किस प्रकार विकास हुआ। दूसरे शब्दोंमें, ज्ञानके इस अंशको पृथ्वी और पदार्थके जीवनका इतिहास अनुमान करना चाहिए। द्वितीय श्रेणीमे वे बातें है जो प्राणिशास्त्रमें वर्णित होती हैं। अर्थात् आंगिक विकासके अध्ययनसे हमें प्राणियोंके जीवन-इतिहासका पता चलता है। हमे मालूम होता है कि क्षुद्रसे क्षुद्र जीवाणुओंसे लेकर संसारके उन्नतसे उन्नत प्राणियोंकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है, किस किस प्रकार किन किन कारणोंसे जीवोंका शारीरिक विकास हुआ है, इत्यादि। परन्तु विकासकी एक तीसरी श्रेणी भी है जिसे अन्य किसी उपयुक्त शब्दके न मिलनेके कारण स्पेन्सरने 'अंगातीत विकास' कहा है। इस तरहके विकासका आरम्भ जीवोंके बहुत उन्नत होने पर होता है। अनेक जंगम (organic)

विकास का वर्गीकरण।

जीवोके एक साथ सगठित होने—अर्थात् जीवोके मध्य सामाजिकताका पदार्पण होनेसे ही इसका 'श्रीगणेश' होता है। यद्यपि मनुष्यके अतिरिक्त कुछ अन्य जीवोमे भी सामाजिकताका धुँधलासा प्रतिबिम्ब दृष्टिगोचर होता है, परन्तु मानव जातिमे ही यह स्पष्टताके साथ दिखलाई पड़ती है और इसलिए यदि हम कहे कि मनुष्य समाजमे ही इस तरहके विकासका आरम्भ होता है तौभी कोई बडी भूल न होगी। अतएव इस *तृतीय प्रकारके विकासको हम विशेष रूपसे मनुष्यका विकास कह सकते है। हम कह सकते है कि इसके अन्तर्गत जो प्राकृतिक नियम है, वे ही मानव जीवनके भी नियम है।*

सदाचार ही अंगातीत विकास या सामाजिक जीवनकी कुंजी है।

अंगातीत विकासके आरम्भ होनेके पूर्व तक युद्ध ही इस जीवनका नियम रहा है, बल्कि बादको भी अनेक समय तक मनुष्यके भाग्य-निर्माणमे युद्धने बहुत बड़ा भाग लिया है। जीवन-संग्रामका अर्थ ही युद्ध है। जीवोको आदि अवस्थामे बहुत समय तक शारीरिक बल या युद्ध-कौशलहीके द्वारा जीवन-संग्राममे सफलता प्राप्त होती रही है; परन्तु कालान्तरमे जीवोके मध्य सामाजिकताका भी प्रादुर्भाव हुआ—स्वेच्छाचारी जीवनके स्थान पर सामाजिक जीवन प्रतिष्ठापित हुआ और तब सफलताका साधन युद्ध न रहा, वरन् इसके लिए *सदाचारका—जो कि सामाजिक जीवनकी कुंजी है*—आश्रय ग्रहण करना पड़ा। मनुष्यने साधारणतः जान लिया कि प्रकृति शारीरिक बल और पराक्रमकी अपेक्षा सच्चरित्रताको कहीं अधिक पसन्द करती है। उसने जान लिया कि मनुष्य सामाजिक जीव है, बिना समाजके न तो मानव-जीवन पूर्ण ही हो सकता है और न टिका ही रह सकता है। उसने

अनुभव कर लिया कि सदाचारके ही द्वारा पूर्ण सामाजिक जीवनकी प्राप्ति हो सकती है। अतएव यह स्पष्ट है कि *उन्नत अवस्थामें सफलताका साधन युद्ध नहीं, वरन् सदाचार है। यह सदाचार ही जीवनका नियम है। विना सदाचारके मनुष्यका जीवन तक असम्भव है।*

अभी तक मनुष्यकी सामाजिक प्रवृत्तिका दृढ़ीकरण पूर्णताके साथ नहीं हुआ है।

परंतु मनुष्यने अभीतक अपने स्वार्थी, अस्वेच्छाचारी और असामाजिक स्वभावको सर्वथा नहीं छोड़ दिया है। लड़ाईको वह अब भी प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखता है। युद्धमे अनेकों निर्दोप व्यक्तियोंकी हत्या करनेवाले—असंख्योको अनाथ और निराश्रित बनानेवाले—हरे भरे खेतोको मरुस्थल सदृश बनानेवाले—कोलाहलपूर्ण ग्रामोको सदाके लिए निस्तब्ध कर देनेवाले—उद्भट योद्धा शात व्यवसायियो और निरुपद्रवी श्रमजीवियोकी अपेक्षा अधिक सम्मान प्राप्त करते है। नेपोलियन और सीजर सदृश लोगोको देवताओका सा आदर प्राप्त होता है। इनके नामोके पीछे 'महान्' शब्द जोड़ा जाता है। हम अभीतक समझते है कि युद्धमे मरनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। इतना ही नही, बहुतसे देशोंके विद्वान् राजकर्मचारी तो युद्धकी उपयोगिताको वैज्ञानिक रीतिसे भी प्रतिपादित करते हैं और मानव जातिकी उन्नतिके लिए युद्धको बहुत ही आवश्यक सिद्ध करते है।

अब यदि—जैसा कि हमने इस अध्यायके पहले खण्डमे प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है और इसमें मतभेद होना असम्भव जान पड़ता है—सदाचार ही सामाजिक जीवनकी कुंजी है, अर्थात् सदाचारके द्वारा ही मनुष्यका विकास और उन्नति हो सकती है, तो युद्ध-

वाद और सदाचारके सम्बन्धको देखनेहीसे युद्धवादकी उत्तमता और निकृष्टता पूर्ण रूपसे प्रमाणित हो जायगी। हम अपने अन्वेषणमें अनुमानवाद (deduction) और व्याप्तिवाद (induction) दोनोंसे काम लेगे।

युद्ध और सदाचारका सम्बन्ध देखनेसे युद्धकी उपयोगिता और अनुपयोगिता पूर्णताके साथ प्रमाणित हो जाती है।

प्रथम विचार-पद्धतिके अवलम्बन करनेसे यह स्पष्ट देख पड़ता है कि *युद्धवाद और सदाचारमें स्वाभाविक विरोध है।* सदाचारकी स्थिति सामाजिकता, सहृदयता, समवेदना, न्यायपरता आदि भावों पर है और युद्धवादके साथ इन भावोकी स्वाभाविक शत्रुता है। शत्रुओंको मार गिराना, उनकी पत्नियोको पति हीना और उनके बच्चोंको मातृ-पितृ-हीन बनाना ही तो युद्धका उद्देश होता है। तब युद्धनीतिमें सहानुभूति और सहृदयताको कोई स्थान कहाँसे प्राप्त ही सकता है? न्यायका पहला सिद्धान्त तो यही है कि दूसरोंके प्रति ऐसा कोई काम न करो जिसे तुम स्वय अपने प्रति किया जाना नापसन्द करते हो। तव युद्धमे न्यायपरता कहाँसे बर्त्ती जा सकती है? छल, बल, कौशल या चाहे जिस प्रकारसे विजय लाभ करना ही युद्धका प्रधान लक्ष्य है। भारतके युद्धोंमें भी—जहाँकी युद्धन्याय्यता जगद्विख्यात है—छल और कौशलका एक मात्र अभाव नहीं है। उदाहरणके लिए द्रोणाचार्य्य और अभिमन्युके वधका नाम ले देना ही पर्य्याप्त होगा। ऐसी दशामे न्यायपरता और युद्धवादमे मित्रता कैसे हो सकती है? युद्ध एक बहुत बड़ा अभिशाप है जो हमारी सहानुभूतिको शिथिल करता है, हमारे जीवनकी गतिको रोकता है, हमारी उन्नतिमे बाधा डालता है, हमारे हृदयको फैलने नहीं देता, हमें दूसरोंके—ससारमात्रके, सुखसे

युद्ध हृदयको सहृदयताशून्य बनाता है।

सुखी और दुःखसे दुखी नहीं होने देता, अपनी हृदय-तंत्रीको दूसरोंकी हृदय-तंत्रीके साथ मिलाने नहीं देता, हमारे फैलते हुए हृदयको मसोस देता है, हमारी लहलहाती हुई सहानुभूति-लतिकापर तुपारवर्पा करता है, और हमें निर्दयता और निष्ठुरताका पाठ पढाकर हमारे धकधक करनेवाले हृदय-स्पन्दनको निस्तब्ध करता है। युद्धवादके मरुस्थलमें सहानुभूतिकी कलकलनादिनी गङ्गा प्रवाहित नहीं हो सकती। युद्ध-वादके प्रचण्ड ताप-मय, निरार्द्र निदाघमे सहृदयताका इन्द्र-धनुप उदित नहीं हो सकता।

हृदयके अधिक संक्षोभ्य होनेको ही विकास कहते हैं।

परन्तु जीवनके इतिहास पर नज़र दौड़ानेसे तो यही विदित होता है कि चेतनाके बढ़ने और हृदयके अधिक संक्षोभ्य होनेका ही नाम विकास है। चेतनाके विकासको ही जीवनकी उन्नति या विकास कहते हैं। अतएव युद्ध-वाद विकासके नियमों और जीवनके नियमोंके प्रतिकूल है। यदि इसे जानकर भी हम युद्धवादी बने रहेंगे तो हमें इसका अवश्यभावी फल अवश्य चखना होगा। प्रकृति किसीके अधीन नहीं है। उसके नियमोंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अतएव हमें उसके नियमोका पालन करना ही पड़ेगा चाहे हमारी इच्छा हो या न हो, अन्यथा हमे मर मिटना पडेगा।

युद्ध और जीवन-संग्राम।

कुछ विद्वानोंके कथनानुसार यदि जीवन-संग्राम इस संसारमें सदैव विद्यमान रहे, तौभी इसके द्वारा युद्धकी उपयोगिता कदापि प्रमाणित नहीं होती। प्राकृतिक चुनावका नियम सदाके लिए जारी रह सकता है—अपने प्यारे जीवो और जातियोके निर्वाचनके काममें प्रकृति

सदा लगी रह सकती है—परन्तु हमें यह जान लेना चाहिए कि उन्नत अवस्थामे सफलताके लिए किन किन बातोंकी आवश्यकता है। यह प्रमाणित किया जा चुका है कि उन्नत अवस्थामें सफलताके लिए सदाचार ही एक मात्र आवश्यक वस्तु है। प्रकृति सच्चरित्रताको पसन्द करती है और सच्चरित्रोंको चुनती है, न कि सबसे अधिक लड़ाकुओंको। युद्ध करके—अन्यायका अवलम्बन करके—निर्बलों और निस्सहायो पर ज़ुल्म करके—अपना जीवन व्यतीत करना पशुओंके लिए ठीक हो सकता है, चेतना-युक्त, ज्ञान-युक्त मनुष्योके लिए नहीं। और यदि हम सचमुच ही युद्धके लिए व्याकुल है तो क्या हमारे सामने कोई और शत्रु नहीं है, जो हम मनुष्योंसे लडते हैं और उनका खून बहाते हैं? क्या दुःख और दारिद्र, व्याधि और अज्ञानसे लड़नेमें कम शूरता है? नहीं, इन ही शत्रुओंके साथ लडने, इन्हे परास्त करने और नहीं तो स्वयं युद्धक्षेत्रमे वीर-गति प्राप्त करनेमें ही सच्ची शूरता केन्द्रीभूत है। याद रहे कि युद्ध करनेमें—अपनी बढी हुई शक्तिके द्वारा दूसरोको धर दबानेमे—उनके घर द्वार, वस्तु सम्पत्ति पर अधिकार जमानेमे—बलात् छीन लेनेमे—कोई वीरता नहीं है, वरन् यह नामर्दी, कायरता, भीरुता और कापुरुषताका ही परिचायक है। युद्धमय जीवन-सग्रामके द्वारा—निष्ठुरता और निर्दयताके द्वारा—पशुओका चुनाव हो सकता है, अच्छोका या वास्तविक मनुष्योका नहीं। युद्धके द्वारा जो चुनाव होता है वह बेईमानीका चुनाव है, उसमें अन्याय मिला होता है। यह चुनाव सभी मनुष्योको समान अधिकार और अवसर देकर नहीं किया जाता—इसमे दबाव और बलप्रयोगका समावेश होता है। इसलिए युद्धमे कोई वीरता नहीं है।

युद्ध वास्तविक शूरताका नहीं, वरन् पशुताका और अमानुषताका ही परिचय देता है।

युद्धका प्रभाव ।

प्रकृति अपने नियमके अनुसार वैयक्तिक जीवनकी अपेक्षा उपजातियोके जीवनकी और उपजातियोके जीवनकी अपेक्षा जातियोके जीवनकी अधिक परवाह करती है । जाति-रक्षाके लिए वह व्यक्तियो और उपजातियोके बलिप्रदानसे कुण्ठित नहीं होती । अतएव इस स्थान पर हम युद्ध-वादकी उत्तमता और निकृष्टतापर जो विचार कर रहे है वह सारी मनुष्यताके ऊपर इसके परिणामोके लिहाजसे करते है, व्यक्ति विशेषकी हानि लाभ या जातिविशेषके उत्थान और अधःपतनके लिहाजसे नहीं । पर क्या विजयी व्यक्तियो और जातियोको भी युद्धके द्वारा स्थायी लाभ होता है ? नहीं, कदापि नही । प्रमाणके लिए इतिहास मौजूद है । आज प्राचीन समयके समुन्नत मिश्र, खुल्द, असीरिया और बैविलोन कहाँ है ? आज संसार-विजयी रोमका झंडा कहाँ कहाँ उड़ रहा है ? आज सिकन्दरके जन्मदाता यूनानकी क्या हालत है ? परन्तु यही भारत—जिसके दर्शन और आध्यात्म-तत्त्वकी निन्दा की जाती है —भौतिक बल और विभवकी उपेक्षा करनेके कारण लोग जिसपर हँसा करते है—जो जीवमात्र पर दया और अहिसाका आदेश देता है—जो मनुष्योका तो क्या पशुओका भी खून बहाना नहीं चाहता —आज भी संसारमे आध्यात्मिकताकी लहरें भेज रहा है, एवं गर्वपूर्वक संसारकी विजयी और धन-बल-ऐश्वर्य-मत्त जातियोके प्रति कह रहा है—

" न धनेन न प्रजया त्यागेनैकेन अमृतत्वमानुषः । "

सैनिक समाज उन्नति-शील कदापि नहीं हो सकता । उन्नतिके लिए परमावश्यक वस्तु वैयक्तिक स्वतंत्रता है । परन्तु स्वतंत्रता और सैन्यवादमे स्वाभाविक विरोध है । पंलटनका प्रत्येक सिपाही युद्धके

सम्बन्धमें अपनी राय नहीं दे सकता और न किसी सेनाके अध्यक्षका प्रत्येक सिपाहीसे पूछकर काम करना बुद्धिमत्तामें शामिल हो सकता है। अतएव सैनिक समाजमें व्यक्तित्व या स्वतंत्रताको कोई स्थान प्राप्त नहीं है, क्योंकि आज्ञाधीनता ही सैनिक समाजकी जान है। व्यक्ति शासकके कामोंमे हस्तक्षेप नहीं कर सकता। उसे केवल निष्प्राण कठपुतलीकी भाँति शासकोंका आज्ञापालन करना चाहिए। कार्य्यतः सैनिक समाजमें व्यक्तियोंके चरित्र और उनकी शक्तियोंका पूर्ण विकास नहीं होने पाता। इसलिए सैनिक समाजमें उन्नतिकी गति शिथिल हो जाती है और इसके एकदम बन्द हो जाने पर समाज मृत्युके मुखमें पतित हो जाता है।

सैनिकतासे हानि। सैनिकता और स्वतंत्रता।

इतना ही नहीं, वह समाज—जो दूसरो पर जुल्म करता है, जो दूसरे लोगोके घरोंपर, अपना आधिपत्य जमाता है, जो दूसरोको स्वयं अपने घरोमे बेगाना बनाता है—जो दूसरोंके धनको लूट कर अपनेको ऐश्वर्यमान और विजेता कहता है, जो दुर्वलोंका धनशोषण करके अपनेको धनाढ्य अनुमान करता है—स्वय भी निरापद नहीं रहता। अनन्त-शक्ति-संपन्ना प्रकृति दूसरी तरहसे उक्त समाजसे बदला लेती है और उसे सदाचार-विहीन बनाकर ससारसे उन्मूलन कर डालती है।

सदाचार और युद्ध-वाद एक साथ नहीं रह सकते। *यह निश्चित है कि व्यवसायी समाजकी अपेक्षा सैनिक समाजका सदाचार निकृष्ट दर्जेका होता है। अतएव सैनिक समाजका अधःपतन भी अवश्यभावी है।*

सैनिकताके साथ सदाचारका क्या सम्बन्ध है, यह इरूक्यैस जातिके ऊपर दृष्टिपात करनेसे स्पष्ट हो जायगा। इस जातिके लोगोंके वारेमे लिखा है कि “ अपराध और कुकर्मकी मात्रा उनके यहाँ इतनी कम है कि उन्हे किसी दण्ड विधान (Criminal Code) की आवश्यकता ही नही होती और इसलिए उनके यहाँ दण्ड-विधानका प्रायः अभाव ही है।” इस जातिकी सामाजिक सस्थाओके सम्बन्धमे वर्णित है कि “ इरूक्यैस लोग गर्वपूर्वक कहते है कि शाति ही उनके संघका प्रधान उद्देश है। निरन्तर युद्ध करते रहनेकी प्रवृत्तिका—जिसके द्वारा लाल जातिका अनेक समयसे नाश हो रहा है—मूलोच्छेद ही उनका ध्येय है। ” इस दृष्टान्तके द्वारा सदाचार और युद्धका सम्बन्ध साफ तौर पर नज़र आने लगता है। अधिक उदाहरण देनेको स्थान नहीं है। पहलेके अध्यायोमें सभ्य तथा असभ्य जातियोंका जो वृत्तान्त दिया गया है पाठकगण उसका स्मरण करे। इन सव प्रमाणोंसे *यही निष्कर्ष निकलता है कि जब तक आन्तरिक और वाहिरी लड़ाई अनवरत रूपसे जारी रहती है, तव तक सदाचारकी उन्नति नहीं हो सकती। यह निस्सन्देह है कि शांतिहीसे समाजको लाभ होता है।* युद्धवादसे इस शाति भावका या सदाचारका ह्रास होता है और इसलिए मनुष्यके प्रति मनुष्यके व्यवहारमे हिसाभाव अधिक रहता है। वच्चोकी हत्या करना, मनुष्योको मार कर खा डालना, किसीके मरने पर उसके अनुचरो, स्त्रियों इत्यादिको मार डालना, देवताओके सामने मनुष्योका वलिदान देना, इत्यादि वातें लड़ाकू जातियोके ही मध्य पाई जाती है। हिसा उनके यहाँ सत्कर्म

व्याप्तिवाद की रूसे सैनिकता और सदाचारका सम्बन्ध।

सैनिक समाजोंकी रक्तप्रियता

समझी जाती है। फिजियन मनुष्य—जिसके बारेमें यह लिखा गया है कि वह सदा अपने सिरको हथेली पर लिये फिरता है—समझता है कि उसके स्वर्गमे भी देवता नित्य आपसमे लड़ा करते है और एक दूसरेको मार कर भक्षण कर डालते हैं! बुशमेन लोग हत्या करना बड़े गर्वकी बात समझते है और इसलिए वे सदा ही पारस्पारिक मार काटमे लगे रहते है। इसीके सदृश वधून जातिक लोग—जो लड़ाईमे मरनेके अतिरिक्त अन्य हर तरहकी मौतको घृणाकी दृष्टिसे देखते है—सदा परस्परकी लड़ाईमे तल्लीन रहते है। और वगैण्डा लोग जो अपनी युद्ध-प्रवृत्तिके लिए मशहूर है, और जिनके बादशाहके एक अनुचरके पितृ-वधका वृत्तान्त हम पहले ही लिख चुके हैं—अनवरत लड़ाईमें लगे रहते है। उनका जीवन ही युद्धमय है।

सैनिकता और अन्याय। सैनिकता और प्रजातंत्रात्मक शासनमें विरोध।

बाहिरी लड़ाई दंगेकी मात्रा जितनी ही कम होती है आतरिक लड़ाई दंगा भी उतना ही कम होता है, आन्तरिक द्वेप और हिंसा भी उतनी ही कम होती है, न्यायपरता भी उतनी बढती है,—'जिसकी लाठी उसकी भैंस'की नीतिका पालन नहीं किया जाता और मनुष्योका अधिकार भी विस्तीर्ण होता है। असमानता कम होती है, सबके अधिकार समान माने जाते हैं और प्रजातंत्रात्मक शासनपद्धतिका जन्म होता है। व्यवसायी समाजमे ही शुद्ध और पूर्ण प्रजातंत्रकी प्राप्ति होती है। प्रजातन्त्रात्मक शासन और युद्धमें कितना बडा विरोध है इसका ज्वलत प्रमाण हालके महाभारतसे मिलता है। अनेक शताब्दियोमे असंख्यो वीर पुरुषोंकी यत्रणाओं और रक्तसे स्थापित योरोपके प्रजा-' और वहॉकी प्रजातंत्रात्मक सस्थाओं पर योरोपके युद्धवादी होनेका

कितना बड़ा आघात हुआ, यह सभी निरीक्षकों पर विदित है। योरोपकी गर्वित वैयक्तिक स्वतंत्रता और समानाधिकार लड़ाईके समय प्रायः अन्तर्धान हो गये थे। यह सभी निष्पक्ष लोग स्वीकार करेंगे कि *युद्धवाद और प्रजातंत्र एक साथ कदापि नहीं रह सकते। युद्धके परिणामके अनुसार प्रत्येक समाजमें असमानता, बलप्रयोग, अन्याय और अत्याचार भी अवश्य रहेंगे। युद्ध-वादके परिमाणके अनुसार वैयक्तिक स्वतंत्रता भी अवश्य कम होगी।*

हमारे इस सिद्धान्तका पोषण योरोपके इतिहास द्वारा पूर्णताके साथ होता है, कि *आन्तरिक शान्तिके लिए बाहिरी शांतिका स्थापन—युद्धका बन्द होना—परमावश्यक है।* आगे चल कर हम इस विषयमे कुछ अधिक लिखनेका प्रयत्न करेंगे। मध्य युगके योरोपका सामाजिक संगठन पूर्णतः सैनिक ढंगका था, अतएव इस युगका इतिहास लड़ाई, हिंसा, द्वेष, व्यभिचार इत्यादिका इतिहास है। दसवीं शताब्दीके सम्बन्धमें मार्टिनने लिखा है कि "इसे छल और कपटका ही युग समझना चाहिए। फ्यूडैलिज्म (Feudalism मनसवदारी प्रथा)के आदि कालसे मनुष्यका नैतिक स्वभाव इतना नीचे गिर गया था कि मनुष्यके इतिहासमे उसका जोड़ नहीं मिल सकता।" यह निर्विवाद है कि सैनिकताके घटनेसे ही योरोपकी उन्नति हुई है। मैं समझता हूँ कि यहाँ पर पाठक समरबद्ध योरोपकी ओर अवश्य इशारा करेंगे। मैं स्वीकार करता हूँ कि आजके सभ्य योरोपने जिस पशुता, निर्दयता और विकरालताका परिचय दिया है उसका भी जोड़ शायद सभ्य संसारके इतिहासमे नहीं पाया जासकता। परन्तु साथ ही साथ यह भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि योरोपकी सामाजिक बनावट इस समय मध्य युगसे कहीं भिन्न है।

शासकवर्गोंका चाहे जो विचार हो; परन्तु जन साधारणके हृदयमें युद्धको अब वह प्राधान्य प्राप्त नहीं है। व्यवहारमें चाहे जो कुछ हो, किन्तु कमसे कम सैद्धान्तिक रूपसे तो युद्ध निःसन्देह बुरा समझा जाता है। हालके महाभारतमें उभय पक्षके लोग यही कहते थे कि युद्धका अन्त करनेके लिए ही वे इस महायुद्धमे सम्मिलित हुए है (A war to end war)। यद्यपि आधुनिक समयमें भी बडी बड़ी लड़ाइयॉ हुई है तथापि अब युद्धका सर्व-व्यापी प्रभाव नहीं पड़ता है। सभी लोगोको सैनिक कामोंमें भाग नहीं लेना पड़ता है। सैन्यवादके साथ साथ व्यवसायवादका भी आविर्भाव हुआ है। युद्ध ही जीवनका एक मात्र काम नहीं रहा है। प्राचीन समयमे उस जन-समुदायका भी—जो सेनामें भरती होकर युद्ध नहीं करता था—प्रधान काम सैनिक संगठनके पोपण और उसको कायम रखनेका ही था। इस जन-समुदायका जीवन अपने लिए नहीं वरन् लड़ने-वाले समुदायके लिए था। सैनिकोके अतिरिक्त और किसीके जीव-नका कोई मूल्य ही नहीं था। उनके लिए किसीके हृदयमें—स्वय उनके अपने हृदयमें भी—कोई सम्मान न था। सैनिकोके प्रति उनकी कम या अधिक उपयोगिता या अनुपयोगिताके अनुसार ही उनके जीवनका दाम लगाया जाता था। परन्तु इसके विपरीत अव यह समझा जाता है कि समाजका सैनिक अंग व्ययसायी अंशकी रक्षा करनेके लिए ही जीवन धारण कर रहा है। क्या यह साधारण परिवर्तन है? अतएव शांति ही योरोपकी उन्नतिका कारण है और यह भी स्पष्ट है कि योरोपियन सभ्यतामे जो त्रुटि रह गई है—उसकी भौतिक सभ्यतामे जो काले धब्बे रह गये हैं—उसकी न्याय-बुद्धिके मधुरतम फल प्रजातत्र जो आज केवल विडम्बनामे परिणत हो गये हैं—इसका भी कारण उसका युद्धवाद ही है।

इतना ही नहीं, इतिहासके *अध्ययनसे यह भी पता लगता है कि बढ़ती हुई सैनिकताके साथ साथ मनुष्यों और जातियोंकी पशुता और निष्ठुरता भी बढ़ती जाती है।* इँग्लैण्डके इतिहाससे ही इसका उदाहरण देना अच्छा होगा। अँगरेज-समाजने योरोपके अन्य देशोंकी अपेक्षा कही पहले व्यवसायवादको ग्रहण किया था; परन्तु युद्धके लगातार बहुत समय तक चलते रहनेके कारण व्यवसायी इँग्लैण्डका सदाचार भी बहुत नीचे गिर गया। सन् १७७५ से १८१५ तक इँग्लैण्डमे एक बड़ी लड़ाई छिड़ी रही। उस समयका वृत्तान्त यों है कि किसीकी जान मालका कोई ठिकाना न था। यद्यपि साधारणसे साधारण बातोंके लिए भी कानून प्राण-दण्ड दिया करता था, तथापि सर्वत्र स्वेच्छाचारिता और अराजकता ही फैली हुई थी। परन्तु युद्धके बन्द होते ही हवा बदल गई, दण्ड-विधान भी बदल गया और अपराधो और दोषोंकी मात्रा भी एकदमसे कम हो गई।

सैनिक समाज और लूट पाट।

हम लोग अनुमान कर सकते है कि जब सैनिक समाजमें मनुष्योंकी जानकी ही परवाह नहीं की जाती तो उनके मालकी परवाह कहाँ तक की जा सकती है! युद्ध अर्थात् निरन्तर लूट पाटमे लगा हुआ मनुष्य चोरी और डकैतीको बुरा क्योकर समझ सकता है! उत्तरी योरोपकी प्रसिद्ध लडाकू जातियोके मध्य डकैती और जहाजी लूट पाट सम्मान और आदरकी दृष्टिसे देखी जाती थी। हम पहले ही कह चुके है कि टर्कोमैन प्रभृति कई जंगली जातियोके मध्य चोरोको बहुत बडा सम्मान प्राप्त है तथा लोग प्रसिद्ध प्रसिद्ध चोरोकी क़ब्रो पर जियारतके लिए जाया करते है। प्राचीन ग्रीसके सैनिक देशोमें अग्रगण्य स्पार्टामें चोरी किस दृष्टिसे देखी जाती थी, यह भी पहले बतलाया जा

चुका है । स्वयं इँग्लैण्डमें ही सौवर्षवाले बड़े युद्धके समय डकैतीका पूरा पूरा प्रादुर्भाव रहा था । लूट पाटका सर्वत्र साम्राज्य था । अकेले और असंगठित लुटेरोंके सिवाय डाकुओंके सुसंगठित जत्थे भी थे और उनके सरदार बड़े बड़े दुर्गाधिपति तक हुआ करते थे । डाकुओंका यह दल अपना समय भोग-विलासमें ही व्यतीत किया करता था । ये लोग बच्चोंको दास बनाने और स्त्रियोंको वेश्या बनानेके हेतु चुरा कर ले जाया करते थे और बहुतसा धन लेकर मुसाफिरोंको रास्तेसे पार करते थे। ३० वर्षकी लड़ाईमें जर्मनीकी अवस्था भी ठीक ऐसी ही हो गई थी । स्वयं सिपाही लोग ही लूटपाट किया करते थे । वे केवल डकैती ही नहीं करते थे, वरन् उनका धन गुप्त रूपसे कहाँ कहाँ रक्खा हुआ है, यह जाननेके लिए लोगोंको अनेक प्रकारकी पैशाचिक यन्त्रणायें देते थे । यंत्रणाओंको सहन न कर सकनेके कारण लोग मजबूरन उन्हें धन बतला दिया करते थे । शस्त्रोंसे पूर्णतः सुसज्जित होकर ही किसान लोग कृषि-कार्य्य कर सकते थे । अब जरा निरुपद्रवी समाजों पर दृष्टिपात कीजिए और देखिए कि उनके विचार और आचरण किस तरहके हैं । वेदा लोग यह अनुमान भी नहीं कर सकते कि कोई मनुष्य दूसरेकी वस्तु-का अपहरण क्योंकर कर सकता है । एस्किमा लोगोंके यहाँ लड़ाईका नामोनिशान भी नहीं है और उनके सम्बन्धमें लिखा गया है कि वे बड़े ईमानदार होते हैं । बेईमानीका अविर्भाव इन्हीं एस्किमो संमुदायोमें हुआ है जो श्वेतवर्ण योरोपियनोंके संसर्गमें आगये हैं । निऊ गैनाके दक्षिण किनारे पर बसनेवाली कुछ जातियोंके बारेमें लिखा है कि " इन लोगोंके परस्परके वर्तावमें बेईमानीका लेश भी नहीं है । सत्य-शीलतामें हम लोग भी इनकी बराबरी नहीं कर सकते । " इन ही जातियोंके सम्बन्धमें यह भी लिखा है कि वे लड़नेके लिए सर्वथा अयोग्य हैं ।

डोरीके रहने वाले सत्य और न्यायका पूर्णतः आदर करते है। चोरी उनके यहाँ वहुत वड़ा दोष माना जाता है और इत्तफाकसे ही कभी उनके यहाँ चोरीका नाम सुना जाता है। निरुपद्रवी टोड़ा, सान्थाल, लेपचा, वोडो, धीमल, हैास, चकमा, जाकून, सोरा, गोण्ड, खोण्ड, अराफुरा प्रभृति जातियोकी सत्यशीलता और शुद्धाचरण सब पर विख्यात है। आज कल जो इनमे असत् व्यवहारका किंचित् लेश पाया जाता है वह योरोपियनोके ससर्गकी ही वदौलत है। टोडा जातिके सम्बन्धमे एक लेखक कहता है—"मैने दूसरी कोई ऐसी जाति नहीं देखी कि जो परस्परकी वैयक्तिक सम्पत्तिका इतना आदर करती हो।" खोण्ड लोगोमे ऋणको अस्वीकार करना महान् पाप समझा जाता है। थोरूस जातिके लोगोंको जव कभी रक्षाके निमित्त पहाड़ोंपर भागना पड़ता है तो उन्हें जो कुछ ऋण देना होता है उसे वे कपड़ेमे वॉंध कर अपने घरके दरवाजो पर रख जाया करते हैं। हैास जातिके मध्य चोरी इतनी बुरी समझी जाती है कि जब किसी मनुष्य पर चोरीका सन्देह होता है तो वह अक्सर आत्महत्या कर डालता है। वर्माकी आदिम निवासी जातिके वारेमें भी यही लिखा है कि जब किसी मनुष्य पर किसी दुष्कर्मके करनेका अभियोग लगाया जाता है तो वह किसी निर्जन स्थानमे चला जाता है और वहॉं अपनी कब्र खोद कर फॉंसी लगा कर मर जाता है। पूर्णतः निरुपद्रवी अराफुरा जातिके मध्य धनवान् होना वड़े आदरकी वात समझी जाती हैं; परन्तु उनके यहॉं धनसंचयका अभिप्राय यही होता है कि अमीर लोग गरीबोका ऋण चुका दिया करे। उपर्युक्त सभी जातियोंके मध्य चोरीका प्रायः नाम भी नहीं सुना जाता और अपराधकी मात्रा प्रायः नहीं-के बराबर होती है। ये सभी लोग उदारहृदय, हॅसमुख, शाते-

प्रेमी और मिलनसार होते है। मजनसा जातिके एक मनुष्यने होलबसे कहा था—" जब हम लोग पशुओके रक्तके भी प्यासे नहीं है, तब मनुष्योका रक्त क्योकर बहा सकते हैं?" न्हेरा कुर्जके मूलनिवासियोंके बारेमे लिखा है कि ये लोग ईमानदार होते है और बहुत बड़े प्रलोभनके सामने आने पर भी चोरी नही करते। इस्क्यैस सघके बारेमे हम ऊपर ही कह चुके है।

सैनिक समाजोंकी नैतिक अवस्थाका दिग्दर्शन।

परन्तु जिन जातियोमे अनवरत युद्ध जारी रहता है उनकी अवस्था इनसे एकदम विपरीत है। सभ्य और असभ्य सभी जातियोका यह वृतान्त है। हमे रक्तप्रिय फीजियनोके सम्बन्धमे कहनेका इसके पहले कई दफा अवसर मिल चुका है। इनकी भीषण मारात्मकता विख्यात है। प्रखर द्वेषपरायणता इनकी रगोमे कूट कूट कर भरी है। असत्य भाषण, चोरी, डकैती, धोखेवाजी और हत्या इनके यहाँ अपराध नहीं, वरन् आदरकी वस्तुयें समझी जाती है। बच्चोकी हत्या तो इनके लिए खेल है। बीमारोको गला दबाकर मार डालना साधारण बात है। जीवित आदमियोको मार कर खा डालना भी साधारण घटना है। डहौमी जातिके राजाका भवन मनुष्यकी खोपड़ियोसे सुसज्जित किया जाता है और इन खोपड़ियोको प्राप्त करनके लिए लडाइयाँ छेड़ी जाती हैं। मृत राजाके पास परलोकमे संवाद पहुँचानेके लिए न जाने कितने मनुष्योका प्रतिवर्ष वध किया जाता है। मिथ्याचारी, रक्तपिपासु, निष्ठुर और निर्दय होनेके कारण इनमे कृतज्ञता और महानुभूतिका लेश भी नहीं है। परस्परके सम्बन्धके बारेमे तो कुछ कहना ही व्यर्थ है—पति पत्नी, माता पिता और सन्तानके सम्बन्धमें भी स्नेहका फीका सा भी प्रतिबिम्ब नही दिखलाई देता।

हमारी जातिका मनुष्य अपनी जातिके किसी मनुष्यको वन्य पशुओं द्वारा भाग जाता हुआ देख कर हँसता है। केवल असभ्य जातियोंकी ही ऐसी अवस्था नहीं है, किन्तु सभ्य समझी जानेवाली जातियोंका भी यही वृतान्त है। मेक्सिकन लोगोंके रक्तपिपासु देवता और उनके नर-बलिदान मशहूर हैं। देवताओंकी तृप्तिके लिए तुरत वध किये गये मनुष्यका कम्पायमान हृदय उनके मुखमें डाल दिया जाता था, जीवित मनुष्योंकी खाल खींच ली जाती थी और उसे पहिन कर पुरोहितगण नृत्य किया करते थे। प्राचीन असीरियाकी शिलामूर्तियोंके देखनेसे विदित होता है कि असीरियन लोग किस प्रकार कैदियोंके अंग काटा करते थे। प्राचीन मिश्रकी शिलामूर्तियोंके अनुसार द्वितीय रैमसेस छः कैदियोंकी शिखा पकड़े हुए तथा एक ही वारमें खड्गसे इन सभोंके सिरको धड़से जुदा करते हुए नजर आता है। मध्य युगके धार्मिक अत्याचारों, इन्क्वीजीशनकी करतूतों, तथा उस समयकी पैशाचिक यत्रणा देनेकी सामग्रियों और औजारोंसे सभी परिचित हैं। प्राचीन रोमन लोग अखाड़ोंमें बाघ या अन्य हिंस्र पशुओं और कैदी मनुष्योंका दंगल कराया करते थे और इस तमाशेको—हिंस्र पशुओं द्वारा मनुष्यके शरीरके विदीर्ण किये जानेको—रोमन समाजके सभी श्रेणीके लोग—यहाँ तक कि महिलायें भी, बड़े आल्हादसे देखा करती थीं।

सैनिक और व्यवसायी समाजोंमें स्त्रियोंका स्थान।

यदि समाजमें स्त्रियोंका उच्चस्थान नैतिक उन्नतिका एक चिह्न माना जाय तो व्यवसायी और सैनिक समाजोंके अवलोकनसे यह सिद्ध होता है कि सैनिक समाजोंकी अपेक्षा व्यवसायी समाजोंमें स्त्रियोंको अधिक सम्मान प्राप्त है। प्रमाणके लिए हमें विशेष कर असभ्य समाजों पर ही दृष्टिपात करना होगा, क्योंकि कोई सभ्य

समाज हमे पूर्णतया व्यवसायी या पूर्णतः सैनिक देखनेमे नहीं आता। प्राय प्रत्येक सभ्य समाजमे इन दोनो बातोका समावेश पाया जाता है। स्त्रियोकी हीनावस्थाका किंचित् निदर्शन अन्यत्र किया जा चुका है; प्रसगवश यहॉ पर भी कुछ उदाहरण दिये जाते है। बलात् अपहरण की गई, बात बात पर मार खानेवाली, सभी परिश्रमसाध्य कामोको करनेवाली, केवल पुरुषोकी जूठनसे ही उदर-पूर्ति करनेवाली अवलाओंकी दशा सैनिक समाजोमें सचमुच ही शोचनीय होती है। इसपर भी उन्हे बच्चे जनना पडता है और दूध पिलाना पडता है। कठिन परिश्रम करने और पूर्ण आहार न प्राप्त करनेके कारण अनेक जंगली जातियोके मध्य पुरुष ही स्त्रियोसे अधिक सुन्दर होते है और कुरूपता और असुन्दरतामे स्त्रियाँ पुरुषोंसे कहीं बढी चढी होती है। किसी भी अंशमे उनका भाग्य पालतू पशुओसे श्रेष्ठ नहीं होता। इस सम्बन्धमे एक काफिर मनुष्यके निम्नलिखित वाक्योका उल्लेख ही पर्य्याप्त होगा—"पत्नी अपने पतिका बैल है। वह खरीदी गई है और इस लिए उसे परिश्रम करना ही होगा।" काफिर मनुष्य जब अपनी स्त्रीका वध करता है तो कहता है कि मेरी स्त्री मेरी खरीदी हुई सम्पात्ति है और उसपर मुझे सब तरहके अधिकार प्राप्त है। असभ्य समाजोमे स्त्रियोका खरीदा और बेचा जाना एक साधारण बात है। इसका उल्लेख पहले भी किया जा चुका है। किसी मनुष्यके मरने पर उसका उत्तराधिकारी उसकी अन्य सम्पात्तियोके साथ साथ उसकी स्त्रियोका भी स्वामी बन जाता है। बहुत उदाहरण न देकर रक्त-पिपासु फीजियनोका नाम ले देना ही काफी होगा जो अक्सर अपनी पत्नियोको मार कर खा जाते है। परन्तु जब हम शान्त, निरुपद्रव और व्यवसायी समाजो पर दृष्टिपात करते हैं तो हमे स्त्रियोंके भाग्यमे

बहुत बड़ा रूपान्तर दिखलाई पड़ता है। टोडा जातिमे स्त्रियोंको कठिन परिश्रम नहीं करना पडता, यहाँ तक कि जल और लकड़ी लानेके लिए भी वे बाहर नहीं जातीं। बोडो और धीमल जातियोंमे स्त्रियोंको घरके बाहरका कोई काम नहीं करना पड़ता। मननसा, हौस प्यूब्लैस प्रभृति जातियोमे स्त्रियोको बड़ा सम्मान प्राप्त है।

सैनिकता और लैंगिक स्वच्छता

यद्यपि पूर्णतः व्यवसायी समाजोंमें भी किंचित् विशृंखल लैंगिक सम्बन्ध पाया जाता है, तथापि यह स्वीकार करना पड़ेगा कि व्यवसायी समाजोंमे ही लैंगिक स्वच्छताकी मात्रा अधिक पाई जाती है। हम अभी देख चुके है कि सैनिक समाजोमें स्त्रियोंकी अवस्था कैसी शोचनीय है और इससे हम स्वभावतः अनुमान कर सकते है कि जब स्त्रियाँ मनुष्य जातिसे बाहर अनुमान की जाती हैं तो उनके सतीत्वकी कहाँ तक परवाह की जाती होगी। निरन्तर युद्धमे लगी रहनेवाली जातियोमे—जहाँ स्त्रियोंको ही सारे परिश्रम-साध्य काम करने पडते है, जहाँ स्त्रियाँ लूटकी सम्पत्ति समझी जाती हैं और जिनके ऊपर उनके स्वामियोका पूर्ण अधिकार स्वीकार किया जाता है, जहाँ गाय बैलोके सदृश उनकी खरीद बिक्री हुआ करती है, जहाँ स्त्रियोकी चोरी होती है या वे गिरफ्तार करके लाई जाती हैं, जहाँ स्त्रियोको कोई व्यक्तित्व प्राप्त नहीं है—स्त्रियाँ कहाँ तक पुरुषोंके कामाघातसे बचती होंगी, यह आसानीसे अनुमान किया जा सकता है। युद्धवादी समाजोंके मध्य स्त्रीके सतीत्वका अनुमान करनेके लिए हमे बड़े बड़े राजाओ और बादशाहोंकी असंख्य पत्नियो और हरमोका स्मरण करना चाहिए, एक एक राजाकी सौ सौ और दो दो सौ पत्नियोका स्मरण करना चाहिए, उन लोगोंकी असंख्यो रखेलिनियोका स्मरण करना चाहिए तथा

स्त्रियोंके सम्बन्धमे लोगोंके अपमानसूचक, घृणाजनक और अश्लील विचारोंका स्मरण करना चाहिए। यदि सैनिक समाजोंकी स्त्रियोमे कुछ सतीत्व पाया भी जाय, तो भी उनके पुरुषोंमें तो लैंगिक आचार कदापि अच्छा नहीं पाया जा सकता। याद रहे कि लैंगिक स्वच्छता गुलामी-के वायुमण्डलमें—ऐसे समाजमे कि जहाँ स्त्रियाँ मानवतासे वाहर समझी जाती है—जहाँ वे केवल मनुष्योंके क्रीडाकी वस्तु या बच्चोंके प्रसव करनेका यंत्र समझी जाती है—पदार्पण नहीं कर सकती। प्रेम-शून्य वायुमण्डलमें—कामाग्निसे गर्म हुई हवामे—स्त्रियोंकी गुलामीकी वायुमें—शुद्ध लैंगिक सम्बन्ध कदापि उपलब्ध नहीं हो सकता। जब हम यह स्मरण करेंगे कि रोमके भयानक भ्रष्टाचारका आरम्भ रोमन देश-विजयोंके वाद ही हुआ था, जब हम यह स्मरण करेंगे कि युद्धवादी रूसमे प्रत्येक लड़कीपर हालतक उसके जमीनदारका पूर्ण अधिकार हुआ करता था, जब हम लडाकू, मनसवदारीप्रधान (Feudal) यूरोपकी भ्रष्टताका स्मरण करेंगे, जब हम यह स्मरण करेंगे कि एक पुरुषके एक साथ वहुविवाह करनेकी प्रथा युद्धवादी-समाजका ही चिह्न है, तो हमे कहना पड़ेगा कि इस तरहके समाजोंमें लैंगिक स्वच्छताका पूर्ण रूपसे रहना असम्भव है और यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि जाति-हितके लिए, देश-हितके लिए तथा मानव-हितके लिए यह कितनी आवश्यक है।

सैनिक समाजोंका पारिवारिक जीवन

इसी कारण सैनिक समाजका पारिवारिक जीवन निकृष्ट दर्जेका होता है। यदि यह सच है कि सहृदयता, स्नेह, सहिष्णुता और समवेदनाका प्राथमिक पाठ हमें पारिवारसे ही मिलता है तो यह स्पष्ट ही है कि उन्नतिके लिए उच्च पारिवा-रिक जीवन परमावश्यक है। परन्तु कठोर और हिमवत्

सर्द सैनिकता पारिवारिक मृदु ताप और उच्छ्वासको दूर करती है-स्नेह और सहिष्णताकी मृदुलताको कोसों भगाती है। सैनिक समाज-के पारिवारिक जीवनमें भी उसके राजनैतिक जीवनके ही समान कठो-रता और बल-प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है। इसका कारण भी स्पष्ट ही है। सदा लड़ाई भिडाईमें लगे रहनेसे, सदा शत्रुताके भावको हृदयमें जगह देनेसे तथा उसे मजबूत करनेसे, विजयके आल्हादोंसे, सदा दूसरोंको दुःख देनेसे, सहृदयताके भावोंपर पाला पड जाता है, जिस-का प्रभाव केवल मनुष्यके राजनैतिक या सामाजिक जीवन पर ही नहीं, वरन् पारिवारिक जीवन पर भी पडता है। इसीलिए हम देखते हैं कि सैनिक समाजमें अपनी पत्नी और पुत्र पुत्रियोंके साथ भी मनुष्य-के आचरण बड़े कठोर होते हैं। इसीलिए हम देखते है कि सैनिक समाजोंमें स्त्रियोंकी दशा एकदम शोचनीय होती है जिसे हम ऊपर वर्णन कर आये है। इसीलिए हम देखते हैं कि उनके यहाँ पारिवारिक सुख और शांतिका नाम और निशान भी नहीं है। इसीलिए हम देखते हैं कि सैनिक समाजोंमे पुरुष अपनी स्त्रियों और पुत्र पुत्रियोका पूर्ण स्वा-मी अनुमान किया जाता है और उसे उन्हें जीती रखने या मार डालनेका पूर्ण अधिकार प्राप्त है। इसी लिए हम देखते है कि आस्ट्रेलियन पुरुष अकसर अपने बच्चोको बेच डालते हैं और अकसर उनके मास और चर्बीसे अपनी बंसियोंको गूँधकर मछलियाँ फँसाते हैं, जरासे साधारण दोष पर अपने बच्चोंका वध कर डालते हैं; सिर्फ एक बोतल ब्राण्डीके लिए अपने पुत्र पुत्रियों और पत्नियोको दूसरोंके हाथ बेच डालते हैं। इसीलिए हम देखते हैं कि सैनिक समाजोंमे पितापुत्रका सम्बन्ध पशुओंके इस सम्बन्धसे किसी भी प्रकार ऊँचा नही होता। इसी लिए हम देखते हैं कि सैनिक समाजोंमें वृद्ध और रोगग्रस्त लोगोंकी

हत्या की जाती है, या वे मरनेके लिए घरसे निकाल दिये जाते हैं और अकेले छोड़ दिये जाते हैं। पूर्वके अध्यायोमे जगली जातियोका जो वर्णन दिया गया है उससे सैनिक समाजोंके पारिवारिक जीवन-का पता अच्छी तरह लग जाता है। शातिके स्थापित होनेसे ही मनुष्यके उच्चजीवनका आरम्भ होता है, शातिके स्थापित हो जानेसे ही मनुष्यका अधिकार वढता है और मनुष्य मनुष्य वनता है। असभ्य निरुपद्रव जातियोका पारिवारिक जीवन असभ्य लड़ाकू जातियोसे और सभ्य निरुपद्रव जातियोका पारिवारिक जीवन सभ्य लड़ाकू जातियोके पारिवारिक जीवनसे कही ऊँचा होता है। वोडो और धीमल जातियोके सम्वन्धमें लिखा है कि उनके यहाँ वालहत्याका पूर्ण अभाव है, पुत्रियोके साथ भी सहानुभूति-मय वर्ताव किया जाता है और वूढे वाप-मॉका परित्याग करना उनके यहाँ शर्मकी वात समझी जाती है। अन्य असभ्य निरुपद्रव जातियोंका भी यही वृत्तान्त है। यदि हम सभ्य सैनिक समाजोंका वृत्तान्त जानना चाहते है तो इसके लिए रोमन समाजमे स्त्रियो और पुत्र पुत्रियोंका स्थान और तत्सम्बन्धी रोमन कानूनकी ओर इशारा कर देना ही काफी होगा।

सैनिक समाजोंकी कला और कविता।

यदि हम यह मानें कि मनुष्यका जीवन केवल वाह्य और शारीरिक ही नहीं है, वरन् कहीं अधिक अस्थूल, आन्तरिक और अध्यात्मिक है, तो हमे स्वीकार करना पड़ेगा कि मनुष्यके जीवनमे शिल्प, कला, कविता इत्यादिको भी वहुत वड़ा स्थान प्राप्त है। वास्तवमे मनुष्यकी उन्नति और विकासके परिचायक यही है। परन्तु युद्धवादी समाजमे इनकी उन्नति नहीं हो सकती। सहृदयता ही इनकी मूल भित्ति है और युद्धवाद सहृदयताका मूलोच्छेद करता है। व्यवसायी और युद्ध-

वादी मनुष्योके स्वभाव और आचरणमे जो अन्तर है वही अन्तर इन दोनो तरहके समाजोकी कला, शिल्प और कवितामें भी देख पड़ता है।

सभी ललित कलाओं और कविताओं इत्यादिका मूल विषय मनुष्यका शोक और हर्ष तथा आनन्द और दुःख ही है और इनके रसास्वादनके लिए समवेदना और सहानुभूतिकी परम आवश्यकता है। परन्तु युद्धवादी लोगों और जनसमुदायोंमें इसका अभाव है और इसलिए इनका समझना उनके लिए दुःसाध्य है। इसी लिए हमे प्राचीन और आधुनिक समयकी कविताओमें इतना अन्तर दृष्टिगोचर होता है। प्राचीन कविताओंका प्रधान विपय युद्ध तथा राजाओ और कुलीनोके कृत्योके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। इन कविताओ और महाकाव्योंमे प्रधानतः युद्धहीका—किसी विजेताद्वारा असंख्यों मनुष्योके वध किये जानेका—ही वर्णन है। इनमें नीच कुलोत्पन्नो, विजितो, साधारण मनुष्योको कोई स्थान प्राप्त नहीं है। प्रातःकाल अपने बैलोंको लेकर किसानोका अपने खेतोपर जाना, सन्ध्याके समय जानवरोंको लेकर चरवाहोका वापस आना, धान रोपते समय स्त्रियोंका मधुर गान करना, प्रकृतिकी अनुकूलता तथा अनाजकी अच्छी उपजको देखकर किसानोका पुलकित होना, देहाती मनुष्योका सादा और भोला जीवन,—इन सबके द्वारा प्राचीन कवियोके हृदय-सागरमें छोटीसे छोटी विचार तरग भी नही समुत्थित होती। उनकी सहानुभूति परिमित और सीमाबद्ध है। उनके हृदयमे तुच्छ और छोटेके लिए कोई स्थान नहीं है। उनकी सारी सहृदयता बलवानो और विजेताओहीके पक्षम है, दुर्बलों और अनाथोंके पक्षमे तनिक भी नही। उनकी न्यायबुद्धि उन्हें अत्याचार और अन्यायके रोकनेके लिए—दुर्बलो और उपप्लावितोकी रक्षाके लिए बद्ध-परिकर होनेको उत्तेजित नही

करती। उनके लिए साधारण मनुष्योका जीवन कोई जीवन ही नहीं है। उनकी छोटी छोटी अभिलापा और आकाक्षायें, उनके साधारण भाव और विचार, उनके मामूली हर्प और विपाद, उनके तुच्छ गर्व और अभिमान, उनकी भोलीभाली चलाकी और चतुरता, उनके कपट-रहित चरित्र और कृत्रिमतारहित स्वभावको सैनिक समाजके विपयोके समीप कोई महत्त्व प्राप्त नहीं है। सक्षेपमे वे अँगरेजीके विख्यात कवि वर्डस्वर्थके साथ यह नहीं कह सकते कि—

" To me the meanest flower that belows
Can give thoughts that aften lie to deep for tears"

अर्थात् एक क्षुद्रसे क्षुद्र कलिका भी मेरे हृदयमे भावकी तरंगे भेजती है कि जिन्हे भाषा द्वारा तो क्या आँसुओ द्वारा भी व्यक्त करना असम्भव है।

एक आवश्यक सूचना।

इस अध्यायको समाप्त करनेके पूर्व इतना कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि सैनिक और व्यवसायी समाजोकी जो अलोचना की गई है वह केवल सैद्धान्तिक रूपसे की गई है। वर्तमान समयमे—विशेप कर असभ्य ससारमे हमे विशुद्ध सैनिक या व्यवसायी समाज दृष्टिगोचर नहीं होते। आधुनिक समाजोमे सैनिकता और व्यवसाय दोनोकी मात्रा देख पड़ती है, इसीलिए हमने अपने सिद्धान्तके पुष्टीकरणके लिए विशेष कर जंगली जातियोसे ही उदाहरण दिये हैं। परन्तु निष्पक्ष निरीक्षण-से सनिकता और सदाचारके मध्य कार्य कारणका जो सिलसिला दृष्टि-गाचर होता है वह प्रत्येक समाजमे, उसके व्यवसायी या सैनिक होनेके परिमाणके अनुसार, अवश्य घटित होगा। यदि समाज अपेक्षाकृत अधिक व्यवसायी है तो उसका सदाचार भी ऊँचे दर्जेका होगा और

यदि वह अपेक्षातः अधिक सैनिक है तो उसमें सैनिकताके कुपरिणाम उसकी सैनिकताकी मात्राके अनुसार अवश्य दृष्टिगोचर होंगे।

शांतिकी आवश्यकता और युद्ध-वाद पर हृदयके कुछ उद्गार।

युद्ध एक बहुत बडा अभिशाप है। यह हमारी उन्नतिके पथका हिमाचल है। यह मनुष्यके भाग्याकाशका राहु है। ससारकी सारी वर्तमान उन्नति शातिका ही फल है। शातिके द्वारा ही हमे विचार और मनन करनेका समय प्राप्त हुआ है। शातिने ही हमे ज्ञान और विज्ञान सिखलाया है। युद्ध मानव विकासका बहुत बडा शत्रु है। युद्ध दासताका जनक है और विकासके लिए स्वतंत्रताकी आवश्यकता है। युद्धके कारण मनुष्यको अपने स्वभाव और प्रकृत झुकावके अनुसार बढने और फलनेका अवसर प्राप्त नहीं होता। इसीके कारण ससारमें धर्मका साम्राज्य नहीं होने पाता। युद्धके द्वारा अन्य समाजोको तो पराजित किया जाता ही है—अन्य लोगोको तो दास और गुलाम बनाया जाता ही है—किन्तु स्वय विजयी समाजमे भी लोगोंकी स्वतत्रताका अपहरण होता है—लोगोको गुलामी करनी पड़ती है। प्रजातंत्रात्मक शासन और युद्धवादमें स्वाभाविक विरोध है। युद्धवादी समाज प्रजातत्रात्मक कदापि नहीं हो सकता। यदि आप इसका प्रमाण चाहते हो तो एक बार स्मरण कीजिए कि हालहीके महायुद्धमे प्रजातंत्रोंमे अग्रगण्य इंग्लैण्डकी ही वैयक्तिक स्वतत्रता पर कितना बड़ा आघात हुआ था, लोगोंके अधिकार कहाँ तक छिन गये थे और गवर्नमेण्ट तथा राजकर्मचारियोंकी शक्ति कहाँ तक बढ गई थी। राजनीतिशास्त्रमे आजकल यह निस्सन्देह माना जाता है कि प्रजातत्रात्मक शासन ही सर्वोत्तम शासन है। इसीके द्वारा मानव चरित्र और स्वभावकी पूर्ण उन्नति हो सकती है। उन्नतिके लिए प्रजातंत्रात्मक शासन

ही सबसे अधिक अनुकूल है। परन्तु यूरोपके अधूरे प्रजातंत्र अकुण्ठित कण्ठसे, गला फाड़ फाड़ कर, चिल्ला रहे हैं कि जबतक युद्धवाद विद्यमान है तबतक ससारमें शुद्ध प्रजातंत्रात्मक शासन पदार्पण नहीं कर सकता।

अतएव युद्ध एक भयानक अरिष्ट है। यह हमारी मनुष्यता पर कलकका अत्यन्त ही काला धब्बा है। ज्ञानयुक्त बुद्धियुक्त मनुष्योंको पशुओके सदृश लड़ना शोभा नहीं देता। *वास्तवमें युद्ध पशुताका ही दूसरा नाम है। इसका उद्गम-स्थान वही प्रवृत्ति है जो एक कुत्तेको किसी दूसरे कुत्तेको देख कर उसके साथ लड़नेके लिए उत्तेजित करती है।* चाहे हम इसका कितना ही अच्छा नामकरण कर ले, युद्ध करनेको हम वीरता शूरता या चाहे जो कुछ भी क्यों न कहे; परन्तु युद्ध युद्ध ही है। युद्ध करनेवाले अपनेको देशविजेता, प्रचण्ड वीर इत्यादि चाहे जो कुछ कहें, किन्तु वास्तवमे वे रक्तपिपासु, हिंस्र जन्तु ही हैं। उनके नामोके पीछे महान् या अन्य कितने ही बड़े बड़े सम्मानसूचक शब्द क्यो न जोड़ दिये जायँ, यथार्थमें वे अन्यायी और अत्याचारी लुटेरे डाकू या हत्यारे ही है। यदि अन्तर कुछ है तो केवल इतना ही कि वे बहुत बड़े हत्यारे, बहुत बड़े अत्याचारी, तथा बहुत बड़े लुटेरे है। युद्ध चाहे ज्ञानशून्य पशुओ या असभ्य जंगलियो द्वारा किया जाय, चाहे सभ्य मनुष्यो द्वारा किया जाय—उसमे सर्वत्र समान भीषणता दृष्टिगोचर होती है। मिथ्याचारी जंगलियोमें और मिथ्याचारी कुटिल और दाम्भिक राजनीतिज्ञोमे क्या अन्तर है? छल और पाषण्डसे काम लेनेवाले रेड इण्डियनोमे तथा कपटकुशल राजकर्मचारियोंमे कौनसा भेद है? यदि कोई भेद हो सकता है तो केवल यही कि जंगलियोके छल और पाषण्ड सीधे और सुबोध होते

हैं, किन्तु राजनीतिज्ञोंके अस्पष्ट, दुर्बोध और जटिल होते हैं। राजनीतज्ञ अपने भावों और विचारोंको छिपा रख सकते हैं, उनपर आदर्श-वादका आवरण डाल सकते है और सहज ही विद्वानसे विद्वान् पुरुपोंकी आँखोंमें भी धूल डाल सकते हैं। आजके सेनापतियो तथा नरमास-भोजी फीजियनोंमें क्या अन्तर है ? कुछ नहीं। यदि है तो यही कि वे विजितोंको तुरत खा-जाते है, किन्तु सभ्य देशोंके सेनापति और राज-नीतिज्ञ उन्हे जानसे न मारकर अपने आरामके लिए छोड़ देते है और धीरे धीरे उनका खून चूसते है। नेपोलियनकी कब्रको लक्ष्य करके कही गई कर्नल इंगरसौलकी निम्नलिखित वाते याद रखने योग्य है।

"थोड़े दिन हुए मैं नेपोलियनकी कब्र—सुवर्णमय अपराध और पापके अद्भुत स्मारक-के समीप खड़ा था। संगमूसासे बने हुए इस देदीप्यमान समाधिमन्दिरको देख देख कर मै उस व्यग्र और उग्र मनुष्यका स्मरण कर रहा था कि जिसकी अन्तिम भस्म कब्रकी अविश्रान्त शातिमे इस समय आरामसे विश्राम कर रही है। उसकी कब्रकी स्तभ-पंक्तिके एक स्तंभके सहारे मैं खड़ा हो गया। मैंने उसे नील नदीके तट पर खिन्न-हृदय आत्म-हत्याका संकल्प किये हुए देखा। तत्पश्चात् मैंने उसे इटैलीका सेनापति पाया। त्रिवर्ण झंडेको हाथमें लिये हुए मैंने उसे लोदीके पुलको पार होते हुए देखा। इसके बाद मैंने उसे मिश्रके विराट् स्तूपोंकी छांया तले देखा। मैंने उसे अगम्य और दुर्जय आल्पस पर्वतपर विजय प्राप्त करते तथा फ्रासके खगांकित झण्डेके खगोंको और पहाड़के वास्तविक खगोको एक साथ मिलाते देखा। मैंने उसे मैरेंगो, आल्पस और औस्टरलिजमे देखा। मैंने उसे रूसमें देखा जहाँ कि बर्फके पैदलों और कपकपी पैदा करनेवाले झंझानि-लके घुड़सवाररूपी झोकोंने उसकी असंख्य सेनाको जाड़के दिनोंमें

वृक्षसे गिरे हुए पत्तोंके समान इधर उधर तितिर बितिर कर दिया था। मैंने उसे लीफैसीकमे पराजय और दुर्भाग्यका शिकार होते देखा और असंख्य सेनासे परास्त होकर उसे पेरिसमें पनाह लेते हुए और एल्बामे निर्वासित होते हुए देखा। मैंने उसे वहाँसे भागते हुए तथा केवल अपनी दिव्य शक्तिके बलसे एक साम्राज्यको उपार्जन करते हुए देखा। मैंने वाटरलूके भीषण और मारात्मक युद्ध-क्षेत्रको भी देखा, जहाँ कि दैव और भाग्यने मिलकर उसका सर्वनाश किया था। तत्पश्चात् मैंने उसे सेण्ट हेलनामे बन्दी और अपने हाथोंको पीठके नीचे जोड़े हुए एवं मौन और शोकान्वित अवस्थामे समुद्रको निहारते हुए देखा। तब मुझे उसके हाथो विधवा बनाई गई स्त्रियो और अनाथ बनाये गये बच्चोका खयाल आया। मुझे उन आँसुओंका स्मरण हो आया कि जिनके बहाये जानेका एक मात्र कारण उसकी कीर्ति-स्पृहा ही थी। मुझे उस स्त्रीका स्मरण हो आया कि जिसके सिवा अन्य कोई स्त्री उसे प्राणपणसे प्यार न करती थी और ऐश्वर्य्याकाक्षाके कठोर हाथोंने जिसे उसके हृदयसे विलग कर दिया था। मैंने अपने हृदयसे कहा—फ्रासीसी किसान होना और काठके जूते पहरना कहीं अच्छा है! राज्यप्रासादमे रहनेसे उस झोपड़ीमे रहना कहीं अच्छा है कि जिसके द्वारपर अगूरकी लता लगी हो और जहाँ शारदीय सूर्य्यके चुम्बनसे अगूर लाल हो रहे हो! एक साधारण किसान होकर रहना कि जिसकी स्त्री सुबहसे शाम तक चरखा कातती हो जिसके बच्चे उसकी गोदमे बैठे हो या गलेमे बाँह डाले हो—कहीं अच्छा है! मै एक साधारण किसान होना ही पसन्द करूँगा और गंभीर विस्मृतिकी गहरी तलीमे—कब्रके जिह्वा-रहित सन्नाटेमे—डूबना पसन्द करूँगा, किन्तु बल और हत्याका मूर्तिमान स्वरूप—महान् नेपोलियन होना कदापि नही। मै दसहजार बार कहता हूँ कि मेरी इच्छा यही है।"

सातवाँ अध्याय ।

सदाचारकी उत्पत्ति और उसकी आवश्यकता ।

प्रकृति कम जीवनोंके स्थान पर अधिक जीवन स्थापित करना चाहती है ।

प्राणिशास्त्रके अध्ययन करनेसे, जीवो और जातियोके इतिहासके अवलोकन करनेसे और सारे ससारपर दृष्टिपात करनेसे, यह पूर्णतः सिद्ध होता है कि *प्रकृति जीवनोंकी संख्याको अधिक करना चाहती है, अर्थात् एक प्राणीके स्थान पर वह अनेक प्राणियोंकी उत्पत्ति करना चाहती है* । साथ ही साथ यह भी विदित होता है कि सिर्फ प्राणियोकी गिनती और संख्याके वढानेसे ही प्रकृतिकी सतुष्टि नहि होती, वरन् *वह नीच श्रेणीके जीवोंसे उच्च श्रेणीके जीवोंको—सदाचारविहीन जीवों और जातियोंकी अपेक्षा सदाचारयुक्त जीवों और जातियोंको अधिक प्यार करती है* । इसीलिए उसने जीवन-प्रतिवादिता (Struggle for existence) के नियमको व्याप्त किया है ।

जनन-प्रवृत्ति ।

अब यदि हम संसारके सभी प्रकारके जीवो पर नज़र डाले तो हमे यह निर्विवाद माऌम हो जायगा कि *प्रत्येक जीवमें अपने वंशके कायम रखनेकी अदमनीय इच्छा है* । स्वभावसे ही प्रत्येक जीव अपनी संख्याको वढाना चाहता है । *इसी सर्व-व्यापिनी प्रवृत्तिसे सदाचारकी उत्पत्ति हुई*

है। वृक्षोके वशको कायम रखनेके लिए प्रकृतिका क्या प्रवंध है ! चैतन्य जीवनके इतिहास पर दृष्टि डालनेसे मालूम होता है कि प्रथम कलल कण (the first animal cell) ने अपनेको जो दो अशोंमें विभक्त किया, सो भी नीति (morality) ही की प्रेरणासे किया । निःस्वार्थताका आभास हमे यहींसे मिलने लगता है ।

अति सूक्ष्म प्रोटोजोआ (माइक्रोस्कोप या अणुवीक्षण यत्रसे नज़र आनेवाले जीव) निरन्तर आपसे आप अपनेको दो भागोमे विभक्त करते रहते है। सिर्फ कई घण्टोंके स्वतत्र जीवनके पश्चात् , इनमेसे प्रत्येकका दो जीवोको उत्पन्न करनेके लिए बलि प्रदान होता रहता है। बाज़ दफा तो इनका सारा शरीर ही एकदमसे छितरा जाता है और इनके शरीरसे अनेको नये जीवोकी सृष्टि होती है। पौलीगैस्ट्रिक ऐनिमैलक्यूल्स इतनी शीघ्रताके साथ वढते है कि प्रो० एहरेनवर्गके गणनानुसार एक महीनेमे इनकी सतति २६ करोड़ ५० लाख हो सकती है ! इनहीं जीवोकी एक अन्य उपजातिकी वृद्धि तो हमे कल्पनातीत ही मालूम होती है। चार दिनमे उक्त जातिके जीवोकी सख्या १७,००,०००,०००,०००,००० पर पहुँच जाती है। डाक्टर एडवर्ड क्लीनके अन्वेषणके अनुसार २४ घण्टेमे २४६ वैक्टीरियाओके २०,०००,००० सन्तान होते है । इस हिसाबसे सिर्फ एक ही बैक्टीरियाके तीन दिनमे ५३१७, ३६७,७९७, ०००, ००० सन्तान होगे। जीवधारियोके शरीरके मध्य निवास करनेवाले क्रमि (cestoid entozoa) की वशवृद्धि बिल्कुल ही विचित्र है। पूर्वके किसी क्रमिके हजारों अण्डोमेसे किसी एकसे इसकी उत्पत्ति हुई है। परन्तु इसको भी कोई स्वतत्र जीवन प्राप्त नहीं है। इसके शरीरको असख्यो अण्डोकी थैली मात्र समझना चाहिए। न तो इस क्रमिके कोई अंग हैं, न इसमे

चेतना शक्ति है, न इसको शरीरपोषणके अवयव ही प्राप्त हैं । इस प्रकार इसका जीवन वनस्पति-जीवनसे किसी भी प्रकार ऊँचा नहीं है। ज्यों ही इसके शरीरके अण्डे तैयार हो जाते हैं त्यो ही इसकी मृत्यु हो जाती है। एनटोजोआ जातिकी अन्य उपजातियो तथा आर्टिकुलेटा जातिकी कुछ उपजातियोंकी भी ऐसी ही अवस्था है। अधिक उदाहरणोको देकर पाठकोंको कष्ट देना उचित नही प्रतीत होता। जातीय जीवनको कायम रखनेके लिए वैयक्तिक जीवनका किस प्रकार वलिप्रदान होता है, पाठकोंको इसके अधिक प्रमाण और उदाहरण स्पेन्सरके 'प्रिंसप्लस आफ वायलोजी' मे मिलेगे * ।

हम उन वनस्पतियो और कीटोंके सम्बन्धमे क्या कहेगे जो इस वंश-वृद्धि कार्यके सम्पादन करनेके साथ ही अपना प्राण त्याग करते हैं। शायद इसी कार्यके लिए ही वे जीवन धारण कर रहे थे । बाज़ हालतोंमे समागमके पश्चात् मादासे अलग होते ही नर अपनी जान खो देता है। डारविनने लिखा है कि समागमके पश्चात् टोड (एक प्रकारके वेग) की मादाये अक्सर निष्प्राण हो जाती है + । कोचीनियेल × की मादा अपनेको इतने अण्डोसे भर लेती है कि उसे जीवनसे ही हाथ धो लेना पड़ता है और अण्डोकी रक्षाके लिए उसका मृतक शरीर थैलीका काम देता है। सिर्फ कीड़ोंमे ही क्यों, कुछ उच्च श्रेणीके जीवों-

---

* See Principles of Biology vol. II part VI chh. I. VIII and Ibe Vol I App. A

+ Descent of Man P. 227.

× कोचीनियल—किरमिज। एक प्रकारका कीड़ा है। इसकी मादासे बहुत सुर्ख और अत्यन्त चमकदार रग प्राप्त होता है। अमेरिका जावा प्रभृति देशोंमे यह बहुतायतसे पाया जाता है। जिस प्रकार हमारे यहाँ लाह और रेशमकी खेती की जाती है उसी प्रकार इसकी भी खेती होती है।

मे भी यही बात पाई जाती है । कौङ्गर जातिकी एक मछली होती है । इसकी मादाकी लम्बाई छः से सात फीट तक होती है और वजन तीस सेर या इससे भी अधिक तक होता है । पूर्ण आकृति प्राप्त कर लेनेके पश्चात् यह खाना पीना बन्द कर देती है और छः महीने तक योही पड़ी रहती है । मध्यावस्थामे इसके शरीरमे अण्डे पुष्ट होते रहते है और अण्डोके देनेके साथ ही वह मृत्युको प्राप्त हो जाती है !

बाज कीटोको वशवृद्धि कार्यके लिए बहुत परिश्रम करना पडता है । घर बनानेवाला भौरा (Masonwasp) बहुत दूर दूरसे घर बनानेकी सामग्री ले जाकर जमा करता है और तब अपने शरीरसे लोआब निकालकर उसे बनाता है । इसके पश्चात् वह पिल्लुओकी तलाशमे निकलता है और खोज खोज कर उनको अपने घरमे ले जाकर बन्दी करता है ताकि अण्डोसे निकलने पर उसके बच्चोको खोराक-की कमी न हो । कुछ जातिकी मछलियाँ भी वशवृद्धिके लिए बहुत परिश्रम करती है । स्टिकुबैक जातिका नर बच्चोके पैदा होने तक अण्डो-की रक्षा करता है । सिलूरस ग्लेनिस जातिकी मछलियोमे नर चालीस दिन तक अण्डोकी बड़ी हिफाजत करता है और इस अर्सेमे वह कुछ नही खाता !

बहुतसे उच्च श्रेणीके जानवर इस कामके करनेके लिए सालभरमें एक बार अक्षरशः उन्मत्त हो जाते है। केवल इस कामना और अभिला-षाके सिवाय उनके हृदयमे और कोई कामना या अभिलाषा नही रहती। इस समय नर मादाके समागमके विना कदापि काम नही चल सकता। एकदम अलग अलग रहनेवाले पूर्णतः असामाजिक जानवर भी बाज दफा अल्पकालीन गरोह कायम कर लेते है और इस मौसिमके चले जाने पर पुनः अलग अलग हो जाते है। बहुत ही दुर्बल और

भीरु जातिके नर भी इस समय मादाओंके लिए लड मरते है । वैज्ञानिकोंके कथनानुसार अन्य जानवरोकी मादाओका इस कामके लिए उन्मत्त होना और मनुष्यजातिकी स्त्रियोका रजस्वला होना ये दोनो घटनाये एक ही बातकी द्योतक है ।

अविवाहिता या अन्य कमसिन स्त्रियोंमे, जिनको अभीतक कोई सन्तान नहीं हुई है, विशेषकर हिस्टीरिया प्रभृति रोगोंका पाया जाना, तथा एकाध दो सन्तानके होनेके पश्चात् कुछ दिनो तक स्त्रियोके रजोधर्मका बन्द रहना और कुछ समयके बाद उसका पुन. आरम्भ होना, इत्यादि बातें हमारे कथनका समर्थन पूरे तौरसे करती है । वास्तवमे यह प्रवृत्ति मृत्युमे भी अधिक बलवती है । क्योंकि जब यह जीव पर पूर्णाधिकार जमा लेती है तब वह मृत्युका भी भय नहीं करता और स्वेच्छासे मृत्युके गालमे घुस जाता है । इससे स्पष्ट है कि प्रकृति जीवनकी संख्याको बढाना चाहती है ।

जननप्रवृत्तिसे ही सहानुभूतिका जन्म होता है।

पूर्वके अध्यायोंसे यह स्पष्ट हो गया होगा कि सदाचार सम्बन्धात्मक है तथा सम्पूर्ण आचार-नीतिकी जड़ सामजिकतामे है । जरासा और विचार करने पर यह स्पष्ट दीख पड़ेगा कि सामाजिकता अर्थात् दूसरोंकी सगतिसे सुख अनुभव करना, दूसरोके प्रशसा करनेसे पुलकित और निन्दा करनेसे खिन्न होना, दूसरोके सुखदु:खमे भाग लेना और दूसरोके क्लेशविमोचनके लिए प्रयत्न करना, दूसरे शब्दोमे सहानुभूति—*माता पिता और सन्तानके मध्यके परस्पर स्नेहका ही फैलाव मात्र है । इसमें कोई सन्देह नहीं कि जननप्रवृत्तिसे ही सहानुभूतिकी उत्पत्ति हुई है ।*

जीव जितना ही अधिक उन्नत होता है उतनी ही अधिक उसे सदाचार (Morality) की आवश्यकता होती है । क्योंकि विना नीतिका आश्रय ग्रहण किये उसका वंश टिक ही नहीं सकता । जीवनके इतिहासमे इन सिद्धान्तोका प्रमाण पग पग पर मिलता है ।

जीवकी उन्नतिके साथ साथ सदाचार-की वढती हुई आव-श्यकता ।

विकासशास्त्रने जीवोको कई श्रेणियोमे विभक्त किया है । प्रथम वहुतसे जीव ऐसे है जिनमे लैंगिक भेद अभी तक पैदा ही नही हुआ है । परन्तु अपने सिद्धान्तोको स्पष्ट करनेके लिए हमे कुछ आगे वढनेकी आवश्यकता है । अतः पहले हम उन जीवोको लेते है जो जल और स्थल पर समान रूपसे रह सकते है (Amphibia) या जो पेटके वल चलते है (उरग या Reptiles) । गिरगिटो और घडियालोको अपने अण्डोके सेनेकी जरूरत नहीं । सूर्य्यकी गर्मीके द्वारा आपसे आप उनके अण्डोसे बच्चे निकल आते है । अच्छा अव इन उरग जीवोकी तुलना पक्षियोंसे कीजिए । इन उरग जीवोहीसे पक्षियोकी उत्पत्ति हुई है । बहुतसे पक्षियोको वड़े परिश्रमकी और अत्यन्त निस्पृहताकी जरूरत पडती है । उन्हे रात दिन अपने अण्डो पर बैठे रहने और उन्हे गर्म रखनेकी आवश्यकता होती है । जरासी भी सुस्ती करनसे अण्डे गन्दे हो जाते है । वाज चिडियोको प्राय. महीने भर तक अपने अण्डोकी रक्षा करनी पड़ती है, तव कही उनके अण्डे फूटते है और उनमेसे बच्चे निकलते है । परन्तु मातापिताका काम यहाँ ही समाप्त नही हो जाता । ये नन्हे-से बच्चे पूर्णतः निरवलम्ब और विवश होते है । चल फिर कर भोजन तलाश करनेकी कोन कहे अभी इनमे खिसकने तककी शक्ति नही होती ।

प्रमाणके लिए जीवन-के इतिहास पर एक नज़र ।

अभी ये आँखेतक नहीं खोल सकते। बहुत दिनो तक इनके माता-पिता इन्हे अपनी चोचोसे भोजन खिलाखिलाकर इनकी उदरपूर्ति करते है। इतना ही नही, जब तक बच्चे छोटे और असहाय रहते है तब तक अण्डोकी तरह इनकी भी हिफाजत करनेकी जरूरत होती है। बहुत समयके बाद ये बच्चे स्याने होते है; एक एक करके इनके सब पर निकल आते है और ये उडनेके योग्य होकर अपना भोजन आप तलाश कर सकते है। तब कही मातापितासे स्वतन्त्र होते है। क्या इस कठिन लालन-पालनके बिना ये एक क्षण भी जीवित रह सकते थे? इन दो ही उदाहरणोसे यह प्रमाणित होता है कि जीव जितना ही अधिक उन्नत होगा उतना ही अधिक उसे सदाचार और निस्स्वार्थता-की आवश्यकता होगी। इससे एक बात और भी स्पष्ट होती है कि *पुरुष (नर) की अपेक्षा स्त्रियों(* मादाओ*) में यह निस्स्वार्थता अधिक पाई जाती है।* नरकी अपेक्षा मादामे अधिक सन्तानप्रेम है, अपने बच्चोके लिए वह अधिक कष्ट झेलती है और दुःख उठाती है। माता-का लाड़ प्यार केवल मनुष्योमे नही, वरन् हर जगह पाया जाता है।

अब हमे दूध पिलानेवाले जानवरो (Mammalia) की सन्तान उत्पन्न करने तथा उनके पालन-पोपणकी रीतिको देखना है। प्राणिशास्त्र (Biology) के विद्यार्थियोने जहाँतक पता लगाया है उससे यह मालूम होता है कि इस श्रेणीमे मौनोट्रीम (Monotremes) सबसे नीचे जीव है। डक मोल (Duck Mole), डक बिल (Duck-bill) और नीथोरिंकस (ornithorhynchus) प्रभृति इस जातिकी मुख्य उपजातियाँ है। इनके मल मूत्र त्याग करनेका एक ही रास्ता होता है। पक्षियोके समान ये भी अण्डे देते है। यहाँ भी माता और बच्चोका वियोग उसी समय होता है जब कि बच्चे अण्डेहीकी अवस्थामे रहते है।

स्तनका विकास इस जीवमे अभी पूर्णताके साथ नहीं हुआ है। इसकी मादाके स्तन मानो हैं ही नहीं। बच्चा पैदा होनेके पश्चात् माताकी छातीके छिद्रेके द्वारा दूध वहने लगता है और उसीसे माता अपने बच्चो-को दूध पिलाती है। निस्स्वार्थता जिसका आभास हमे निस्सन्देह पहले ही-से मिल रहा था यहाँपर पूर्ण रूपसे जगमगा उठती है। क्योकि अन्य किसी जीवमे हमने ऐसा अवयव नहीं पाया कि जिससे केवल दूसरोंही-का लाभ हो। इस श्रेणीके जीवोका स्तन इन्हे उपर्युक्त अन्य जीवोसे विभाजित करता है।

इसके बाद विकासके दूसरे दर्जेमे उन जानवरोका स्थान है कि जो प्रसव करनेके पश्चात् भी अपने बच्चोको कुछ समय तक अपने पेटकी थैलीमे रखते है (Marsupial Mammals)। यद्यपि इन जीवोंके बच्चे अण्डेकी अवस्थामे पैदा नहीं होते तथापि वे भी समयके पहले ही जन्म ग्रहण करते है। प्रथम-कथित जीवोके समान कगेरूका बच्चा भी अपने समयसे कहीं पहले जन्म लेता है और केवल माताकी थैली-(pouch) ही के द्वारा उसकी रक्षा होती है। इससे प्रकट है कि जीवोके विकासके साथ साथ सन्तान उत्पन्न करने और उसके लालन पालनका काम कठिन ही होता जाता है—निस्स्वार्थताकी जरूरत बढती ही जाती है।

विकासके इस मजिलको ते करने पर हमे वे जीव मिलते है जिन्हे प्राणिशास्त्रके ज्ञाता प्लैसेण्टेलिया (placentalia) कहते है। आंगिक सदाचार (organic Morality) यहाँ पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। निस्स्वार्थता यहाँ सूर्यके समान प्रखर किरणोंसे दीप्तमती हो जाती है। इन जीवोंके बच्चे इतना शीघ्र जन्म नहीं लेते। उन्हे बहुत दिनों तक माताके गर्भमें ही रहनेकी जरूरत होती है।

देखिए, गर्भमे इनकी रक्षाके निमित्त प्रकृतिने क्या-क्या प्रबंध कर रक्खे है। इन जीवोको एक विशेष अवयव प्राप्त है जिसे वैज्ञानिक लोग प्लैसेण्टा (Placenta) कहते है और इस प्रान्तकी भाषामे जिसे हम शायद खेड़ी या पुरैन कह सकते है। इसीके द्वारा बच्चेको माताके उदरमे भोजन और औक्सिजन (अम्लजन) प्राप्त होता है। माताहीके साँस लेनेसे बच्चेको हवा मिलती है और माताहीके पेटसे बच्चेकी पुष्टिके लिए उसे भोजन प्राप्त होता है। माताहीके हजम करनेवाले अवयव भोजनको पकाकर और बच्चेके कामका बनाकर उसे प्लैसण्टामे भेजते है। विचार कीजिए कि प्रसवका प्राथमिक कार्य्य ही कितना कठिन और जटिल हो गया है। इसके अतिरिक्त बच्चेको केवल शुद्ध हवा और पोषक पदार्थोंके पानेकी ही नहीं वरन् रद्दी और निस्सार पदार्थोंके बहिष्कृत करनेकी भी आवश्यकता है। जिस प्रकार उसे भोजन तथा औक्सिजन प्राप्त करनेकी आवश्यकता है उसी प्रकार उसी भोजनकी सीठी तथा कार्बोनिक एसिड (कर्बन) को बाहर फेकनेकी भी आवश्यकता है। यह काम भी माताहीके मत्थे है। माताहीके फेफड़े बच्चेको शुद्ध हवा प्रदान करते है और वही बच्चेकी अशुद्ध और जहरीली हवाको निकालते है। माताहीके अन्न पचानेवाले अवयवोंके द्वारा बच्चेको पुष्टिकर पदार्थ प्राप्त होता है और माताहीके मलमूत्र-बहिष्कारक अवयवोके द्वारा बच्चेके भी सभी नि:सार पदार्थोंका बहिष्कार होता है। पुनः यही प्लैसेण्टा एक और भी आवश्यक और महत्त्व-पूर्ण काम करता है। इसे एक प्रकारका छन्ना समझना चाहिए। माताके रक्तमे यदि कोई जर्म या बैक्टीरिया (बीमारीका कीड़ा) आ जाय तो प्लैसेण्टा उसे बच्चेके रक्त तक नहीं पहुँचने देता। उसी प्लैसेण्टामे ज़हरके रह जानेसे अनेक माताओंकी मृत्यु हो जाती है।

अन्तमे माताओके स्तन पर भी विचार कीजिए। यह केवल बच्चेहीके लिए है; माताका इससे कोई उपकार नहीं होता। प्रसव करनेके समय तक ही माताको अपने बच्चेके लिए कठिन काम नहीं करने पड़ते, वरन् प्रसव करनेके बहुत दिन बाद तक भी उसे अपने रक्तसे बच्चेके लिए खोराक तैयार करनी पडती है। सन्तान उत्पन्न करने और उसके पालनेमे निस्स्वार्थताकी मात्रा कितनी अधिक हो गई है!

परन्तु हमारी कथाका अन्तिम अध्याय अभी तक नहीं आया है। आओ, मनुष्य पर ही हम अपनी रामकहानी समाप्त करें। इन प्लैसेण्टेलिया जीवोंहीमेंसे मनुष्य भी एक है। पैदा होनेके समय वह कितना असहाय रहता है! चलना फिरना, उठना बैठना तो दूर रहा वह रेंग भी नहीं सकता! इसे जीवित रखनेके लिए कैसे आविश्रान्त परिश्रमकी ज़रूरत होती है। मनुष्यके नन्हेसे बच्चेका पालन पोषण कितना कठिन है! जरासी भूल जरा सी सुस्तीसे बच्चेका प्राणान्त हो जाता है। दिनों, सप्ताहो और महीनो तक ही नहीं बल्कि वर्षों पर्य्यन्त यदि बच्चोंकी रक्षा न की जाती, तो अब तक मानव-वंश मटियामेट ही हो गया होता।

सदाचार ही पर ऊँची जातिके जीवोंका जीना निर्भर है।

इस लम्बे इतिहासके अवलोकन करनेके बाद इस विषयमे कोई भ्रम नहीं रह सकता कि जीव जितनी ही अधिक उन्नति करता है उतनी ही अधिक उसे सदाचारकी आवश्यकता होती है। यदि सदाचार (निस्स्वार्थता) का अवलम्बन न किया जाता तो कोई भी उच्च कोटिका जीव देखनेमे न आता। *जन्म लेनेके समय सभी ऊँचे दर्जेके जीव नीचे दर्जेके जीवोंसे अपेक्षाकृत असहाय रहते है; परन्तु बड़े होने पर यही जीव नीची जातिके जीवों*

पर विजय प्राप्त करते है तथा उन्हे अपने सुख और आरामका साधन बनाते है।

घड़ियालका बच्चा आपसे आप अण्डेमेसे निकल आता है और यद्यपि उस समय वह केवल छ· साढे छः इञ्च ही लम्बा होता है, तौभी अपना भोजन तलाश कर सकता है। मुर्गी घड़ियालसे ऊँचे दर्जेमे है। क्योकि उसे अण्डे सेने पड़ते है। पर अण्डोसे निकलनेके थोड़े ही समय बाद मुर्गीका बच्चा चल फिर सकता है। परन्तु दूध पिलानेवाले जानवरोकी बात दूसरी है। बिल्लीके जन्म लेनेके पूर्व यद्यपि प्लैसेण्टाके द्वारा इतनी सहायता प्राप्त होती है तौ भी पैदा होनेके समय वह एकदम निस्सहाय होता है। उसकी ऑखे देरमे खुलती है। वह अभी देख तक नही सकता। पॉवोके रहते भी वह चल नही सकता। वह पूर्णत: निरवलम्ब है। इन सभी श्रेणियोके बाद जब हम सृष्टिके स्वामी मनुष्य तक पहुॅचते है, तव उसके बच्चेको इन सभी जीवोके बच्चोसे कही अधिक निरवलम्ब पाते है। इस अवस्थामे यदि मनुष्यके *बच्चेको अन्य जीवोके बच्चोके साथ जीवन-संग्राममे मुकाबलेके लिए छोड़ दिया जाता तो क्या इस विस्तीर्ण भूमण्डल पर एक भी मनुष्य देखनेमें आता?*

परन्तु अन्तमे विजय किसकी होती है? घडियाल गिरगिट प्रभृति जीवोकी या सर्प इत्यादि पेटके बल चलनेवाले जीवोकी? घोड़े भैसे बैल प्रभृति जीवोकी या पैदा होनेके समय सम्पूर्णत असहाय मनुष्यकी? इसका उत्तर स्पष्ट है। *साराश यह है कि प्राकृतिक नियमके अनुसार जिस जीवके लालनमें सदाचारकी जितनी अधिक आवश्यकता होती है उस जीवको जीवन-संग्राममे अन्य जीवोंकी अपेक्षा उतनी ही अधिक श्रेष्ठता प्राप्त होती है।* यदि बात इसके

विपरीत होती तो तन्वो पादौ या शायद बहुत ही नीच श्रेणीके दो एक जीवोंके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकारका जीवन ससारमे दृष्टिगोचर ही न होता। अतएव यह स्पष्ट है कि प्रकृति केवल मात्र जीवोकी सख्या ही नही बढाना चाहती, वरन् वह निम्न श्रेणीके जीवोके स्थान पर उच्च श्रेणीके जीवोको स्थापित भी करना चाहती है।

प्रकृति संख्याकी अपेक्षा श्रेष्ठता पर अधिक ज़ोर देती है।

इसी कारण हम देखते हैं कि उन्नतिके पथ पर जीव जितना ही अधिक अग्रसर होता है, उतनी ही उसको सन्तान कम होती है; परन्तु सदाचारके कारण उसकी सन्तान जीवनसंग्राममें अधिक श्रेष्ठता प्राप्त करती है। मछलियॉ करोड़ो अण्डे देती है जिन्हे अन्य क्षुधातुर मछलियॉ बड़े वेगसे भक्षण कर डालती है। इनमेसे कुछ अण्डोके बच जानेपर ही मीनवंशका जारी रहना निर्भर है। पर इन मछलियोसे कही श्रेष्ट वे मछलियॉ है जो अपने अण्डोको अपने अण्डकोशमे ही से लेती है। इनके बीस अण्डे पूर्वोक्त मछलियोके करोड़ो अण्डोके बराबर है। इसी प्रकार टरमाईट जातिकी चिउॅटी २४ घण्टेमे ८०,००० अण्डे देती है और गोरण्डियस जातिका कीडा एक दिनसे भी कममे अस्सी लाख अण्डे देता है। परन्तु हाथी इन सबसे कहीं श्रेष्ट है जो तीस वर्षकी अवस्था प्राप्त कर लेनेके बाद बच्चे देता है और जिसके बच्चे दो वर्ष तक माताके गर्भमे रहते है। इसी प्रकार एक सालमे होनेवाला बन्दरका एक बच्चा असख्यो मछलियोसे उत्तम है।

दुहरावका सिद्धान्त।

सदाचारकी उत्पत्ति और विकासकी जो बात हमने कही है वह प्राणिशास्त्रके दुहरावके सिद्धान्त (*Recapitulation Theory of Biology*) से भी प्रमाणित होती है। इस सिद्धान्त (Theory) का अर्थ यह है कि

व्यक्तिका इतिहास जातिहीके इतिहासका संक्षेप है। अर्थात् जातिके जीवनमे जो जो घटनाये उपस्थित हुई है वे नमूनेके तौर पर, अत्यन्त सक्षिप्त रूपसे, व्यक्तिके जीवनमे भी घटती है। जाति जिन जिन अव-स्थाओसे होकर पार हुई है वे ही अवस्थाये व्यक्तिके जीवनमे भी व्याप्त होती है। गर्भमे मनुष्यकी क्या शकल रहती है तथा उसमे क्या क्या परिवर्तन उपस्थित होते है; पुन' जन्म लेने पर वह पहले किस प्रकार चलने फिरनेसे मजबूर रहता है तथा जरा वढने पर वह किस प्रकार रेगता है, पीछे वह किस प्रकार घुट-नोंके वल चलना आरम्भ करता है, तथा और वडा होने पर वह किस प्रकार खड़ा होना और चलना सीखता है, इत्यादि शारीरिक बातो पर विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। हमे यहॉ व्यक्तिके नैतिक इति-हाससे ही मतलब है और यहॉ भी दुहरावका सिद्धान्त हमारी वैसी ही मदद करता है। हमे स्वीकार करना पड़ेगा कि *मनुष्यका बच्चा—चाहे हम उसे दुश्चरित्र (immoral) कहें या नहीं—अत्यन्त ही स्वार्थी है।* उसे केवल अपनी ही फिक्र है। अपने सुख और आरामके अतिरिक्त दूसरा कोई विचार उसके मनमे उत्पन्न नही होता। माताके बीमार होने पर भी वह उसी प्रकार दुग्धपान करना चाहता है। जरासी ही चेत-नताके वढने पर उसमे निस्सन्देह पर-पीड़नसे पीडित होनेकी कुछ झलक दृष्टिगोचर होने लगती है; परन्तु अभी तक वह पूर्णतः स्वार्थी ही होता है। दूसरोका अपकार करने और दुःख पहुँचानेमे भी उसे आनन्द मिलता है। क्या आपने कभी अपने बालकोको चीटी या अन्य किसी कीडेको पृथ्वीमे चलता हुआ पाकर उसे निष्प्रयोजन मसलते हुए नही देखा है? सुन्दर तितलियोको देख कर आपके नन्हे बच्चेने उन्हे पकड़ देनेके लिए क्या कभी आपसे

अनुरोध नही किया है ? धीरे धीरे बच्चेकी अनुमान शक्ति (imagination) बढती है, उसमे सहृदयता उत्पन्न होती है और उसके हृदयमे सदाचार (Morality) का जन्म होता है । वह अनुमान करने लगता है कि उसके पाले हुए पक्षी, उसके कुत्ते और बिल्लियाँ यहाँ तक कि उसके खिलौने भी उसीके समान सुख दुःख अनुभव करते हैं—उसीके समान प्रसन्न और खिन्न होते है तथा उसीके समान हँसते, रोते और अन्य काम करते है। अपने खिलौनोके प्रति बच्चेके इस प्रेम प्रकट करनेकी क्रियामे निस्सन्देह अपने पुत्र और पुत्रियोके प्रति वयस्क लोगोके लाड़ प्यार करनेका एक फीकासा प्रतिबिम्ब दीख पड़ता है। बढने और स्याने होने पर बच्चा पुरुष या स्त्रीमे परिवर्तित होता है और इसी समय उसके हृदयमे प्रेमका इन्द्रधनुष्य उदित होता है। फिर बच्चा पिता या माता बनता है और पहले सगीतकी दूसरी आवृत्ति शुरू होती है। खेला हुआ अभिनय दुबारा खेला जाने लगता है।

जनन-प्रवृत्ति-ही सदाचार-की माता है।

प्राणिविद्याके पण्डितोंने यह सिद्ध कर दिया है कि इसी जनन या वंशके कायम रखनेकी प्रवृत्तिसे सभी प्रकारके करुण भावोंकी—सहृदयताकी—सदाचारकी—उत्पत्ति हुई है। यह जननप्रवृत्ति क्या है? जीवनकी सेवा करना उसे कायम रखना और बढ़ाना यही तो उसका लक्ष्य है । कोई स्वार्थ या कोई कामना नहीं है। मनुष्यके बच्चे वृद्धावस्थामे उसकी मदद कर सकते है, परन्तु पक्षियो और चौपायोका उनके बच्चोसे क्या उपकार होता है ? *यही प्रवृत्ति सदाचारकी जननी है। क्योंकि जीवनकी सहायता करने, उसके बढाने और पूर्ण करनेके अतिरिक्त नीति (Morality) का भी और कोई उद्देश नहीं है ।*

अतएव जननीत्व ही सम्पूर्ण सदाचारका जनक है और यह प्रवृत्ति कितनी दृढ है ! यदि हमारे अपने वच्चे नहीं होते है तो हम दूसरोके वच्चोको निज सन्तानकी तरह ग्रहण करते है । उन्हींके लालन पालनसे हमारी किंचित् तुष्टि हो जाती है । यदि हमे यह भी सौभाग्य प्राप्त नही होता तो हम पक्षियोको और जानवरोको पालते है और उन्ही पर अपने प्रेम, करुणा, सहानुभूति इत्यादिके भावोको व्यय करके अपने व्यथित और लालायित हृदयको कुछ सन्तोष प्रदान करते है । केवल मनुष्यके वच्चेको देख कर ही हमारा प्रेम नही उमड़ता, वरन् अन्य जीवोके वच्चोको देख कर भी हमारा हृदय हिलोरे मारने लगता है । जहॉ कहीं हम शिशु-जीवनको देखते है, जहॉ कहीं हम देखते हैं कि किसी नन्हेसे जीवनको हमारी सहायताकी आवश्यकता है, वहीं हम सहायता करनेके लिए कटिवद्ध हो जाते हैं। *इसी सहृदयताके कुछ और वढने पर मनुष्य जव किसी भी जीवधारीको दुःखित देखता है तो स्वयं अपने आपको उसके दुःखसे पीड़ित अनुमान करता है ।* अत· इस विपयमे कोई सन्देह शेप नहीं रह सकता कि जनन-प्रवृत्तिसे ही सदाचारकी उत्पत्ति हुई है । विवाह करनेके पश्चात् उत्साहहीनसे भी उत्साहीन मनुष्य काम करनेके लिए और अपनी स्त्री और वच्चेको आराम देनेके लिए प्रयत्न करनेको उत्तेजित होता है। अपनी स्त्री तथा अपने पुत्र पुत्रीके प्रति अपने कर्तव्यको स्मरण करके मनुष्य अकसर वहुत कठिन परिश्रम करता है । विवाह करने और सन्तान उत्पन्न करनेके पश्चात् स्वार्थीसे स्वार्थी मनुष्यके स्वभावमे भी अद्भुत परिवर्तन उपस्थित होता है और अनुदार और क्रोधवान् स्वभावका मनुष्य भी अक्सर स्नेहपूर्ण और स्वार्थहीन पिता वनता है और उसके आचार विचार संयमित हो जाते हैं । इसी प्रकार स्वार्थी और विवेक-शून्य स्त्री भी स्नेह-मयी पत्नी और माता वन जाती है ।

आत्मरक्षा और सन्तान रक्षाके लिए ही अनेक जीव यूथों और झुण्डोंमें रहने लगते है जिनसे पीछे समाजका विकास होता है। इन यूथोमे रहनेवाले जीवोको जीवन-सग्राममे अन्य जीवोसे उत्कर्षता प्राप्त होती है। जंगली घोड़े गरोह बॉधते है, चीटियॉ और मधुमक्खियॉ छत्ते बनाती है और पक्षी झुण्ड बॉध कर स्थानान्तरमे जाते है (Migrate)। इसी सामाजिकताके प्रभावसे बहुतसे कमजोर जानवरोकी नसल बाकी है। बाघ और चीते तथा अन्य सभी शिकारी जानवर निस्सन्देह बडे बलवान् होते है, परन्तु कोई शिकारी जानवर एक पूर समूह पर आक्रमण नही कर सकता। जिस जातिमे इस सामाजिकताकी मात्रा जितनी अधिक होगी वह जाति अपनी नसलके जारी रखनेमे उतनी ही अधिक समर्थ होगी।

सदाचार और उसका उद्देश।

इसी लिए हमने पहले ही डाक्टर सलीबी और एलेनकीके कथनानुसार यह कहा था कि सदाचारका उद्देश—सख्या और श्रेष्ठता दोनोके लिहाजसे—कम जीवनके स्थान पर अधिक जीवन स्थापन करनेका है। अतः *जिन कार्य्यों और वस्तुओंसे जीवनका विकास, उसकी पूर्णता, उन्नति तथा वृद्धि हो, वह नैतिक है और जिन कार्य्यों और वस्तुओंसे जीवनकी क्षति, न्हास और नाश हो वह अनैतिक है।*

सदाचारकी परिभाषा।

हमारे जीवित रहनेहीकी इच्छासे नीतिकी उत्पत्ति हुई है और इसी पर हमारा जीवित रहना निर्भर है। इसीकी सहायतासे हमारा जीवन पूर्ण और उन्नत हो सकता है। इसीकी मददसे हमारी सभी कामनाये पूरी हो सकती है। अतएव डाक्टर सलीबी और एलेनकीके कथनानुसार

हम सदाचार को 'जीवनका धर्म' या 'मज़हबे जिन्दगानी' (Religion of Life) कह सकते है।

हम चारो ओर देखते है कि जड़ावस्थाके मध्यसे जीवन स्फुरित होना चाहता है। वह जड़को चैतन्य और चैतन्यको अधिकतर चैतन्य बनाना चाहता है । पहले किसी प्रकारका जीवन न था, तत्पश्चात् वहुत साधारण तौरका जीवन उत्पन्न हुआ, इसके अनन्तर धीरे धीरे जीवन वढता गया और अधिक विकसित होता गया। समस्त प्राणियोके देखने पर यदि कोई वात स्पष्ट होती है तो यही कि जीवन वढना, फैलना, अधिक उन्नत और पेचीदा होना चाहता है। प्रत्येक जीवके शरीरमे असख्य जीवन-बीज (Germ plasms) इस प्रकार संचित किये जाते है, मानो प्रकृति भावी जीवनकी तैयारीहीके लिए—जातिके कायम रखनेहीके लिए—व्यक्तिकी रचना करती है।

जीवन वढ़ते-ही जाना चाहता है—सदाचार का अनन्त उत्तेजन।

जीवन-सग्राम (Struggle for existence) और असख्य जीवोके विनाशको देखकर यह अक्सर कहा जाता है कि प्रकृति वड़ी निर्दयी है; परन्तु इस दृष्टिसे देखने पर वह करुण-हृदय ही प्रतीत होती है। ऊपर ही कहा जा चुका है कि प्रकृति सख्याकी अपेक्षा श्रेष्ठताको अधिक पसन्द करती है। अतएव इस प्रकार देखनेसे उसकी वाहरी निर्दयतामे भी सहृदयता ही नजर आती है।

जीवन-संग्रामका यथार्थ अभिप्राय।

गत अध्यायका परिशिष्ट ।

सर्वोत्तम वैवाहिक प्रथा ।

इस अध्यायको आलोचनाके द्वारा सर्वोत्तम वैवाहिक प्रथाका प्रश्न आपसे आप उठ खड़ा होता है । इस नोटमे इसी प्रश्नको सक्षेपमे समाप्त करनेकी चेष्टा की जाती है। जिन पाठकोने इस अध्यायको ध्यानपूर्वक पढनेका कष्ट उठाया है वे सहजमे ही देख सकते हैं कि उत्तम वैवाहिक प्रथा कौनसी है। हमने ऊपर कहा है और प्रमाणित करनेकी चेष्टा की है कि प्रकृति सख्या और श्रेष्ठताके लिहाज़से जीवन-की संख्याको बढाना चाहती है। जननप्रवृतिके प्रावल्य पर भी थोड़ासा विवेचन किया जा चुका है। अतएव यह स्पष्ट ही है कि वश-वृद्धि ही विवाहका प्रधान उद्देश्य है। "*पुत्रार्थे क्रियते भार्य्या ।*" विज्ञान भी हमारे शास्त्रकारोके इस कथनका समर्थन करता है । अतएव उत्तम वैवाहिक प्रथा वही है, जिसके द्वारा उत्तम सन्तान उत्पन्न हो सके। इस बातकी उपलब्धि एक पुरुष या एक स्त्रीके एक पत्नि या एक पति होनेकी प्रथासे ही हो सकती है। विवाहकी किसी दूसरी प्रथाके द्वारा सन्तानका लालन-पालन पूर्णताके साथ नहीं हो सकता और न सन्तानको मातृ-पितृ-स्नेह ही प्राप्त हो सकता है। पर हमने अभी देखा है कि जिस जीवके लालन-पालनमे जितने अधिक परिश्रम और सावधानताकी आवश्यकता होती है उतनी ही उस जीवको जीवन-सग्राममे शिष्टता प्राप्त होती है। वर्तमान वैवाहिक प्रथासे तात्पर्य्य एक पुरुष या एक पत्नी-प्रथासे है। बाल-विवाह, जातिके अन्दर विवाह, पुरुष स्त्रीकी सम्मति

लिए विना विवाह, इत्यादि बातो पर लेखक कोई मत प्रकट नहीं करना चाहता। सम्बन्ध अविच्छेद और जन्म भरके लिए होना चाहिए या कुछ हालतोंमें वह तोड़ा भी जा सकता है, इत्यादि बातो पर भी यहाँ विचार करनेको स्थान नहीं है।

वर्तमान समाजमे असन्तुष्ट कुछ साम्यवादी दल विवाह-प्रथाको सर्वथा उठा देना चाहते है। उनका कहना है कि 'मेरा पुत्र' या 'मेरी स्त्री' इसीसे 'मेरी जायदाद' या 'मेरा धन' का जन्म होता है। अतएव समानता स्थापित करनेके लिए सबसे पहली आवश्यक बात यह है कि विवाहप्रथाका अन्त कर डाला जाय। निस्सन्देह वर्तमान सामाजिक संस्थाओंके अन्दर बढ़े और पले हुए हम जैसे मनुष्योंके लिए ऐसी नूतन क्रान्तिका अनुमान तक करना भी कठिन है और इसका नाम सुनकर भी हमारा कॉप उठना स्वाभाविक है। परन्तु सब कुछ मान लेने पर भी इन क्रातिकारियोंके साथ सहमत होना कठिन प्रतीत होता है। ऊपर हमने जो कुछ कहा है यदि वह सच है—यदि इस जननप्रवृत्तिसे ही सदाचारकी उत्पत्ति हुई है, तो क्रातिकारियोंके इच्छित परिवर्तनके द्वारा भारी अनर्थकी सम्भावना दीख पडती है। केवल मनुष्योंमे ही नहीं अन्य जीवोंमे भी स्वभावतः बहुत बड़ा सन्तानप्रेम पाया जाता है। पक्षी और साधारण जानवर भी अपने बच्चोको प्यार करते हैं। उनकी रक्षा और लालन-पालनके लिए अपना प्राण तक न्योछावर करते हैं। परन्तु इस महती क्रातिके द्वारा इस निस्स्वार्थताके भाव पर कुठाराघात होता है; मनुष्यसे एक बडी प्यारी वस्तु—उसकी सन्तान—छीन ली जाती है, उसे अपनी स्वाभाविक सन्तानस्पृहा लालन-पालनकी स्वाभाविक कामना—को तुष्ट करनेका अवसर नहीं प्राप्त होता। इस परिवर्तनके द्वारा मनुष्यके स्वभाव-

मे भयानक स्वार्थ-पूर्ण क्रातिके हो जानेकी बहुत बडी सम्भावना है ।
इस लिए यह क्राति सर्वथा हानिकर और विपज्जनक है । विवाह ही वह वस्तु है जो मनुष्यके भीषण कामोन्मादको दवाये रखती है । सन्तानप्रेमके ही द्वारा मनुष्य निःस्वार्थ होना सीखता है । यही मनुष्यके कार्यों और आचरणोको शृंखलाबद्ध और सयमित रखता है । जातिहितके सामने वैयक्तिक हितका महत्त्व सदा गौण है । जातिहितके लिए प्रकृति असख्य प्राणियोका वलिदान करती है । स्वार्थहीनता या सदाचार ही जीवनका नियम है । अतएव समाजमे स्वार्थपरताका वढना कदापि हितकर नहीं हो सकता ।

पुरुष और स्त्रीके सम्बन्धमे जो उछ्वास, उत्कण्ठा, हृदय-हिल्लोल और मृदुलता पाई जाती है, इस क्रातिके द्वारा उसपर भी पानी फिर जायगा। प्रेम काममे परिणत हो जायगा । प्रेमी और प्रेमिकाके अभिनयका अन्त हो जायगा । कविकी कविता और नाटककारके नाटकमें कोई रस नही रह जायगा । एक प्रकारसे मनुष्यका जीवन ही नीरस, शुष्क, निस्स्वाद, सहृदयताशून्य और पाशविक हो जायगा ।

आठवाँ अध्याय।

सदाचारका प्रचार।

सदाचार-प्रचारकी कई रीतियों हैं और उनमें प्रथम रीति दण्ड, दमन, ताड़न या सजाकी है। बहुत प्राचीन समयसे ही राष्ट्र दुष्टो या दुश्चरित्रोको सजा देता आया है और निस्सन्देह ऐसा करनेका उसे अधिकार है। इसका आधार इस बात पर है कि हम पीड़ासे डरते है। अतएव हम डरसे सच्चरित्र बनाये जाते है। राष्ट्र हमसे कहता है—"तुमने अपराध किया, इसलिए तुम्हे यन्त्रणा सहनी पड़ी। अब भविष्यके लिए होशियार हो जाओ। देखो, यदि फिर ऐसा करोगे तो तुम्हे वही नहीं, उससे भी कठिन यन्त्रणा भुगतनी पड़ेगी।" हमारे न्यायालयोमे भी आईनके अनुसार दो बार अपराध करनेवालेको कुछ विशेष सजा मिलती है। प्राचीन समयमे—जब कि राजनीति और धर्ममे कोई भेद नहीं माना जाता था—राजा लोग नियम, द्वारा, सदाचार-प्रचारको अपना कर्तव्य मानते थे।

सदाचार-प्रचारकी पहली रीति-दण्ड और दमन।

परन्तु ज्यो ज्यो समय बीतता जाता है इस उपायसे बहुत कम काम लिया जाता है। सभी सभ्य देश (निस्सन्देह इनमे भारत सम्मिलित नहीं हो सकता!) अब इसका बहुत कम आश्रय लेते है। इस रीति-की उपयोगितामे अब बहुत कम विश्वास किया जाता है और जितना ही कम दण्ड दिया जाय उतना ही अच्छा समझा जाता है। मनुष्यकी

सहानुभूति और सहृदयता दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है। वह अपने अपराधी भाई पर क्रुद्ध होने या बदला लेनेके बदले उलटा उसके प्रति सहानुभूति दिखलाता है । वह सोचता है—“ अहो, यह कैसा हत-भाग्य पुरुष था जो अपने हाथो आप ही आपत्तिमे फसा, इसने अपने कार्यका नतीजा पहले न सोच लिया. यदि यह सुसगतिमे रहता, इसे अच्छी शिक्षा मिली होती तो वेचारेको ये दिन क्यो देखने पडते ? ” अतएव अब दण्ड देना राष्ट्रके शासनकी असफलताका चिह्न माना जाता है। यदि वह अच्छा और आदर्श प्रवन्ध कर सकता तो अपराधी ही कहाँसे आते जिन्हे उसको दण्ड देना पड़ता है ? इसलिए सजाकी रीति अब घृणाकी दृष्टिसे देखी जाती है । * अभी हालहीकी बात है कि रूसके नये प्रजातंत्रने फॉसीकी सजाको सर्वथा उठा दिया है। अब यह माना जाने लगा है कि जो काम दण्ड द्वारा नही होता वह प्रेम और शिक्षाके द्वारा बडी सुन्दरताके साथ सम्पादन किया जा सकता है । सभी सभ्य देशोमे दण्डनीय अपराधोकी सख्या घटती जाती है और सजा हलकी होती जाती है । इॅग्लैडहीमे उन्नीसवी शताब्दिके मध्य तक राबर्ट पीलके सुधारोके पूर्व कोई दो सौ तरहके अपराधोके लिए मृत्युकी सजा दी जाती थी ।

अठारहवीं शताब्दिके ॲगरेजी इतिहासकी इस घटना पर विचार कीजिए।

इँग्लैंडके इतिहाससे कठिन दण्डका एक उदाहरण ।

१७७७ ई० मे जहाजी पलटनका एक दल एक मनुष्य-को जबरदस्ती पकड़कर ले गया और उसे उसने जहाजी काममे भरती करा दिया । इस मनुष्यको उन्नीस वर्ष-की एक स्त्री और दो बच्चे थे। इस मनुष्यके इस प्रकार चले जाने पर उसके असबाबको किसीने पुराने कर्जेके बहाने नीलाम करा लिया और उसकी स्त्रीको गली गली

---

* यह अध्याय १९१९ के आरम्भमें लिखा गया था ।

भीख माँगनेकी नौबत आई। अतिशय हताश होकर और आवश्यताओंसे तंग आकर उस स्त्रीने किसी कपड़ेकी दूकानसे कुछ मोटा कपड़ा चुरा लिया। अपने अभियोगकी जवाब देहीमे उसने कहा कि—"मै बड़े आरामसे किसी-से एक पैसा भी उधार लिये बिना अपना जीवन व्यतीत करती थी कि एक दिन नाविकोंके एक दलने मेरे पतिको मुझसे छीन लिया। इससे मै मुह-ताज हो गई। इस समय सोनेके लिए मेरे पास बिछोना न था, अपने बच्चोको खिलानेके लिए भोजन न था और कपड़ोंके बिना मै प्राय: नंगी हो रही थी। ऐसी अवस्थामे सम्भव है कि मुझसे कुछ अपराध हो गया हो; परन्तु मै दु:खसे कातर हो रही थी और मै नहीं कह सकती कि मैने कौनसा अपराध किया है। क्योकि उस समय मन और मेरे कार्य्य मुझसे सर्वथा स्वतन्त्र हो गये थे।" विचारपतियो और वकीलोने राय दी कि उसने बहुत बड़ा अपराध किया है और इस लिए उसे फाँसी होनी चाहिए। अतएव अपने नन्हेसे बच्चेको गोदमे लिए और उसे दूध पिलाते हुए उस स्त्रीको अपना प्राण दे देना पड़ा। आईनकी इसी निष्ठुरता और * पैशाचिकताको व्यक्त करनेके लिए ही विक्टर ह्यूगोने अपना Les Miserables नामक उपन्यास लिखा है। कौन ऐसा आदमी है जो इसे पढ कर एक बार भी न रोया हो ? हम पहले ही देख चुके है कि एकाकी, स्वेच्छाचारी और स्वार्थी जन्तुसे मनुष्य एक सामाजिक जानवर बन रहा है तथा उसका सदाचार क्रमश· दिन प्रति दिन बढ रहा हैं। मनुष्योंके समूहको ही समाज कहते है, अतएव जैसे मनुष्य होगे वैसा ही समाज भी होगा। जैसा अन्त:करण व्यक्तियोका होगा वैसा ही

* From Lecky's "History of England in the Eighteenth Century" quoted in E. S. P. Hayne's Lecture named "Modern Morality and Modern Toleration" —Watts

अन्तःकरण समाजका भी होगा। इसी कारण हम प्रत्येक युगमे समाजके आईनको इतना भिन्न पाते है। समाज जितना उन्नत होता है, उसके आईन भी उतने ही उन्नत होते है।

और वास्तवमे यदि राष्ट्रका कर्तव्य बदला लेना नही वरन् अपराधीका सुधार करना है तो सजा देनेसे यह कामना पूर्ण नही होती। सजा पानेसे हममे केवल भयका सञ्चार होता है, हमारा वास्तविक सुधार—हमारे हृदय और मस्तिष्कका सुधार—अणु मात्र भी नही होता। इससे उन कुप्रवृत्तियोका जिनकी प्रेरणासे हम अपराध करते है कदापि मूलोच्छेद नहीं होता। यह अकसर देखा गया है कि अधिक सजा पानेसे अपराधीका हृदय और भी अधिक बिगड़ा है। हमने अपने कानोसे अपराधियोको जेलखानेको 'ससुराल' कहते हुए सुना है। वे जेलखानेको किसी प्रकार बुरा नहीं समझते। उलटा कहते है कि जैसा काम करके बाहर खाया वैसा जेलमे। क्षुधासे व्याकुल और नित्य कड़ाके करनेवाले इस हतभाग्य देशमे अनेको पुरुप विद्यमान है जो कोशिश करके खुशीके साथ जेल जानेको प्रस्तुत रहते है, और किस लिए? केवल इसी हेतु कि वहाँ उन्हे कमसे कम दोनों वक्त भोजन तो मिलेगा, चाहे कितना ही शारीरिक परिश्रम क्यो न करना पड़े!! निःसंदेह *शारीरिक सज़ा पशुओंके लिए ठीक हो सकती है, उन मनुष्योंके लिए नहीं जिनमें प्रेम, दया, सहृदयता इत्यादि गुण विद्यमान हैं।* * हम यह नहीं

इसका दोष।

---

* Les Miserables के पाठक जीन वैलजीन और बिशप (पादरी)के मिलन-दृश्यको याद करेंगे। जीन वैलजीन सजा पा चुका है, अत वह जहाँ कहीं जाता है वहींसे दुर दुरा दिया जाता है। जाडेकी अँधेरी और भयानक रात है, वर्फ गिर रहा है और सर्दीसे दाँत कड़कड़ा रहे हैं। सभी घरों, और मुसाफिरखानोंसे निकाले जाने पर वह बिशप (पादरी)के घर पहुँचता है।

जीन वैलजीनकी कथा।

कहते कि अपराधियोको दण्ड देना इसी क्षण बन्द कर दिया जाय। नहीं, एकाएक ऐसा करनेसे लाभके बदले हानि होगी, इसका नतीजा समाजको विच्छिन्न करनेके अतिरिक्त और कुछ नही होगा। परन्तु हाँ, इन बातोको जान लेने और अपने विचारोको उन्नत और परिवर्तित करनेकी बड़ी आवश्यकता है।

"मैं उन्नीस वर्ष पर्य्यन्त सजा भुगत चुका हूँ। मैं अपराधी हूँ। मैं जहाँ जाता हूँ वहाँ ही लोग मुझसे कहते हैं—'हट, दूर हो'। मैं भूखा हूँ। क्या मुझे ठहरनेकी अनुमति मिलेगी?"

"मैडेम मैगलोयर (दाई), टेबुल पर एक और रकाबी रख दो।"

"ऐं! यह क्या? ठहरिए! क्या आपने मेरी बातोंको नही सुना? मैं जहाजी गुलाम हूँ। (इस समय फ्रासमे भारी अपराधी गुलाम बनाकर डाँड़ खेनेके लिए जहाजोंपर भेज दिये जाते थे (galley slave)) क्या आप मुझे खानेके लिए कुछ अन्न और रात बितानेके लिए स्तवलमें थोडीसी जगह दे सकते हैं?"

"मैडम मैगलोयर! कमरेमें बिछौना ठीक कर दो।"

जीन वैलजीनके विस्मयका कोई ठिकाना नही रहता है, उसका हृदय बेचैन हो उठता है। वह कहता है—

"आप कृपालु हैं। मैंने आपको स्पष्ट कह दिया है कि मैं कहाँसे आ रहा हूँ तौ भी आप मुझसे घृणा नही करते हैं?"

बिशपने प्रेमके साथ उसके हाथोंको स्पर्श करके कहा—"मुझे तुमसे नाम पूछनेकी जरूरत नहीं है। मैं तुम्हारा नाम पहलेहीसे जानता हूँ।"

"ऐं! आप मेरा नाम जानते है!"

"हाँ, तुम हमारे भाई हो।"

इस उपन्यासके पाठक इससे आगेकी बातोंको याद करे। रातको दो बजे जीन वैलजीनकी नीद खुल जाती है। बिशपके करुण-व्यवहारसे उस समय उसकी सोती हुई अच्छी प्रकृति जाग चुकी है और वह बुरी और नीची प्रवृत्तिके साथ लड़ रही है। परन्तु विजय बुरी प्रकृतिकी ही होती है। बहुत देर तक अपनी

दूसरी रीति-स्वर्गका लालच और नरकका भय ।

दूसरी रीतिसे मनुष्यवर्गको स्वर्गके लालच तथा नरकके भयसे सदाचारकी ओर प्रवर्तित तथा दुराचारसे निवृत्त किया जाता है । *ये दोनों रीतियॉ एक ही प्रकारकी हैं ।* दोनो भयसे काम लेती है । दण्ड दोनोमे विद्यमान है । एकमे प्रत्यक्ष है, दूसरेमे परोक्ष । एकमे हमे तुरन्त दण्ड भुगतना पड़ता है और दूसरेमे मरणोपरान्त अनन्त कालतक नरक भोगना पड़ता है और उन यन्त्रणाओको सहन करना पड़ता है जिनका नाम लेते भी रोंगटे खड़े हो आते है ! वलिहारी है स्वर्ग-नरक निर्माण करनेवालोकी बुद्धिकी और उनके हृदयकी जो उस समय तनिक भी द्रवित नही हुआ ! इन दोनो रीतियोके मध्य बड़ा अन्तर यही है कि यह पिछली रीति पहली रीतिकी अपेक्षा अधिक मानसिक है ।

कुप्रवृत्तियोंके साथ लड़नेके वाद वह बिशपके चॉदीके वर्तनोंको लेकर भाग जाता है और सिपाहियों द्वारा पकडा जाकर पादरीके सामने लाया जाता है ।

बिशप कहता है—" मैं तुम्हें देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुआ । तुम उन चॉदीके शमादानोंको क्यो छोड़ आये ? उन्हे भी तो मैं तुम्हें दे ही चुका था ।"

सिपाही वोला—" तब यह आदमी जो कहता था वह सत्य है । इन चॉदी–"

सिपाही अपना वचन पूरा भी न कर पाया था कि उसकी बातोंको काट कर बिशप वोल उठा—" इसने तुमसे यही कहा था न कि मैंने एक वृद्ध पादरीके घरमें रात विताई थी और ये वर्तन मुझे उस पादरीहीसे प्राप्त हुए थे ? चोर समझ कर तुम इसे यहॉ लाये हो । मै सब समझ गया, तुमसे गलती हुई है ।"

" यदि यही बात है तो हम इसे छोड देते हैं ।"

" अवश्य छोड़ दो ।" इसके बाद जीन वैलजीनकी ओर देख कर पादरीने कहा,—" जानेके पूर्व तुम अपने चॉदीके शमादानोंको भी लेते जाना ।"

जीन वैलजीनके हृदयमें अजब हलचल पैदा हो गई; उसके दिलकी क्या हालत हुई यह वतलाना असम्भव है । उसका जीवन एकदम पलट गया । पादरीने उस पर कौनसा जादू डाल दिया और पश्चात् वह किस तरहका आदमी वन गया यह उक्त उपन्यासके पाठकों पर विदित ही है ।

इसलिए पहली रीतिके वारेमे जो कुछ कहा गया है वह इसके सम्बन्धमे भी कहा जा सकता है। *भयके ऊपर स्थित होनेके कारण इसके द्वारा भी हमारा सुधार नहीं होता।* इसकी नीव हमारे स्वार्थमे हैं, परमार्थमे नहीं। यहाँ भी गरज़ वदला लेनेसे ही है, हमारे सुधारसे नहीं। यहाँ भी दण्डसे ही काम लिया जाता है। मज़हव नरकके अनेको भयानक चित्र हमारे मानस-पटलके सामने पेश करता है और कहता है— 'देखो, हमारे नियमोका पालन करो जो हमे स्वय ईश्वरसे प्राप्त हुए है। तुम्हे इन नियमो पर विचार करनेका कोई अधिकार नहीं—'खुदाकी वाते खुदा ही जानें'। वे तुम्हारी साधारण वुद्धिमे नहीं आ सकतीं। वे तुम्हारे वाक्यमनोतीत है। मानवीय वुद्धिमे यह शक्ति कहाँ कि वह ईश्वरके निगूढ भेदोंके समझनेकी आशा तक कर सके! रे क्षुद्र, खवरदार, सचेत होजा! चार ही दिनके पश्चात् वह घड़ी आ पहुँचेगी जव तुझे केवल हाथ ही मलना पड़ेगा, जव तेरे किये कुछ न वनेगा। एक दफा रंज हो जाने पर पीछे खुदा कुछ भी सुननेवाला नहीं है।"

इस रीतिके दोष।

यह कहनेकी अवश्यकता नहीं कि मज़हवके सभी नियम नैतिक नही होते। वहुतोका तो नीतिसे जरा भी सरोकार नही है। जैसे—कितनी वड़ी शिखा रखनी चाहिए, किस तरफ मुँह करके नमाज पढनी चाहिए, सप्ताहके किस दिनको पवित्र मानना चाहिए, किस तरफ मुँह करके खाना चाहिए, इत्यादि इत्यादि। मज़हवके अधिकाश नियम इसी प्रकारके है। इन नियमोका उल्लङ्घन कदापि क्षमा नही किया जा सकता, नैतिक नियमोंका उल्लंघन भले ही क्षमा कर दिया जाय। यहाँ पर यह स्वीकार करना पड़ेगा कि मज़हवका क्षेत्र जहाँ तक नीतिके क्षेत्रसे मिलता है

मज़हवके सारे नियम नैतिक नहीं होते।

वहाँ तक मजहबके द्वारा नीतिकी थोड़ी बहुत पुष्टि और रक्षा अवश्य हुई है।

साधारण मनुष्य भविष्यकी परवाह नहीं करता।

अब हमे इसकी उपयोगिता पर विचार करना चाहिए। इसका एक दोप मै पहलेही बतला चुका हूँ कि यह भय हमारे प्रेम और हमारी सहृदयतासे काम नहीं लेता। दूसरा दोष यह है कि अदृश्यके प्रत्यक्ष देखनेकी शक्ति सबमे एक समान नही है। भविष्यकी सब लोग कोई समान परवाह नहीं करते। दूरदर्शकसे दूर दर्शक मनुष्य भी पहले वर्तमानकी ही फिक्र करता है तब जनसधारणके विपयमे तो कहना ही क्या है। यदि मनुष्यकी प्रवृत्ति इसके विपरीत होती तो शराब, जना इत्यादिके कुपरिणामोको जान बूझ कर भी वह क्यो उनमें लिप्त होता? हत्याकी सजा मृत्यु है, चौरीकी सजा कैद है। ऐसा जान कर भी वह क्यो हत्या या चोरी करता? जब प्रत्यक्ष दण्ड ही हम लोगोको बुराईसे नही बचाता तो परोक्ष कहाँ तक बचावेगा? भविष्यकी अपेक्षा वर्तमानका ही अधिक प्रभाव पड़ता है। भविष्य अदृश्य है, अन्धकाराछन्न है। पश्चात् क्या होगा, इसका निश्चय कोई नही कर सकता। तब आओ जो अवसर है उसमे जहाँ तक हो सके अपना सुखसाधन कर लो, मजे उड़ाओ, रङ्गरलियाँ मनाओ, निष्प्रयोजन चिन्तासे अपने हास्य-हिल्लोलमे बाधा मत डालो, जो होना होगा होता रहेगा—

आक़बतकी ख़बर ख़ुदा जाने,
अभी तो आरामसे गुज़रती है।

बहुत लोगोका यही भाव होता है। इस लिए यह रीति सभीको दुष्कर्मसे निवृत्त और सत्कर्मकी ओर प्रवर्तित नहीं कर सकती। और यदि यह ऐसा कर सकती तो इतने दिनोके धर्म-साम्राज्यके बाद भी आज तक दुनियामे इतने अपराध इतनी बुराईयाँ क्यो बची रह जातीं?

इस रीतिका एक और दोष।

इसका एक तीसरा दोष भी है कि मनुष्यकी ज्ञान-वृद्धिके साथ साथ स्वर्ग नरकका विश्वास दिन प्रति दिन कम होता जाता है। दिन प्रति दिन यह गप्प और कल्पना मात्र समझा जाता है, अतः सदाचारको मजहबसे स्वतंत्र होकर दडायमान होना चाहिए। नहीं तो मजहबके नष्ट हो जानेसे सदाचारके भी नष्ट हो जानेकी सम्भावना है।

तीसरीरीति-नैतिक शिक्षा।

सदाचार-प्रचारकी एक तीसरी और सर्वोत्कृष्ट रीति भी है। पहले प्रमाणित किया जा चुका है कि नीतिकी स्थिति हमारे स्वभावमे है। हमारी नीति-बुद्धि हमे बाहरसे कदापि प्राप्त नही हुई है। और वस्तुओकी तरह यह भी हमे अपने मानव और पशु, दोनो पूर्वजोंसे विरासतमे प्राप्त हुई है। वंशानुक्रम और परिस्थितिके नियमोकी क्रियाके कारण इसकी जड़ हमारे भीतर और भी घुस गई है, यहाँ तक कि यह आज हमारे स्वभावका प्रधान अग बन गई है। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि बहुत लोग केवल भय या लोभके कारण बुरे कामोसे बचते हैं। परन्तु वे बहुत ही नीची श्रेणीके मनुष्य है, पशुओंके समान है, और विकासकी सबसे पिछली सीढी पर है। उनका मानवीय निःस्वार्थ स्वभाव अभी तक विकसित नही हुआ है। परन्तु इनसे सहस्रगुने अधिक ऐसे लोग है जिनके हृदयमे केवल भय या लोभ तथा स्वार्थ या स्वहितसाधनके अतिरिक्त दया, प्रेम या परमार्थका भी निवास होता है। मनुष्य जातिके गौरव बढानेवाले ऐसे बहुतेरे पुरुष है जो बिना कामनाके, बिना किसी प्रकारके भय या लोभके, केवल अपने स्वभावके ही वश होकर अच्छा काम करते हैं। क्या आप कह सकते है कि आप जितनी बार अच्छा काम करते है उन सभी अवसरो पर आप

यह सोच लेते है कि आप ऐसा करनेसे स्वर्ग प्राप्त करेंगे या ऐसा नहीं करनेसे आपको नरकमें जाना पड़ेगा? यदि किसी दीन हीनको देख कर आप उसके क्लेश-मोचनके लिए उछल पड़ते है, तो क्या आप कह सकते है कि उस समय आपको स्वर्ग या अन्य किसी पुरस्कारकी कामना होती है या आपसे उसका दुःख देख कर रहा नहीं जाता, आपका हृदय आपको चैन नहीं लेने देता? तीसरी रीति मनुष्यकी इन्हीं प्रवृत्तियोंका आश्रय लेती है। वह सत्कर्म करना मनुष्यका स्वभाव बनाना चाहती है। जिस तरह खाना या सोना हमारा सहज स्वभाव है, सत्कर्मको भी इसी प्रकार हमारा सहज स्वभाव होना चाहिए। इस लिए यह हमारे मनको ज्ञान और हमारे हृदयको सहानुभूतिके द्वारा रञ्जित और पवित्रित करके फैलाने और उन्नत करनेकी चेष्टा करती है। इस रीतिका नाम है—नैतिक शिक्षा।

नवाँ अध्याय ।

नैतिक शिक्षा

पूर्व अध्यायमे सदाचारप्रचारकी प्रचलित रीतियो पर विचार करते हुए कहा जा चुका है कि सदाचारप्रचारकी सर्वोत्तम रीति नैतिक शिक्षा है । मै अन्यत्र कई स्थानों पर कई वार कह चुका हूँ कि नैतिक शिक्षाका उद्देश्य कुप्रवृत्तियोका मूलोच्छेद करना होना चाहिए । नैतिक शिक्षासे वढ कर हमारे सच्चरित्र होनेका और कोई उत्तम उपाय नहीं है । इसलिए प्रत्येक पिताका यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह नीतिके उद्देशको एवं दुराचारके कुपरिणामोको अपने पुत्र और पुत्रियोंको हृदयंगम कराता जाय, यहाँ तक कि वयःप्राप्त होने पर सत्यमार्ग पर चलना उनका सहज स्वभाव हो जाय । *वालक नैतिक तत्वोंको अपने ज्ञान द्वारा हृदयस्थ करें न कि किसी धर्मग्रन्थ या धर्मशास्त्रके आदेश होनेके कारण । तभी सदाचारकी नीव दृढ़ और अचल हो सकती है, अन्यथा नहीं ।*

ज्ञानकी आवश्यकता ।

नीतिका असली आधार हमारे स्वभावमें है । हम इसको नित्य अच्छी तरह देखते हैं, पर अपने विचारोंको वैज्ञानिक दृष्टिसे न देखने तथा उनपर गवेषणा न करनेके कारण इसे भूल जाते है । किसी वद-चलन आदमीको देख कर हम हर दिन यह कहते है कि—"उसको झूठ, जना या चोरीकी आदत पड़ गई है, उस पर अच्छे उपदेशोका तुलसीदासके कथनानुसार क्या असर पड़ेगा ?—

सदाचारका असली आधार हमारे स्वभावमें है ।

फूलहिं फलहि न वेत, यदपि सुधा बरसहिं जलद।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलै विरंचि सम ॥

ऐसे अवसरो पर हम निस्सदेह मानते है कि पूर्व शिक्षा ही सब कुछ है ।

वह पूर्व-शिक्षा और पूर्व संगति के अधीन है।

हमारा अच्छा या बुरा स्वभाव, हमारी पूर्व शिक्षा, पूर्व सगति पूर्व विश्वासोके अधीन है। यह पूर्व कारणो द्वारा विनिर्मित होता है । *शरीरकी बनावटके कमज़ोर होने पर हम जिस प्रकार बीमारियोंको नहीं रोक सकते, उसी प्रकार हृदय और मनके दुर्बल होने पर कुवासनाओंके समुत्थित होनेको एवं अपने आपको कुमार्गमें जानेसे भी नहीं रोक सकते ।* * एक अपराधी स्वभाव और शिक्षाका मनुष्य लालच आ पड़ने पर कुकर्मोंसे उसी प्रकार नही बच सकता जिस प्रकार एक साधारण मनुष्य शिर:पीडा या शरीरपीड़ासे । स्वच्छ वायु, स्वच्छ भोजन, निर्विकार जल इत्यादिके न प्राप्त होने पर जिस प्रकार हमारा शारीरिक स्वास्थ्य बिगड़ जाता है, उसी प्रकार कुशिक्षा और कुसगतिसे हमारा मानसिक, हार्दिक तथा नैतिक स्वास्थ्य बिगड़ जाता है और जिस प्रकार अच्छे जल वायु, और अच्छी अच्छी ओषधियोके सेवन करनेसे हमे बीमारीसे छुटकारा मिलता है उसी प्रकार अच्छी परिस्थितियोसे—स्वच्छ परिष्कृत नैतिक वायुमण्डलमें रहनेसे हमारा मानसिक रोग भी दूर हो सकता है । पर जिस प्रकार भीग जाने पर बीमारी असाध्य हो जाती है, उसी प्रकार स्वभाव पड़ जाने पर—हृदय और मनके क्लिष्ट और कठोर हो जाने पर—लाख ओषधि करने पर भी हम अपने मानसिक रोगसे रहित नही हो सकते।

---

* देखो अध्याय दूसरा ।

हाँ, इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि विरले ही अवसरों पर यह नौबत पहुँचती है, नही तो अच्छी शिक्षा या अच्छी परिस्थितियोंका प्रभाव कम या अधिक हर किसी पर कुछ न कुछ अवश्य पड़ता है। *सब कुछ होने पर भी, हजारों दुष्कर्मोंके करने पर भी, मानव-हृदय इतना अधम या तुच्छ नहीं है।*

अतएव हमारा भला या बुरा स्वभाव वंशानुक्रम और परिस्थितियों-(laws of Heridity and environment) के अधीन है। "बच्चोंको बचपनसे ही नैतिक गरलका पान करते देखो, असंख्यो वेश्यालयो और मदिरालयोंको देखो, बड़ोंकी कठोरता और निर्लज्जता शिशुओंके द्वारा बचपनसे ही अवलोकन होती देखो, बड़ोंको झूठ, छल और चालाकीका उपदेश करते हुए सुनो, और तब कहो कि दुराचारकी उत्पत्ति और वृद्धि क्या प्लेग या विसूचिका जैसे संक्रामक रोगोंके समान नहीं होती ?"

परम्परा और परिस्थितियोंके बदलनेकी आवश्यकता।

* दुश्चरित्रता भी एक प्रकारकी छूतकी बीमारी है। इसलिए हमें अपनी परिस्थितियोंके परिवर्तन करनेकी बड़ी आवश्यकता है। हम वंशानुक्रम (Heridity) के प्रभावको तुरन्त नहीं मेट सकते, पर परिस्थितिपरिवर्तनसे इसका भी असर कम हो जायगा। हम पहले भी कह चुके हैं कि मनुष्यजाति पर वंशानुक्रमसे अधिक परिस्थितियोंका ही प्रभाव पड़ता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य चैतन्य है, वह इच्छा और ज्ञानसे युक्त है, चेष्टा करनेपर वह अपनी हर एक वासनाको अपनी इच्छासे दबा सकता है। और जिस प्रकार

* An Agnostics Apology–by Sir Leslie Stephen, P. 13. (Watts)

यह प्रत्येक राष्ट्रका कर्तव्य होना चाहिए कि वह ऐसे लोगोंको केवल दण्ड ही नही दे, वरन् उन्हे बढने और सन्तानोत्पादन करनेसे रोके या अन्य उपायो द्वारा समाजके सरसे उनका भार उतारे। प्रत्येक मनुष्यको अपनी सन्तानोकी सख्यापर नही वरन् उनके गुणो पर ध्यान देना चाहिए। जनसंख्याके अवाध्य बढनेसे भी बडी हानि होती है, क्योकि इससे सुयोग्यो और गुणवानोकी उन्नतिका मार्ग बन्द हो जाता है।

आदर्श समाजमें समाज और व्यक्तिका सम्बन्ध।

हम कई बार कह चुके है कि सदाचार हमारा सहज स्वभाव बन जाना चाहिए। आदर्श समाज वही कहलायगा जिसकी आदर्श शिक्षा स्वभावसे ही लोगोंके हृदयमे सद्वासनाओको जगा दे एवं जिससे कुवासनाये इस प्रकार भागे जिस प्रकार सूर्य्यकी गर्मीसे कपूर। सत्यका उद्देश्य सत्यके अतिरिक्त और कुछ नही होना चाहिए। सत्कर्मको सभी कामनाओसे शून्य होना चाहिए। सत्य स्वय साध्य है। आदर्श समाजमे इतना संगठन, इतनी एकता होनी चाहिए कि कोई आदमी समाजसे बिलग अपने अस्तित्वतककी कल्पना न कर सके—जहाँ कि सभीका हृदय वाद्य यन्त्रके तारोके समान, भिन्न भिन्न होने पर भी एक ही स्वरमे बज रहा हो। समाजकी एकता यहाँ परले दर्जे पर पहुँच गई है। किसी देहधारीके शरीरके समान सारा समाज एक हो रहा है। इस समाजके व्यक्ति अणुओ और परमाणुओके समान है। इस अवस्थामे सत्कर्म करना मनुष्यका सहज स्वभाव हो जाता है। पुरस्कार या सुख्याति प्राप्त करना भी उसका उद्देश नही होता। अच्छे कर्मोंके करनेकी उसे आदत पड जाती है, उसका स्वार्थ परमार्थमे बदल जाता है। बुरा कर्म करना उसके लिए असम्भव हो जाता है। चेष्टा

करने पर भी वह ऐसा नहीं कर सकता, क्योंकि स्वभावविरुद्ध जानेसे सभीको क्लेश होता है। यद्यपि इस आदर्शके यथार्थ होनेमे अभी बहुत देर है, तौभी यही आदर्श हमे अपनी आँखोंके सामने रखना चाहिए।

बुद्धि और हृदयके बढ़नेहीसे सदाचार बढ सकता है।

सदाचारको हम प्रथम अपनी बुद्धि और विवेक द्वारा और फिर अपने हृदय द्वारा सीख सकते हैं। हमारी बुद्धि हमसे कहती है—"दूसरोके साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम अपने साथ किया जाना पसन्द करते हो।" साधारण आत्मरक्षाके लिए भी हमे सदाचारयुक्त होनेकी आवश्यकता है। अनुमान करो कि यदि सब लोग हमारी ही तरह दुराचारी हो जायँ, कोई किसीकी जान माल प्रतिष्ठा सन्मानका खयाल न करे, तो ऐसी अवस्थामे हमारे प्राण या संपत्तिकी ही रक्षा किस प्रकार होगी। हम कहते हैं कि हमें स्वार्थसे ही गरज है, दूसरोंकी हम कोई परवाह नहीं करते। परन्तु यदि दूसरे भी इसी प्रकार सोचने लग जायँ तो इसका क्या परिणाम होगा? हम दूसरोंकी जानकी परवाह नहीं करते तो हमारी हत्यासे कौन कुण्ठित होगा? हम दूसरोंके साथ सदा झूठ बोलेंगे तो हमारे साथ सच कौन बोलेगा? हम दूसरोको धोखा देंगे तो स्वयं भी धोखा खायँगे। इस प्रकार हम जैसा करेंगे वैसा ही हमारे साथ भी किया जायगा। सदाचार पर ही समाजकी स्थिति है। यदि केवल दुराचार ही रह जाय तो समाज उसी क्षण छिन्न हो जायगा और साथ ही साथ हर व्यक्तिके सुख-शान्ति आनन्द-मङ्गलकी भी इतिश्री हो जायगी। अतएव हमारी बुद्धि हमे उन कामोंके करनेके लिए उत्तेजित करती है जिनसे समाजका हित हो और उन कामोंसे बचनेके लिए जिनसे उसकी हानि हो।

द्वितीय हमारे भाव और जजबात (Emotions) हमे सच्चरित्र होनेकी शिक्षा देते है । सच्चरित्रताकी जड शौपेनहौरके कथनानुसार हमारी सहृदयतामे है-उस सहृदयतामे जिसके द्वारा हम अपनेको दूसरोकी अवस्थामे रख कर उनके सुख दु:खका अनुभव करते है,उनके आनन्दसे आह्लादित और उनके दु:खसे कातर होते है; उनके हँसनेसे गुलाबके फूलके समान खिल उठते है और उनके रोनेको देख कर आँसुओकी मूसलधार वृष्टि करते है—उस सहृदयतामे जिसके कारण हमारा चित्त दूसरोके चित्तके साथ तन्मय हो जाता है, हम अपने और दूसरोमे कोई भेद नही देखते, जिसके द्वारा हम प्रत्येक हृदयमे अपने ही तारको झन-झनाते पाते है—सक्षेपमे उस सहृदयतामे जिसके कारण हमारा पृथक् अस्तित्व ही नही रहता, जिसके कारण हम क्षुद्र नही विराट् सर्वव्यापी हो जाते है, जिसके कारण हम हर मृत्युके साथ मरते है और हर जन्म-के साथ जीवन धारण करते है—उस सहृदयतामे जिसके द्वारा सूर्य्यके तेजमे, चंद्रमाकी उज्ज्वल हॅसीमे, विहगोके कलरवमे, फूलोके माधुर्य्य और सुगन्धमे, तान-तरङ्गिनी निर्झरिणियोके झरझरमे अपने ही अस्तित्व-को पाते है ।

सच्चरित्रता-की जड सहृदयतामें है ।

दुश्चरित्रताकी उत्पत्ति ज्ञान और हृदयकी न्यूनताके ही द्वारा होती है । इन दोनोंके बढनेसे ही सभी बुराइयोंकी इतिश्री होगी । ज्ञान और सहानुभूतिमें—मस्तिष्क और हृदयमे—विरोध नही है । ज्ञानवान् मनुष्य ही अधिक सहृदय होता है । जिस मनुष्यका मस्तिष्क उन्नत हो चुका है वही मनुष्य अपनी अनुमान शक्तिके द्वारा अपनेको दूसरोकी अवस्थामे रख कर उनके सुख दु:खमे भाग ले सकता है । मूर्खों और अज्ञानियोका मस्तिष्क ही नहीं बल्कि उनका हृदय भी सकु-चित और स्वार्थसे परिपूर्ण होता है ।

सदाचार और दुराचार केवल स्वभावकी बात है। इसलिए इस बातकी बड़ी आवश्यकता है कि अच्छी शिक्षा और परिस्थितियो द्वारा हम इस स्वभावको उन्नत और पूर्णत· विकासित करे।

हम पिछले एक अध्यायमे देख चुके है कि सदाचारकी उत्पत्ति प्राकृतिक नियमो द्वारा ही हुई है। यह हमारे स्वभाव-विरुद्ध नहीं है। हम देख चुके है कि धर्म या मज़हब हमे सच्चरित्र नही बनाता. वरन् युग युगान्तरका सञ्चित अनुभव ही हमसे सच्चरित्र होनेका अनुरोध करता है। हमारी बुद्धि या हमारा हृदय सदा सदाचारका उपदेश करते है। सच्चरित्र होना मनुष्यके लिए स्वाभाविक है। जिनमे समझकी, ज्ञानकी, हृदयकी, कमी है वेही दुश्चरित्र होते है। इसलिए अधर्म, पाप, या दुराचार एक प्रकारकी बीमारी समझी जाती है। यह बीमारी अकसर ओषधि द्वारा तथा मस्तिष्कके कुछ फोड़ोके चीरने (Operation) या स्वयसम्मोहन (Autosuggestion) इत्यादि अन्य उपायो द्वारा आराम की गई है। मद्योन्माद—शराबकी अदमनीय तृष्णा—(Dipsomania), अफीमोन्माद (morphinomania) चौर्य्योन्माद (Kleptomania), कामोन्माद (Nymphomania), वृष्णोन्माद (Satyriasis) इत्यादि बहुतसी सदाचारसम्बंधी बीमारियॉ स्वाभाविक और प्राकृतिक रीतिसे आराम की गई हैं। ×

दुराचार एक प्रकारकी बीमारी है।

"पाप और अपराध करनेका कारण क्या है? मज़हब इसका यही उत्तर देगा कि—शैतान, या मनुष्यकी पापात्मा। परन्तु विज्ञानका क्या उत्तर है? ग्लासगोके डाक्टर मैक इर्विन 'लान्सेट' पत्रमे

× देखो Vivian—The Churches and Modern Thought P. 259.

लिखते है कि एक मजदूर सीढीसे गिरने पर अपराधी स्वभावका हो गया । चोट आनेके कारण उसके दिमागमे एक गिल्टी पैदा हो गई थी जो नश्तर द्वारा हटाई गई । उसी समयसे उस मनुष्यका बुरा स्वभाव भी जाता रहा । डाक्टर लिङ्स्टन कहते है कि फ्लेक्स साहबने पचास अपराधियोके दिमागकी परीक्षा की । सभोमे कुछ न कुछ अपूर्णता पाई गई । डाक्टर लिङ्स्टन कहते हैं कि "यह एक दिन पूरे तौरसे सिद्ध हो जायगा कि बुराइयॉ और अपराध डाक्टरो द्वारा छुडाये जा सकते है, धर्म और कानूनके दण्ड द्वारा नहीं ।" बुराई उसी समय अन्तर्हित होगी जिस समय यह समझा जायगा कि उसका आविर्भाव दिमागकी अपूर्णता या मानसिक विकारो द्वारा होता है—*जब कि दिमागकी बीमारीको लोग आत्मा या रूहकी बीमारी नहीं समझेंगे* * ।"

सदाचारकी साधारण प्रवृत्ति ।

सदाचार द्वारा ही समाजकी उन्नति या वढती होती है । इसे प्रायः हर कोई मानता और समझता है । केवल यथेष्ट वलसे युक्त न होनेके कारण वह अपने विचारके अनुसार नही चल सकता । उसमे सत्प्रवृत्तियोकी अपेक्षा कुप्रवृत्तियॉ ही अधिक वलवती होती है और इस लिए वे विजय प्राप्त करती है । सत्प्रवृत्ति उसे कुप्रवृत्तिके कुपरामर्श पर चलनेसे नही रोक सकती। इसलिए सदाचारके महत्त्वको समझते हुए भी लोग इसे धारण नही करते । बुरेसे बुरा मनुष्य भी यह नही चाहेगा कि सब लोग उसीके समान हो जायॅ, बुरेसे बुरा मनुष्य भी दूसरोको सदुपदेश ही देगा । अतएव सदाचारकी शिक्षा देनेके लिए हमे मनुष्यको बाहरसे कुछ नही देना है, वरन् हमे उसकी अन्तरस्थ प्रवृत्तियोको मजबूत करना है ।

---

* Vivian—The Churches & Modern Thought, P 334 (Watts)

दसवाँ अध्याय ।

मज़हब और सदाचार ।

१-संसार-स्वप्न ।

मज़हबी लोगोंका कथन कि मजहब ही सदाचारका मुख्य स्तंभ है ।

जिन पाठकोंने हमारे पूर्व अध्यायोंको ध्यानपूर्वक पढा है और उन पर विचार किया है उनको यह पूर्णरूपसे विदित हो गया होगा कि सदाचारकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई और उसकी नीव कितनी गहरी और प्रबल है । साथ ही वे यह भी जान गये होंगे कि वंशानुक्रम और परिस्थितियोंके नियमों तथा शिक्षाके द्वारा सदाचार किस प्रकार सभ्य मनुष्यके स्वभावका एक अंग हो गया है और प्रत्येक राष्ट्रके उन्नत और स्थायी होनेके लिए इसकी कितनी आवश्यकता है । पाठकोंने यह भी देखा होगा कि केवल नैतिक शिक्षाहीके द्वारा सदाचार हमारी रगो और रेशोंमें किस प्रकार भरा जा सकता है और वे यह भी अनुमान कर चुके होंगे कि बिना मज़हबके भी सदाचार सम्भव है । परन्तु मजहबी लोगोंका यह कथन है और सर्व साधारणका भी यही विश्वास है कि मजहब ही सदाचारका मुख्य स्तम्भ है और इस स्तम्भके हटाये जानेके साथ ही तत्क्षण सदाचारका सुन्दर गगन-स्पर्शी मन्दिर धराशायी हो जायगा । अब हम मज़हबी लोगोंके इसी कथन पर विचार करना चाहते हैं ।

यदि हम लोग यह विचार करे कि मजहव कितने समयसे और किस दृढताके साथ मनुष्यके ऊपर अपना आधिपत्य जमाये हुए है तो मजहवी लोगोका उपर्युक्त कथन हमे सर्वतः स्वाभाविक प्रतीत होगा। निःसन्देह संसारमे धर्मकी शक्तिके वरावर दूसरी कोई शक्ति नहीं है। पाठको, एक वार ससारके इतिहास पर दृष्टिपात कर देखो। मजहवके नाममे कैसा जादू है ! धर्मके नाम पर मनुष्यने सर्वस्व त्याग किया है, स्वार्थको तिलाजलि दी है, वह मानवहितके लिए कटिवद्ध हुआ है एव प्रल्हाद और क्राइस्टके समान आत्मोत्सर्गसे भी नही डरा है। नहीं नहीं, ससार-कल्याणके निमित्त उसने प्रसन्न-वदन, और धीर-हृदयसे अपने सुख, शान्ति, आराम, स्त्री, पुत्र, जीवन. प्राण, सभीको माता जगदम्बाके सामने धधकती अग्निमे स्वाहा कर डाला है, केवल एक ईश्वरके नामका आसरा रखकर वह ससारके क्लेशविमोचनको तैयार हुआ है और यदि पहाड़ भी सामने आया है तो उसे भी उल्लघन करनेसे वह नहीं डरा है। धर्मवलसे युक्त होनेके कारण साधारण मनुष्योने भी राजराजेश्वरोकी धमकी तकको कुछ नही समझा है और सारी दुनियाके क्रोध तककी कुछ परवाह नहीं की है। यदि अग्निमे डाला गया है तो उस अग्निको चन्द्रमासे भी शीतल अनुभव किया है, यदि सूली पर चढाया गया है तो सूलीकी नोकको गुलावके कॉटेसे भी साधारण समझा है। परन्तु हाय, उसी मजहवके नामपर मनुष्यने शोणितकी सरिताये भी वहाई है, देश विदेश विजय किये ...याचार किये है, रक्तपात किया है, पिताने पुत्रकी, पुत्रने पिता-... इष्टमित्रोकी हत्याये की है, ज्ञानका द्वार वन्द किया है;

मजहवका वल और प्राचीनत्व। उसके कार्य्य—अच्छे और वुरे।

ब्रूनो और गलीलियो प्रभृति वैज्ञानिको और दार्शनिको पर अत्याचार किये है; सुकरातको जहरका प्याला पिलाया है; बुद्ध पर जुल्म किया है और क्राइस्टको सूली पर चढाया है। मजहबहीके कारण मनुष्यने ज्ञानकी ज्योतिकी अपेक्षा मूर्खता और मूढ विश्वासके अन्धकारको पसन्द किया है तथा सभी प्रकारकी उन्नतियोका पथावरोध किया है। मजहबहीके नामपर मनुष्यने वेद पढनेके लिए शूद्रोका जिह्वाच्छेद और शरीर-भेद किया है; मजहबहीके कारण अनेक कुत्सित जघन्य और पैशाचिक रीतियोका जन्म हुआ है और अनेक अश्लील पूजाओका आविष्कार हुआ है * । मजहबहीके नाम पर मनुष्य-ने अपने हृदयको कठोर बनाया है और दया सहानुभूतिको निर्वासित कर उसे घृणा और निर्दयताका निवासस्थान बनाया है। मजहबहीके नाम पर लडाइयाँ छिडी है, मजहबहीके कारण एक धर्म और एक सम्प्रदायके आदमीने अन्य धर्म और अन्य सम्प्रदायके आदमीको कुत्तेसे भी बुरा समझा है ! !

मज़हबकी असीम शक्ति।

इस लिए मजहबी लोगोके उपर्युक्त कथनमे जरा भी अस्वाभाविकता नही है। नही, बहुतसे सच्चे और विचारवान् पुरुष भी जो स्वय किसी धर्ममे विश्वास नही रखते उपर्युक्त कारणसे मजहबके सत्यासत्यके विषयमे न कोई जॉच पडताल करते है और न विचार ही करना चाहते है। पाठकोको चाहिए कि वे थोडी देरके लिए मजहबकी प्राचीनता पर और मानव-इतिहास पर उसके जो अद्भुत परिणाम हुए है उनपर विचार करे।

---

* कौलिक और वाममार्ग आदि सम्प्रदाय इसके प्रमाण है। योरोपमे भी ऐसे सम्प्रदायोंकी कमी नहीं है।

"शताब्दियोंसे मज़हब, देवता, और ईश्वरविश्वासने मनुष्यके हृदय तथा मस्तिष्कमें बहुत गहरी जगह कर रक्खी है। उस प्राचीन समयमें—जो इतिहासकी दृष्टिसे बाहर है—मज़हब ही मनुष्यके जीवनका केन्द्र था। जरा मोलककी भीषण पूजाका भी अनुमान कर ले जिसमे कि माताये अपने लाडले, जीवनाधिक, प्राणसे भी प्यारे बच्चोको मूर्तिके अग्निमय हृदयमे डाल आती थीं! ×टेट्ज़कैटिलिपोकाकी रोमांच पैदा करनेवाली पूजाका स्मरण करे

× प्राचीन मेक्सिकोके नरमेधको स्मरण करके किसे रोमाच न हो आयगा।

प्राचीन मेक्सिकोका नरमेध।

मेक्सिकोके देवता सदा नररक्तके प्यासे रहते थे। सभी इतिहासज्ञ सहमत होकर कहते हैं कि इस साम्राज्यमे प्रति वर्ष २०,००० से कम मनुष्योंका वलि नही होता था। अनेक इतिहासज्ञ इस सख्याको ५०,००० वतलाते हैं। सिर्फ एक देवताको प्रसन्न करनेके लिए एक मर्तवा (प्रेस्कौटकी गणनानुसार) कमसे कम ७०,००० लड़ाईके कैदी वलिदान किये गये थे।

देवताओंके लिए वलि प्राप्त करनेके निमित्त प्राचीन मेक्सिकोके लोग अकसर लड़ाई आरम्भ करते थे। देवताओंके लिए वलि प्राप्त करना कितना आवश्यक समझा जाता था इसको दिखलानेके लिए प्रेस्कौटने मेक्सिकोकी दो जातियोके बीचके एक विचित्र समझौतेका उल्लेख किया है। उसके अनुसार एक समरक्षेत्र निश्चित किया हुआ था जहाँ नियत समय पर दोनो जातियोके लोग सग्राम करते थे और विजेता पराजितोको वन्दी करके ले जाते थे और उन्हे देवताओं पर भेंट चढा देते थे। परन्तु विजेताको पराजित जातिके देशपर आक्रमण करने या उसपर आधिपत्य जमानेका कोई अधिकार न था ओर अन्य सभी बातोंमे ये दोनो जातियाँ मित्रता निवाहा करती थीं।

मेक्सिकोके देवी-देव केवल पुरुषोंहीका नहीं स्त्रियों और बच्चोका भी रक्तपान करते थे। वहाँकी प्रधान देवी 'सेण्टिऔट्ल'को स्त्रियोंकी वलि दी जाती थी। (See Pagan Christs by J M Robertson, p 392)

जिसमे कि पिता अपनी सबसे सुन्दर पुत्रीको बलिदानके निमित्त यज्ञके छुरेके समर्पण कर आता था।

मेक्सिकोके वरुण (ट्लैलोक)को बच्चोंकी बलि दी जाती थी और यह बलिदानकार्य बड़े समारोहके साथ सम्पादित होता था। उन बच्चोंको लोग सुन्दर वस्त्रों, आभूषणों और वसन्तके नये सौरभपूर्ण पुष्पोंसे सुसज्जित करके पालकियोंमें बिठलाकर देवताओंके निकट ले जाते थे और इसके बाद उनका वध किया जाता था।

बलिदानकी विधि भी बड़ी भीषण होती थी। मनुष्यको पत्थर पर लेटाकर उसे मजबूतीसे पकड़े रहते थे। तत्पश्चात् प्रधान पुजारी घातक फ्लिंट (चकमक) पत्थरके चाकूसे उसकी छाती काटकर उसमेंसे उसका कम्पायमान कलेजा निकाल लेता था। यह पहले सूर्यको दिखलाकर फिर देवताके चरणोंमें समर्पण किया जाता था। इस अवसर पर एक पूरा त्योहार मनाया जाता था। उच्चकुलसम्भूत राजपुरुषगण शेष मांसको पकाकर मित्रों और अन्य सगियोंके साथ मिलकर भक्षण करते थे। इसमें स्त्रियाँ भी शरीक होती थीं और शराबका भी दौर चलता था। इसका अवशेष क्रिस्तान मजहबमें अब भी मौजूद है। क्रिस्तान लोग यद्यपि नरमांसभक्षण नहीं करते तथापि उनका यह अनुमान है कि रोटीका वह टुकड़ा जिसे वे खा रहे हैं, क्राइस्टका मांस है और वह शराब जिसे वे पी रहे हैं क्राइस्टका रक्त है। See Prescott's—History of the Conquest of Mexico (1878) pp 36-41.

मिस्टर जे० एम० रॉबर्टसनने अपनी पुस्तक "दी पेगन क्राइस्ट्स" में यह सिद्ध कर दिया है कि नर-बलिदान एक समय समस्त मानव जातिमें प्रचलित था। यहाँ उसके उदाहरणोंके उल्लेख करनेका स्थान नहीं है, अतएव केवल पुस्तकका हवाला देकर ही सतोष करना पड़ता है। See Pagan christs by J. M. Robertson watts (1903) pp. 119-24. उक्त पुस्तकसे यह भी पता चलता है कि बलिमांस भक्षण करनेकी प्रथा भी एक समय व्यापक रूपसे प्रचलित थी। Ib.pp.131-36

इसके सिवाय पाठक ड्रूइड तथा प्रत्येक सभ्य जातिके पूर्वजोके नरमेधको भी क्षण भरके लिए याद करे,* साथ ही साथ ऐसे लोगोका भी चिन्तन करे जिनका सर्वस्व परमात्मा ही है, जो अणु परमाणुमे, बादल बिजलीमे, हवा और जलमे, ईश्वरका चमत्कार देखते है । आओ, इन पर नजर डालो और तब कहो कि मजहबमे क्या शक्ति, क्या जादू, क्या असर ह । परन्तु सत्य सभी मजहबो, सभी मतो, सभी धर्मसम्प्रदायोसे महान् और श्रेष्ठ है । मजहब बदलता, है पर सत्य नहीं बदलता । मजहबकी मृत्यु हो जाती है, पर सत्य अजर, अमर और अपरिवर्त्तनीय है । प्रत्येक युगके वेद और बाइबुल भिन्न भिन्न होते है, पर सत्य कदापि नहीं बदलता ।

परन्तु सत्य मजहबसे भी महान् है।

परित्यजेच्च त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः ।
यद्वाप्यधिकमेताभ्यां न तु सत्यं कथंचन ॥
त्यजेच्च पृथिवी गन्धमापश्च रसमात्मनः ।
ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं वायुः स्पर्शगुणं त्यजेत् ॥
प्रभां समुत्सृजेदर्को धूमकेतुस्तथोष्मतां ।
त्यजेच्छब्दं तथाकाशं सोमः शीतांशुतां त्यजेत् ॥
विक्रमं वृत्रहा जह्यात् धर्मं जह्याच्च धर्मराट् ।
नत्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथंचन ॥
—महाभारत, आ० प० १०३, १४–१८ ।

भावार्थ—“ त्रैलोक्यके राज पर लात मारना, स्वर्ग साम्राज्यको परित्याग करना, एव इनसे भी बढ कर यदि कोई भी वस्तु हो तो उसे भी परित्याग करना मुझे स्वीकार है; परन्तु सत्यसे विलग होना मुझसे कदापि सह्य न हो सकेगा । पृथ्वी, जल, वायु, ज्योति, सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा ये सब अपने गुण, अपनी प्रकृतिको छोड दे; परन्तु मै सत्य-

* Religion of Woman by Joseph McCabe.

अतएव मज़हबके सत्यासत्य पर विचार करनेमें कोई हर्ज नहीं है।

को किसी भी प्रकार न छोड़ूँगा।" ये बाबा भीष्मके वचन हैं। अतएव यदि किसी वस्तुके सत्य या असत्यका प्रश्न हो तो हमे उस पर विचार करनेसे कुण्ठित नही होना चाहिए। इमरसनने कहा है कि "परिणामके भयसे विचारको छोड देना कापुरुषताका लक्षण है।"

क्योंकि प्रचलित मजहब सदासे नये मतों, विचारों और आदर्शोंका प्रतिरोध करता आया है।

जब जब मानव-इतिहासमे किसी नये धर्म, नये विचार, या नये आदर्शने जन्म ग्रहण किया है, तब तब यही चिल्लाहट मचाई गई है कि देखो प्राचीन धर्म, आदर्श या विचार पर किसी प्रकारका साधारण आघात भी मत करो; इससे सारा समाज टुकड़े टुकडे हो जायगा, धर्म और सदाचारका पूर्ण विनाश हो जायगा, मानव-हितका गला घुट जायगा। इसी कारण लोग क्राई-स्टको सूली देकर शान्त हुए थे, मुहम्मदके रक्तके प्यासे और बुद्धकी जानके गाहक हो गये थे। आधु-निक समयमें वैज्ञानिको पर इसी कारण योरोपमे इतना अत्याचार हुआ था। अतएव मजहबकी उपयोगिता पर विचार करनेमे हमे तनिक भी भयभीत होनेकी आवश्यकता नहीं है। हमे दृढता, निष्पक्षता और गम्भीरताके साथ विचार करना चाहिए। साथ ही साथ हमे मजहबकी प्राचीनता और इसके बलको भी न भुला देना चाहिए।

मजहबी लोगोका यह कथन सर्वथा भ्रमपूर्ण है कि मजहब ही सदा-चारका रखवाला है और बिना मजहबके सदाचारका सर्वथा नाश हो जायगा। स्वर्ग और नरकके भयसे मनुष्यको सच्चरित्र बनाना बच्चेको हौआ या भूतके भयसे शान्त करनेके समान है। यह मनुष्यके गौरवको शोभा

मज़हबी लोगोंका उक्त कथन सर्वथा भ्रम-मूलक है,

नही देता और उसे बहुत कम कर देता है। मनुष्यको इस उपायसे सच्चरित्र बनाना मानो उसे पशु, सम्पूर्णतः ज्ञानहीन और दया सहानुभूति इत्यादि सभी गुणोसे रहित माननेके बराबर है। इतना ही नही। हम देख चुके है कि ईश्वरका तथा स्वर्ग नरकका विश्वास भी मनुष्यको सच्चरित्र बनानेमे सर्वथा असमर्थ है।

सदाचार मज़हबसे स्वतंत्र है।

सदाचारकी स्थिति किसी मत या मजहब पर नही है जो प्रति दिन बदला और मरा करता है। सदाचारकी उत्पत्ति मनुष्यके अनुभव तथा प्राकृतिक नियमो द्वारा हुई है। प्राकृतिक चुनावके नियमने ही मनुष्यको सच्चरित्र होनेकी शिक्षा दी है। अतएव सदाचार चिरस्थायी रहेगा, चाहे मजहब रहे या न रहे। सदाचार हमारे स्वभावका एक अङ्ग है और यह जेन्दावस्ता, कुरान, वेद और बाइबुलसे प्राचीन है। किसी मनुष्यको वेद वेदाग, उपनिषद पुराण, ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कर, गणेश, सबमे, अविश्वास हो सकता है, परतु प्रेममे, सत्यमे, कर्तव्यमे, दयामे, सहानुभूतिमे किसे आविश्वास होगा? यदि किसीको है तो वह मनुष्य नही, मनुष्यसे बहुत ही नीचा—पशु है. नही नही उसे अवश्य कोई मानसिक बीमारी है। अतएव यदि मजहब सदाचारप्रचार या नैतिक शिक्षा प्रदान करनेको अपना कर्तव्य न समझे, यदि पडित और पुरोहित, गिरजा और मन्दिर, रीति और रिवाज, यज्ञ और उपवास तथा अन्य भ्रमप्रमाद और हठोक्तियोंसे अपना पिण्ड न छुडावे, तो उसे सदाचारका सहायक और सरक्षक नही वरन् उलटा उसका प्राणघातक शत्रु समझना चाहिए।

अब हमे मजहबी लोगोके उपर्युक्त तर्कका उत्तर देना चाहिए। यह अस्वीकार नही किया जा सकता कि *अति प्राचीन*

समयमें मज़हबने मनुष्यजातिका बहुत कुछ उपकार किया है।

मजहबी लोगोंके तर्कपर विचार। प्राचीनताका पक्षपाती होनेके कारण मज़हब सभी प्रकारकी उन्नतियोंके प्रतिकूल है।

सभी प्राचीन जातियोंने साधारणत: मज़हबहीके द्वारा अपनी नीति, अपने नियम, अपना विश्वास, अपने रहन सहनके कायदे, नहीं नहीं व्यवहारिक जीवनके समस्त आईन भी, प्राप्त किये हैं और कदाचित् अन्य प्रकारसे वे इन्हें एकदम ग्रहण भी न करते। परन्तु इस स्थान पर हमें विचार करना होगा कि नैतिक उन्नति मज़हबकी स्पष्ट सहायतासे हुई, या मज़हबको उल्टा इससे विरोध था। यदि संसारके इतिहास पर एक बार नजर डाली जाय, यदि बुद्ध और क्राइस्ट, लूथर और नौक्स, कल्विन और ज्विगली, चैतन्य और मुहम्मद, दयानन्द और राममोहन, सैक्रेटिज़ और डिमॉक्रिटस, ब्रूनो और गलीलियो, लायल और हक्सली, डारविन और स्पेन्सरकी उन यन्त्रणाओंका स्मरण किया जाय जो उन्हें मज़हब और समाजके हाथों भुगतनी पड़ी थी तो कहना पड़ेगा कि *मजहब उन्नतिका पथ-प्रदर्शक नहीं बल्कि उसका पथावरोधक है। प्रत्येक मज़हबने प्राचीन रीति-रस्म, प्राचीन नीति और विचारके सरक्षणको अपना परम कर्तव्य माना है और इसी लिए यदि कभी किसी नूतन विचारने ससारमें जन्म ग्रहण किया है तो उसे 'येन केन प्रकारेण' मार डालनेको ही अपना परम कर्तव्य माना है* और इस निमित्त किसी भी यत्नको उज नहीं रक्खा है। बहुत खेदके साथ कहना पड़ता है कि जो *मजहब स्वयं बड़े बड़े कष्ट झेल कर पहाड़के समान कठिनाईयोंको टाल कर विजयी हुआ है वह भी विजय प्राप्त करने पर अपनी कठिनाईयोंको* एकदम भूल गया है *और*

नूतन मत और नूतन विचारको उसने उसी प्रकार दुःख पहुँचाया है जिस प्रकार उसे स्वयं पहुँचा था। साराश यह है कि मजहब उन्नतिके अनुकूल नहीं, वरन् प्रतिकूल है; क्योकि मजहब प्राचीनता और स्थिरताको पसन्द करता है, उन्नति, परिवर्तन और नवीनताको नहीं। उन्नतिका अर्थ ही परिवर्तन या नवीनता है। *स्वतंत्रता, और नवीनता उन्नतिके ही लक्षण हैं और मजहब इन दोनोंका शत्रु है।*

इसी कारण हम देखते हैं कि मजहवी लोग नीच जातियोकी उन्नति तथा अन्य आवश्यकीय सुधारोको रोकनेके लिए वेदो तथा सनातन धर्मकी दोहाई देते है और इन सवको घोर कलियुगका प्रभाव समझ कर अपने व्यथित चित्तको सतुष्ट किया करते है।

मज़हब और सदाचारके क्षेत्र और उद्देशमें बड़ी भिन्नता है।

मजहब कहाँतक नीतिका सहायक है इसे स्पष्ट करनेके लिए हमे दोनोके क्षेत्र पर विचार करना होगा। मजहबका उद्देश मनुष्यको इस लोकमे सच्चरित्र बनाना नही है, वरन् परलोकमे उसे मुक्ति या स्वर्ग प्रदान कराना है। परन्तु नीतिका क्षेत्र यही दुनिया है, उसे परलोकसे कोई सरोकार नही। ईश्वर या देवताके साथ नहीं वरन् मनुष्यके साथ हमारा क्या व्यवहार और क्या सम्बन्ध होना चाहिए, नीति-शास्त्र इसी पर विचार करता है। मजहब और नीतिका क्षेत्र कभी कभी मिल भी जाता है; परन्तु यह एकदम आकस्मिक है। मज़हब और नीतिमे मौलिक भेद है। मजहवका क्षेत्र ही दूसरा है। इस मौलिक भेदको हमे सदा याद रखना चाहिए। यदि मजहव हमे इस दुनियामे भी सच्चरित्र होनेको कहता है तो इसका मतलव यह नही कि सदाचार-प्रचार महजवका काम ही है, वल्कि इस निमित्त कहता है कि हमे मरनेके पश्चात् एक सत्कर्मके वदले स्वर्गके हजारों

सुख प्राप्त हों, हमें अपने कुकर्मोंके लिए परलोकमे दुःख और दण्ड न सहना पड़े तथा नरककी अग्निमे न जलना पडे।

गरज़ अच्छा काम करना एक प्रकारसे व्यापार करना है—हमारे देशके आधुनिक महाजनोंकी तरह किसीको कर्ज़ देना है जिसके लिए सूद क्या दर सूद तक मिल सकता है। सत्कर्मको आक़बतका सौदा समझना चाहिए। मज़हब सम्पूर्णतः परलोककी चीज है और सदाचार इस लोककी। जब मजहब और नीतिके उद्देशमे इतना अन्तर है तब हम स्वभावतः विचार कर सकते है कि हेतु-साधनके उपायोंमें भी कितना अन्तर होगा। स्वर्गके आनन्द तक ले जानेवाली सड़क उस सडकसे अवश्य भिन्न होगी जो हमें केवल इसी संसारके आनन्द तक ले जाना चाहती है। *इस लिए सत्य या सदाचार मज़हबके लिए उतने महत्त्वका नहीं है जितना कि पूजाकी विधि, किस मन्त्रको किस प्रकार उच्चारण करना चाहिए एक या अनेक वार, पूजाके समय मुख किस ओर होना चाहिए, इत्यादि इत्यादि।* याद रहे कि सदाचारका उल्लङ्घन ईश्वर क्षमा भी कर सकता है; परन्तु धर्मके इन नियमोंका उल्लङ्घन कदापि नहीं कर सकता *। मजहबी लोगोंके लिए

अतः हेतु-साधनके उपायोंमें भी बहुत अन्तर पाया जाता है।

---

* मजहबके द्वारा मनुष्य किस प्रकार शुद्ध सदाचारको छोड़कर मिथ्या और निरर्थक आचार-नियमोंको सब कुछ मानने लगता है, यह कर्नल इंगरसोलकी निम्न कथासे पूर्णत. व्यक्त होता है,—

मजहबकी सभी आज्ञायें नैतिक नहीं होतीं।

"किसी आदमीने हत्या की। गवाही और सबूतका परिमाण उतना था कि उसने अपराध स्वीकार कर लिया। जज और अभियुक्तसे इस प्रकार बातचीत हुई—

"तुमने यह महान् दुष्कर्म क्यों किया?"

संसार स्वप्न है ।

संसार अनित्य है, जीवन क्षणभंगुर है, यह लोक मिथ्या है । यथार्थ केवल परलोक ही है, नित्य केवल ईश्वर है । *तब वे इस दुनियाकी परवाह—इसके उन्नत और श्रेष्ठ बनानेकी चेष्टा—क्यों करेंगे ?* क्षणिक सुखके लिए अनन्त सुख, और अनित्यके लिए नित्यको क्यो परित्याग करेंगे ? क्या कोई बुद्धिमान आदमी ऐसा कर सकता है ? अनुमान करो कि कोई मनुष्य रेल पर सवार होकर कही जा रहा है । गाड़ीमे भीड़ बहुत है । उसे पैर

"धनके लिए ।"

"क्या तुम्हें कुछ धन प्राप्त हुआ ?"

"हॉ ।

"कितना ?"

"चार आने ।"

"तुमने उसका क्या किया ?"

"खर्च कर डाला ।"

"किस चीज में ?"

"शराबमे ।"

"उस मनुष्यके पास और क्या था ?"

"एक वर्तनमे उसका भोजन—कुछ मास और रोटी ।"

"तुमने उसका क्या किया ?"

"रोटीको मै भक्षण कर गया ।"

"और मासको ?"

"उसे मैंने फेंक दिया ।"

"क्यों ?"

"इस लिए कि वह शुक्रवारका दिन था ।"

शुक्रवारके दिन मास खाना इतना वड़ा पाप और अपराध समझा जाता था कि मध्य युगके अन्ततक लोग इस अपराधके करनेपर जीवित अग्निमे जला दिये जाते

फैलानेको भी स्थान नहीं मिलता। उसके पास सामान भी बहुत थोड़ा है। क्षुधा तृष्णा भी उसे सता रही है। इस तरह उसे अनेक प्रकारका कष्ट है। अब इस अवस्थामे वह मनुष्य क्या करेगा? वह इन तकलीफोकी परवाह न करेगा। सोचेगा कि दो चार घण्टेका मामला है, जिस तरह कटे काट लेना चाहिए। उसका ध्यान अपने इच्छित स्टेशन पर लगा रहेगा। क्या मज़हबी लोगोकी ठीक यही हालत नहीं है? दुनिया सराय है, मुसाफिरखाना है, हम भटकते हुए पथिक है, रात काटनेके लिए ठहर गये हैं। पौ फटते ही अपना रास्ता लेंगे। हमे तकलीफ आरामकी क्या परवाह?

कंकर चुन चुन महल उठाया लोग कहें घर मेरा रे।
ना घर मेरा ना घर तेरा चिड़िया रैन बसेरा रे॥

उस फकीरकी कथा सब लोग जानते होगे जो दिन भरका थका मॉदा सन्ध्याको एक बादशाहके महलमे घुस गया था और कारण पूछे जाने पर उसने महलको सराय सिद्ध कर दिखलाया था। सभी मज़हबी लोग वैराग्यके महत्त्व पर ज़ोर देते हैं। त्यागका उपदेश हर एक पीर, पैगम्बर, साधु

वैराग्यसे हानि।

थे-(Christianity and civilization P. 15)। इसी पुस्तकमें हम यह भी पढते हैं कि तीसरी शताब्दिमे रोमका विशप कैलिस्टस हत्या और परस्त्रीगमनको भी उतना बड़ा पाप नहीं समझता था जितना कि बप्तिस्मा (baptism क्रिस्तान मजहबका एक संस्कार-विशेष)के न होनेको। उक्त लेखकहीने लिखा है कि आचारके सम्बन्धमें कुस्तुन्तुनियाके एक ब्रह्मचारी साधुके कुछ पूछनेपर एक अबॉटने यह उत्तर दिया था कि "क्राइस्ट और उनकी माताके मूर्ति-पूजन करनेको एक बार भी भूल जाना शहरकी सारी वेश्याओंके साथ दुष्कर्म करनेसे घोरतर पाप है।" लेकीने लिखा है कि शार्लमेनके एक नियमके द्वारा ईस्टरके चालीस दिन पूर्व तक मांस खाना निषिद्ध था। नियम भंग करनेवालेको मृत्युकी सजा दी जाती थी। History of European Morals II P. 102

और महात्माने दिया है। इसी कारण बहुतसे लोगोको *सुख और आरामसे एक प्रकारकी नफ़रत हो जाती है। इतना ही नहीं, यह वैराग्य बाज़ मर्तबा भीषण रूप धारण करता है। पिता अपने पुत्रको, पति अपनी पत्नीको, पत्नी अपने पतिको परित्याग करती है।* और यह किसलिए? इसीलिए कि ये स्वर्गके पथावरोधक है। ये जीवात्माको ससारमोहमे फँसाये रख कर उसका भयानक अनिष्ट करते है।

ससारके मधुर मधुर नातोका टूटना।

जरौ सो सम्पति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाय।
सम्मुख होत जो रामपद, करैं न सहज सहाय॥

कितने ही प्रचलित मजहबी गीतोकी यही टेक है कि हे मनुष्य, पुत्र, पत्नी, भाई, बहन, मां, बाप, कुटुम्ब परिवारके लिए तेरा जीवन एकदम वृथा है। उस घडीको सदा अपने सामने रख, इनके बनावटी प्रेममे मत फँसा रह। उस मुहूर्तके आपहुँचने पर कोई तेरे साथ न जायगा। नहीं नहीं, इन्हे नरकका द्वार समझ। ये तेरी आत्माको ससारमे रत और परमात्मासे विरक्त रखते है। केवल इनहीके लिए तू इतना कष्ट झेलता है। इनहीकी उदरपूर्तिके लिए तू अनेको उपाय करता है, झूठ तक बोलता है—चोरी डकैती हत्या पर्य्यन्त करता है। परन्तु इन सबमेसे एक भी तेरे साथ जानेवाला और तेरे दुःखका भाग लेनेवाला नहीं है।

बटमार अजलका रस्तेमें जब भाला मार गिरावेगा,
तब धन दौलत और नाती पोता, कोई काम न आवेगा।
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब लाद चलेगा बनजारा॥

मजहबी आदमी संसारी लोगोके बारेमे कहता है,—

जलचरवृन्द जालअन्तर्गत, होत सिमिट इक पासा।
एक हि एक खात लालचवश, नहिं देखत निज नाशा॥

वह कहता है,—

माधवजू मो सम मन्द न कोऊ।
यद्यपि मीन पतंग हीनमति मोहि न पूजैं ओऊ॥
रुचिर रूप आहार वश्य उन पावक लोह न जान्यौ।
देखत विपति विषय न तजत हौं, ताते अधिक अयान्यौ॥
महा मोह सरिता अपारमंह, संतत फिरत बह्यौ।
श्रीहरि कमल चरण नौका तजि, फिरि फिरि फेन गह्यौ॥
अस्थि पुरातन छुधित श्वान अति, ज्यों भरि मुख पकरयौ।
निज तालुकगत रुधिर पान करि, मन संतोष धरयौ॥
परम कठिन भवव्यालग्रसत हौं, त्रसित भयौ अति भारी।
चाहत अभय भेक शरणागत, खगपति नाथ विसारी॥

पुनः—

हरि विन कोऊ काम न आयौ।
इस माया झूठो प्रपंच लगि, रतन सो जन्म गंवायौ॥
कंदन कलश विचित्र चित्र करि, रचि पचि भवन बनायौ।
तामेंते तेही छन काढ़यौ, पल भरि रहन न पायौ॥
हौं तेरे ही संग जरौंगी, यह कहि त्रिया धूति धन खायौ।
चलत रही चित चोरि मोरि मुख, एक न पग पहुँचायौ॥
बोलि बोलि सब बोलि मित्र जन, लीन्हों जो जेहि भायौ।
परयौ जो काज अंतकी बिरियां, तिनही आनि बंधायौ॥
आशा करि करि जननी जायौ, कोटिक लाड़ लड़ायौ।
तोरि लयौ कटिहूंको डोरा, ता पर बदन जरायौ॥
पतित उधारन गणिकातारन, सौ मैं शठ विसरायौ।
लियो न नाम नेक हूं धोखे 'सूरदास' पछतायौ॥

और भी—

झूठहि लगि जन्म गंवायौ ।
भूल्यौ कहां स्वप्नके सुखको, हरिसौं चित न लगायौ ॥
कबहुंक बैठ्यौ रहसि रहसिके, ढोटा गोद खिलायौ ।
कबहुक फूलि सभामें बैठ्यौ, मूछन ताव दिवायौ ॥
टेढ़ी चाल पाग सिर टेढ़ी, टेढ़े टेढ़े धायौ ।
'सूरदास' प्रभु क्यों नहिं चेतत, जब लगि काल न आयौ ॥

क्रिस्तान मजहबसे त्यागके कुछ उदाहरण ।

भारत तो अपने त्याग और वैराग्यके लिए प्रसिद्ध है ही, परन्तु अन्य मजहबोमे भी भीषण त्यागके उदाहरण मिलते है । यदि यहॉ पर क्रिस्तान मजहबसे कुछ उदाहरणोका उल्लेख किया जाय तो अनुपयोगी नहीं होगा । म्यूटियस नामका एक मनुष्य सारी धन-सम्पत्तिको त्याग कर अपने आठ वर्षके बच्चेके साथ सन्यास धारण करनेके लिए एक मठमे पहुॅचा । साधुओने उसे एक बारगी अङ्गीकार कर लेना ठीक न समझा और उसकी परीक्षा लेना उचित समझा । म्यूटियस अपना धनवान् होना तो भूल ही गया था अब उसे पुत्रवान् होना भी भूल जाना चाहिए । इसी हेतु उसका अबोध शिशु उससे छीन लिया गया । बच्चेके वस्त्र उतार डाले गये और उसे मैले कुचैले चिथडे धारण कराये गये । उसे बहुत प्रकारकी यन्त्रणाये और कष्ट दिये गये और उसका ताड़न प्रताडन किया गया । उसे झिडकियॉ और गालियॉ सुनाई गई । दिन प्रति दिन पिता अपने पुत्रको दु:ख और शोकसे क्षीण होता हुआ देखता था । उसका आनन्दसे दमदमाता हुआ मुखडा अब ऑसुओसे तर था और हॅसनेके बदले अब वह केवल सिसकियॉ लेता था । परन्तु पिताको क्राइस्टमें इतनी भक्ति थी कि दिन प्रति दिन अपने लाडले पुत्रकी यह अवस्था

देख कर भी उसका हृदय विचलित न हुआ; उसने अपने बच्चेके अश्रु-पातकी कोई परवाह न की और धर्ममे डटा रहा। अन्तमे मठके प्रधान सन्यासीने उसे अपने बच्चेको नदीमे डाल आनेकी आज्ञा दी। म्यूटियस इस पर भी प्रसन्नतापूर्वक उद्यत हो गया और वह बच्चेको नदीके अथाह जलमे समर्पण करना ही चाहता था कि प्रधान सन्यासीके दूतने उसे इस कामसे रोक दिया। इस तरहकी अनेक कथाये—पिता द्वारा ऐसी मजहवी परीक्षाओमे शिशुओके अग्नि तकमे डाले जानेकी कथाये—लेकीकी पुस्तकमे वर्णित हैं। भीषण रोमाचकारी वैराग्यकी भी अनेक कथाये उक्त पुस्तकमे दी हुई है। सेट सामियन स्टाइलाइटस अपने मां-बापका बडा स्नेहपात्र था। सन्यास धारण करनेके सङ्कल्पसे—अपनी इच्छाको किसी पर प्रकट किये बिना—वह घरसे भाग गया। उसके वियोगसे शीघ्र ही उसके पिताकी मृत्यु हो गई; परन्तु उसकी माता कुछ काल तक किसी प्रकार जीवन धारण करती रही। सत्ताईस वर्षके बाद वृद्धाको अपने पुत्रके निवासस्थान-का पता चला और वह उससे मिलने गई। परन्तु उसके सारे प्रयत्न निष्फल हुए। सन्यासीकी कुटीके अन्दर कोई स्त्री प्रवेश नही कर सकती थी और उसने वृद्धाको अपने मुख तकके देखनेकी अनुमति न दी। वृद्धाकी विनीत प्रार्थना और कातर वचनसे पत्थर भी द्रवित होता था—"वत्स! तूने ऐसा कठोर आचरण क्यो किया? कितने दिनो पर्य्यन्त तू मेरे कोखमे रहा, पर तूने मेरे हृदयको शोकसे चकनाचूर कर डाला। तूने मेरे प्रेमका अच्छा प्रतिदान दिया, मेरे किये हुए उपकारोका खूब वदला दिया।" तीन दिन और तीन रात तक वृद्धा ऑसुओकी धारा बहाती रही और दर्शन पानेके लिए प्रार्थना करती रही। परन्तु उसके रोने कलपनेका कोई फल न हुआ। अन्तमे वृद्धा-

वस्था, शोक, और अनाहारके कारण वह वृद्धा अपने पुत्रके रुद्ध द्वारके सामने गिर पड़ी और इस संसारसे चल वसी। तव उसका पुत्र वाहर निकला। दो एक वार कुछ मंत्र उच्चारण कर उसने ईश्वरके प्रति उसकी आत्माको शाति प्रदान करनेके लिए प्रार्थना की और तत्पश्चात् वह अविचलित-हृदय अपनी कुटीमे घुस गया और फिर भजन आराधनामे तल्लीन हो गया ! उक्त पुस्तकमे माता पिताके अपने पुत्र पुत्रियोंके छोडनेकी, पतिके अपनी पत्नी तथा पत्नीके अपने पतिके परित्याग करनेकी—तथा मजहव द्वारा ससारके मधुर मधुर नातोंके टूटनेकी—अनेक कथाये हैं। उन सवको यहाँ उद्धृत नहीं किया जा सकता। एक और कथा लिखकर यह प्रकरण समाप्त किया जाता है। एक स्त्रीका वृत्तान्त है कि अपने पतिके मरनेके वाद उसने गृहपरित्यागका निश्चय किया। उसके पुत्र पुत्रियोंने बहुत अनुनय विनय किया, परन्तु उसने एक भी न सुनी और अपने सकल्पसे न डिगी। उसके बाल-वच्चोंका रोना कलपना एकदम निष्फल हुआ और अन्तमे वह भाग कर साधुओंके मठमे पहुँच गई। अश्रुकी एक बूँद भी उसकी आँखोंसे न निकली। उसने यह अभिलापा प्रकट की कि मरनेके समय वह एक पैसेकी भी स्वामिनी न रहे और अपने बाल वच्चोंके लिए कुछ न छोड जाय। उसने अपने जीवन-कालमे ही दान पुण्यमे अपनी सारी सम्पत्तिको लुटा दिया और अपनी सन्तानके लिए वह कर्जका भारी वोझ छोड गई। और ऐसा करना सर्वथा न्याय-सगत भी था, क्योंकि दान पुण्यका सहस्रगुना वदला मिल सकता है; परन्तु अपनी सन्तानको रुपया देनेसे कोई लाभ नही है।

ऐसी शिक्षाओके रहते हुए भी वे लोग धन्य है जो अपनी स्त्रीके आलिंगनको सर्पका पाश समझ कर परित्याग नहीं करते—जो महाराज युधिष्टिरकी तरह अपनी स्त्री बच्चे और परिवारके साथ रहनेको स्वर्गके आनंदसे भी उत्तम अनुभव करते है। महाप्रस्थानके पश्चात् महाराज युधिष्ठिर स्वर्गको गये और चारो ओर अपनी स्त्री और भाईयोको ढूंढने लगे। अन्तमे व्याकुल होकर वे चिल्ला उठे—"हे देवताओ! क्या यही तुम्हारा स्वर्ग है? मुझे इस स्वर्गमे कुछ भी आनन्द नहीं मिल सकता। मेरा स्वर्ग वहीं है जहॉ मेरी स्त्री और भाई निवास करते है। मुझे वही ले चलो, हमारी यहॉ कोई आवश्यकता नही है। मै उनसे विलग यहॉ एक क्षण भी नही टिक सकता।" युधिष्टिरके बार बार अनुरोध करने पर इन्द्रने एक देवदूतको बुलाकर आज्ञा दी कि तुम महाराज युधिष्टिरको उनके आत्मीय जनोके पास ले जाओ। महाराज युधिष्ठिरको एक भयानक और दुर्गम रास्तेसे जाना पडा। इसमे घनघोर अन्धकार छाया हुआ था। समस्त पथ मास और खूनके कीचड, तथा कीडो मकोडोसे भरा हुआ था। जलती हुई आग और भयंकर मूर्तिके प्रेत चारो ओर दिखाई देते थे। हवाके झोकेके आते ही हजारो दुःखी मनुष्योका आर्तनाद सुनाई पड़ता था। परन्तु इस दुर्गन्धमय स्थानमे चलनेसे भी महाराज युधिष्टिर न हिचके। चलते चलते उन्हे आत्मीय जनोसे भेट हुई। उनके दुःख और सन्तापको देख कर युधिष्ठिर अधीर हो गये और देवदूतसे बोले—"तुम जिन लोगोके दूत हो उनसे जाकर कहो कि मै यही रहूँगा। मुझे पाकर मेरे दुखी आत्मीय जन वड़े प्रसन्न हुए है। अतएव मेरे लिए यही स्वर्ग है।"

युधिष्ठिरका कौटुम्बिक प्रेम।

मजहब ससारको केवल उदासीनताहीसे नहीं देखता, वरन् शत्रुतासे भी देखता है—

मजहबको संसार और सांसारिक सुखोंसे शत्रुता है।

तुलसी जब लगि जगतकी, सुधा माधुरी मीठ।
तब लगि सुधा सहस्र सम, रामभक्ति सुठि सीठ॥

मजहबी लोगोंको इस संसारको सुन्दर और रम्य तथा सुख शान्तिसे भरपूर बनानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि—

अर्ब खर्ब लौं द्रव्य है, उदय अस्त लौं राज।
तुलसी जो निज मरण है, तो आवै केहि काज॥

तीन टूक कोपीनके, अरु भाजी विन नोन।
तुलसी रघुबर उर बसै, इन्द्र बापुरो कौन॥

परन्तु सदाचारका लक्ष्य इसी संसारको स्वर्ग बना देना है। केवल इतना ही नहीं, मजहब यहाँ तक उपदेश देता है कि इस संसारकी हीनावस्था भावी मङ्गलमय जीवनका लक्षण है।* दारिद्र और दु:खकी मजहबमे हर जगह प्रशसा और धन और सुखकी हर जगह निन्दा है।

विपति नहीं रघुपतिकी दाया।
कर्म भुगाय छुड़ावत माया॥

यदि रोगग्रस्त हो तो कोई परवाह नहीं, यदि तुम शोकनिमग्न हो तो ईश्वरको धन्यवाद भेजो, क्योंकि ये ही सब तुम्हे ईश्वर तक ले जाने-

---

* Blessed be ye poor, and ye that weep now and mourn, for great is your reward in heaven. But woe unto you that are rich for ye have received your reward. —Kee Bilele.

वाले हैं। दुःख और शोक तुम्हें ईश्वरके क्रोधसे नहीं वरन् उसकी दयासे मिलते हैं। क्योंकि इनहींके द्वारा वह तुम्हारी धार्मिक दृढताकी परीक्षा लेता है। यदि अनाहार, अनशन और रोगसे शरीर जर्जर हो रहा हो, तो इसकी क्या परवाह! इस हाड़ चामके शरीर पर इतनी ममता क्यो?

> अतर फुलेल देउँ जेहि तनको, नित मलि मलि अन्हवाउँ।
> सोऊ संग चले नहिं मोरे, अब केहि प्रिय ठहराऊँ॥
> कोऊ दिलदार न पाऊँ, कासे मनै लगाऊँ।

अतएव निष्पक्ष निरीक्षकको यह कहना ही पड़ेगा कि प्रतेपूजाका समय अभीतक नहीं गया है। विचार कर देखा जाय तो यह विदित होगा कि हममेसे बहुतसे लोग—वह भी जो अपने धर्म तथा नैतिक विचारोकी पवित्रताका गर्व रखते है—वस्तुतः अभीतक प्रेम और करुणासम्पन्न ईश्वरके पूजक नहीं है, वरन् हिंस्र, निष्ठुर और दयारहित प्रेतों या ईश्वरोंके पूजक है। मज़हबी लोगोंके सुख और आरामसे शत्रुता करनेमे—ईश्वरकी तृप्ति और प्रसन्नताके लिए दुःख और शोकको उत्तम और आवश्यक समझनेमें—तथा जगलियोंके देवताओंको प्रसन्न करनेके निमित्त नर-बलि चढ़ानेमें या नही तो निज शरीरको ही अनेक प्रकारकी यंत्रणा देनेमे कम सादृश्य नहीं है। *वास्तवमें इसीसे मज़हबी लोगोंके नैतिक सिद्धान्तकी उत्पत्ति हुई है।* यदि जंगली मनुष्यका ईश्वर नरबलिदान लेकर—असंख्यों जीवोंका रक्तपान करके सतुष्ट होता था, तो आधुनिक मज़हबी आदमीका ईश्वर—यद्यपि बाज देशोंमे उसने मास खाना छोड दिया है—मनुष्योंको दुःख देकर, अपने भक्तोको विपत्तिमे फँसाकर, उनकी पार-

लौकिक भलाई करता है ! मजहबी आदमीका ईश्वर भी लोगोको दुःख और कष्टमे फँसा देख कर संतुष्ट होता है !!

मजहवी लोग सुख और आनन्दका तिरस्कार करते हैं और शरीरको निरर्थक कष्ट देते है ।

आह ! इस भ्रम प्रमादमे पडकर कितनोंने अपने शरीरको अपरिमित कष्ट दिया है, मनुष्य-समाजको छोड़कर—मनुष्यके हँसने रोने आनन्द और दुखसे मुह मोड कर—कितनोने गुफाओमे निवास किया है, कितने ऐसे ऐसे घोर वनोमे—दुर्गम पहाडो और जंगलोमे रहे है कि जहाँ पक्षी भी पर नही मार सकता, घास और पत्ते पर ही कितने त्यागियोने जीवन-निर्वाह किया है, नख, शिखा, जटाजूट और बल्कलसे अपने शरीरको इतना कुरूप वनाया है कि पशु भी उनकी वरावरी नही कर सकते। कितनोने सुखको गरल अनुमान किया है, संसारसे तनिक मात्र संसर्गको भी पाप गिना है, तथा स्त्रीजातिमात्रको—अपनी माता, पत्नी और भगिनी तकको भी—व्यालसे भी अधिक विकाराल समझा है । अपने देशकी हालत तो पाठको पर विदित ही है और उसे वे प्रति दिन अपनी आँखोसे देखते ही है । अतः क्रिस्तान मजहवसे कुछ उदाहरणोका उल्लेख किया जाता है। अपने देशकी जानी हुई बातोको—जिन्हे पाठक नित्य प्रति अपनी आँखोसे देखते है—छोडकर अन्य मजहबोसे भी उदाहरण देनेका कारण यही है कि इससे सिद्धान्तोकी व्यापकता अधिक पूर्णताके साथ प्रमाणित होती है । जिस सिद्धान्तकी पुष्टि सव ओरसे होती है उस सिद्धान्तके सत्य होनेमे सशय नही रहता । साथ ही साथ इसका एक और तात्पर्य्य भी है—इससे यह भी पता चलता है कि हमारा वर्तमान मजहब अन्य मजहबोसे कहाँ तक मिलता है ।

अन्य मज़हबोसे उदाहरण ।

शरीरको कष्ट देनेवाले त्यागियोकी एकसे एक बढकर कथाये अँगरेजी पुस्तकोमे वर्णित है। एक साधुने तीस वर्ष केवल एक टुकड़े जौकी रोटी और थोडे गँदले जल पर व्यतीत कर दिये थे। एक दूसरा साधु नित्य पॉच अजीरसे अधिक भोजन न करता था और एक पशुके मॉदमे निवास करता था। एक और साधु सालमे एक मर्तबा—प्रति ईस्टर—अपने केश कटवाता था और कभी स्नान न करता था। कपडेके फट कर वदनसे स्वय गिर जानेके पूर्व वह कभी वस्त्र न वदलता था। कठोर तपस्याके कारण उसका शरीर झामाके समान हो गया था। वहुतसे साधु सडे हुए अनाजके व्यतिरिक्त कुछ न खाते थे, वाज नींद आनेके समय भी न लेटते थे। सेट वसारियनने चालीस वर्ष पर्य्यन्त ऐसा ही किया था। स्नान करना तो दूर रहा, वाज साधु मुँह और पॉव धोने तकको पाप समझते थे। सेट साईमनकी कथा शायद अद्वितीय है। उसने अपने शरीरको एक रस्सीसे इतनी दृढताके साथ वॉध रक्खा था कि रस्सी उसके शरीरमे गड गई थी। वहुत दिनो तक इसी प्रकार रहनेसे रस्सीके चारो ओरका मास सड़ गया था। उसके शरीरसे इतनी तेज दुर्गन्ध निकलती थी कि नजदीकके लोग वेचैन हो जाते थे। जरा भी इधर उधर खसकने पर उसके शरीरसे कीड़े गिरने लगते थे और इन कीडोसे उसका बिस्तरा भर जाता था। उसने एकके वाद एक तीन स्तभ वनवाये। अन्तिम स्तम्भ साठ फीट ऊँचा था और पूरा दो फीट भी चौडा न था। इस स्तभ पर वह—जाडा गर्मी तथा वरसातकी कुछ भी परवाह न कर—पूरे तीस वर्ष पर्य्यन्त रहा। वह प्रायः चौवीस घंटे ईश्वर-भजनमे लीन रहता और हमेशा तेजीके साथ

क्रिस्तान देशोसे कुछ उदाहरण।

अपने मस्तकको झुकाता ही रहता । एक मनुष्यने उसके सिरकी गतिको गिनना चाहा, परन्तु वह इसमें असमर्थ रहा । वह इतनी तेजीके साथ अपना सिर झुकाता था कि एक हजार दो सौ चवालीस पर्य्यन्त गिनते गिनते वह मनुष्य थक गया और अपने उद्देशसे बाज़ आया । वह पूरे एक वर्ष तक केवल एक पग पर खड़ा रहा । उसके दूसरे पगमे बड़े बडे जख्म हो गये थे । उसका शिष्य आण्टनी (जिसने उसका जीवनचरित्र लिखा है) उसके समीप खडा रहता और उसके शरीरसे जो कीडे गिरते उन्हे चुन चुन कर पुनः जख्ममे रख देता। सेण्ट साईमन उन कीड़ोके प्रति कहा करता था कि "ईश्वरने तुम्हे जो कुछ दिया है उसे भक्षण करो ।"

मजहब जीवनके स्रोतको शुष्क करता है और इस लिए नीति-विरुद्ध है ।

परन्तु सदाचारका क्षेत्र ससार ही है । सच्ची नीतिका उद्देश वासनाओको एकदम निर्मूल करना नहीं है, वरन् वासनाओको संयमके साथ—परिमित रीतिसे तृप्त करना है *। मज़हबी सुखकी परवाह नहीं करता; परन्तु ससारके सुखका वढाना ही नीतिका परम लक्ष्य है । *सदाचारकी हमने जो परिभाषा दी है, उसके अनुसार जिस वस्तके द्वारा जीवनकी वृद्धि, उन्नति और विकास होता है वही नैतिक है और जिसके द्वारा जीवनका क्षय, ह्रास और नाश होता है वह अनैतिक है । हम यह भी देख चुके है कि आनन्दकामनासे जीवन-प्रयासमें सहायता मिलती है तथा आनन्दका तिरस्कार करना नीत्यनुरूप नहीं है ।* * परन्तु मजहब हमारे जीवनके स्रोतको शुष्क करता है—हमारे हृदयस्पन्दनको रोक देता हें । यह हमारी कुल वासनाओ और उमगोको

* देखो अध्याय तीसरा ।

निर्मूल करना चाहता है, हमे ससारसे विलग कर हमारी सहानुभूतिका गला दबाना चाहता है। अतएव मज़हव नीति-विरुद्ध है। मज़हवका आदर्श तपस्या या वासनाओका मारना है और तपस्या तुपारतुल्य कठोर है। इसमे किसी प्रकारकी मृदुलता या कोमलताको स्थान नही है। स्नेह यहा निवास नहीं कर सकता। प्रेमका वासस्थान दूसरा है। मृत्युकी तसवीर और संसारकी अनित्यता हर क्षण मजहवी लोगोकी ऑखोके सामने नाचा करती है। वे कहते है, ससार कितना बेवफा—

मज़हवमें नैराश्य।

कितना विश्वासघातक—है। यह किसीकी इच्छा पूर्ण नहीं करता, किसीके काम नहीं आता। मौत किसीको नही छोडती। वडे वड़े सूरमा और योद्धाओको—जिनकी जीवितावस्थामे केवल उनके नामसे सारा संसार कॉप उठता था—कालने न छोड़ा। दुनिया माया है, मिथ्या है, स्वप्न है। यदि कुछ यथार्थ है तो धर्म और यही मनुष्यके संग जायगा। दुनियाकी चाहमे, अप्राप्य इच्छाओमे, ममतामे अपने जीवनको वर्वाद मत कर—

बहुत गई थोड़ी रही, रे मन अवहु तो चेत।
काल चिरैया चुग रही, निश दिन आयू खेत॥

सफ़र है दुश्वार ख्वाव कव तक, वहुत वड़ी मंजिले अदम है।
नसीम जागो कमरको वांधो, उठाओ विस्तर कि रात कम है॥

अव यदि मजहवके साथ साथ प्रारव्धमे भी विश्वास हुआ—(प्राय: हर मजहवका प्रारब्धमे दृढ विश्वास है) तो सारी सासारिक उन्नतियो पर पानी फिर जायगा। सारी आकाक्षाओ, अभिलापाओका अन्त होगा, आशाका अकुर ही न जमने पायगा। हमारे सारे भावो, आवेगो और आकुलताओ पर पाला पड जायगा। ससारमे वसन्त ऋतुका नाम भी न बचेगा, तमाम हिमका ढेर हो जायगा, कही भी किसी पत्ती पंखड़ीका निशान न रहेगा!

क्या सदाचारका अर्थ यही है ? मान भी लिया कि मज़हबकी ऐसी शिक्षासे सदाचारको बड़ी सहायता मिलती है, तो क्या उद्देशसाधन-का सर्वोत्तम उपाय यही है ? सैकड़ोको जिन्दगीसे उदासीन कर देना, हजारोंकी लहलहाती हुई आशालताओपर तुषार गिराना, उनमें सौन्द-र्य्यसे विरक्ति और निष्ठुरता, कठोरता, भीषणतासे प्रीति उत्पन्न कर देना, क्या इसीका नाम सदाचार-प्रचार है ? हजारोंकी सभी उमंगो पर पानी फेर देना, लाखोंसे प्रति क्षण मृत्युकी बाट जोहाना, क्या इसीको सदाचार-प्रचार कहते हैं ?

ग्यारहवाँ अध्याय ।

मज़हब और सदाचार ।

१—विश्वासका माहात्म्य ।

मजहब और सदाचारमे कोई सम्बन्ध नहीं है।

यह समझने लिए कि मजहब और सदाचारमे कोई सम्बन्ध नहीं है, हमे बहुत दूर जानेकी अवश्यकता नहीं है। यह प्रत्येकके अनुभवमे आया होगा कि अत्यन्त धार्मिक अत्यन्त सच्चरित्र नहीं होते, प्रत्येक क्षण 'राम राम' कहनेवाले दया और सहानुभूतिके आगार नहीं होते, प्रत्येक लम्बे टीकेवालेका हृदय आर्द्र नहीं होता, प्रत्येक अहिंसावादी (चिंउटियों, चिडियो और बकरियो पर दया रखनेवाला) मनुष्य पर दया नहीं रखता। सभी वेदो पुराणो अवतारो देवताओं तथा ईश्वरमे दृढ विश्वास रखनेवाले अकसर दया, प्रेम और सहानुभूतिमे विश्वास नहीं रखते। ईश्वरके अनेकों आस्तिक प्रेम और दयामे आस्तिकता नहीं रखते।

क्योंकि मजहबकी जड़ विश्वासमें है और सदाचारकी कर्ममे।

और इसका कारण भी है। मजहबकी जड विश्वासमे है। विश्वास ही मजहबका मुख्य अङ्ग है। इसलिए हर स्थान पर विश्वासकी ही प्रधानता है, विश्वासका ही माहात्म्य है। अन्ध भक्तिसे सारे तर्क वितर्कोंको परित्याग कर एक अबोध बालकके समान बन जानेसे ईश्वरकी प्राप्ति होती है। शंका, तर्क, ज्ञान, अन्धभक्तिके शत्रु हैं। नहीं नहीं, साफ शब्दोमे यह मजहबका आदेश है कि ज्ञानके द्वारा कभी ईश्वर मिल ही नहीं सकता और इस कलियुगके लिए तो भक्ति और अन्ध विश्वासके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय ही नहीं है।

जे अस भक्ति जानि परिहरहीं,
केवल ज्ञानहेतु श्रम करहीं ।
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी,
खोजत आक फिरहिं पय लागी ॥

... ...

ते सठ महासिन्धु बिनु तरनी,
पैरि पार चाहत जड़ करनी ।

... .

ज्ञान कि पंथ कृपाणकै धारा,
परत खगेश न लागे वारा ॥

... ...

चहुं युग चहुं श्रुति नामप्रभाऊ,
कलि विशेष नहिं आन-उपाऊ ॥
कहहुं कहां लगि नाम-वड़ाई,
राम न सकहिं नाम-गुण गाई ॥
साहवसे सेवक वड़ो, जो निज धर्म सुजान ।
राम वांधि उतरे उदधि, नांघि गयो हनुमान ॥
कलियुग सम युग आन नहिं,
जो नर करु विश्वास ।
गाइ रामगुणगण विमल,
भव तरु विनहि प्रयास ॥

विश्वासका माहात्म्य अनन्त है । यदि सहस्रो शारदा, शेष, गणेश, महेश इत्यादि भी मिल कर इसे वर्णन करने लगे तो इसके एक अश-के भी समाप्त होनेकी आशा नही । नही नही, जैसा कि गुसाई तुलसी-दासजीने कहा है, स्वय राम भी इसके गुण नही गा सकते । इसीके प्रभावसे देवताओने अपना वल और पराक्रम प्राप्त किया है और काम, क्रोध, मोह, लोभसे छुटकारा पानेके लिए इससे वढ कर अन्य कोई उपाय नही है ।

राम नाम मणि दीप धरु. जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहरौ, जो चाहसि उजियार॥

अतएव मजहबी आदमी ज्ञान या कर्म पर अधिक ज़ोर नहीं देता।

नहिं कलि कर्म न भक्ति विवेकू,
राम नाम अवलम्बन एकू॥

सत्कर्म (Actions-Good deeds) के साथ मजहबका एक प्रकारसे निषेधात्मक सम्बन्ध है। मजहबका आदेश बुरे कामोसे बचनेका अवश्य है, पर मजहब सत्कर्म करनेका कडा हुक्म कहीं नहीं देता। मुक्तिका सहज साधन सत्कर्म नहीं, वरन् भक्ति और अन्धविश्वास है।

सत्कर्मके साथ मज़हबका निषेधात्मक सम्बन्ध है।

अतुलित महिमा वेदकी, तुलसी किये विचार।
जो निन्दत निन्दत भयो, विदित बुद्धअवतार॥

परन्तु सदाचारके लिए परम आवश्यकता इसीकी है। अतएव सच्चा मज़हबी बुरे कामोसे निस्सन्देह बचेगा, पर सत्कर्मके लिए कमर कसे कर तैयार न होगा। क्यों कि सदाचारसे ससारके क्लेश-विमोचनसे अधिक आवश्यक उसके लिए उसकी माला और सुमरनी है।

रसना सांपिन वदन बिल, जे न जपहिं हरिनाम।
तुलसी प्रेम न रामसौं, ताहि विधाता वाम॥
तुलसी श्रीरघुवीर तजि, करे भरोसा और।
सुख सम्पतकी काचली, नरक हु नाही ठौर॥
तुलसी परिहारि हरि हरहि, पांवर पूजहिं भूत।
अन्त फजीहत होहिंगे, ज्यो गनिकाके पूत॥
साहिब सीतानाथसों, जब घटिहै अनुराग।
तुलसी तबहीं भाल ते, भभर भागिहैं भाग॥
बिंधन इंधन पाइये, सागर जुरै न नीर।
परै उपास कुवेर घर, जो विपक्ष रघुवीर॥

अहा और नामका भी कितना बडा माहात्म्य है ! एक वार राम नाम लेनेसे पूर्वके सारे पाप ही नही समस्त पापमय जीवन शुद्ध और पुनीत हो जाता है, सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते है । अजामिलकी कथा किससे छिपी है ? गज, गणिका, व्याध, कसाईकी कथा कौन नही जानता ?

विश्वास और नाम-कीर्तनसे समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ।

नाम प्रसाद शंभु अविनाशी,
साज अमंगल मंगल राशी ।
शुक सनकादि सिद्ध मुनि योगी,
नाम प्रसाद ब्रह्मसुखभोगी ॥
... ...
अपर अजामिल गज गणिकाऊ,
भये मुक्त हरिनामप्रभाऊ।
... ...
महिमा जासु जान गणराऊ,
प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ।
जान आदि कवि नाम प्रतापू,
भये सिद्ध करि उलटा जापू ॥
सहस नाम सम पुनि शिववानी,
जपि जेई पिय संग भवानी ॥
... ...
नाम प्रभाउ जान शिव नीकें,
कालकूट फल दीन्ह अमीके ।

कितना ही बड़ा पाप क्यो न हो, हरिनाम उसको भी मेट सकता है। ठीकसे तौबा कर लेने पर कोई पाप नहीं बचा रहता । *स्वर्गके द्वारको बन्द करनेवाला कुकर्म या पाप नहीं, परन्तु अविश्वास है* । बुरेसे बुरा मनुष्य भी—यदि उसे ईश्वरमे विश्वास है तो—स्वर्गमें स्थान प्राप्त कर सकता

ईश्वरका न्याय । एक कथा ।

है; परन्तु अविश्वासके साथ—चाहे मनुष्य कितना बड़ा ही सत्कर्म करे ईश्वरकी दयाका भागी नहीं हो सकता।

एक दिन खुदाका इजलास लगा था। फरिश्ते हाथ बॉध कर अदबसे इर्द गिर्द खडे थे। सन्नाटेका साम्राज्य था। किसकी मजाल कि एक छींक तक मारे या जमुहाई तक ले सके। सारे ज़मीन आसमानके मालिक, इन्सान, हैवान, फरिश्ते मलायक आदिके और सारे-राज-राजेश्वरोके पति किसी विचारमे निमग्न थे। समाधि टूटने पर उन्होने मुसकराती हुई नजरसे अपने अनुचरोकी ओर देखा और उनके प्रति मीठी वाते करना शुरू किया। प्रभुको अनुकूल देख कर जिबरील साष्टाग दण्डवत कर हाथ बॉध नतमस्तक हो अत्यन्त कातर भावसे सिंहासनके समीप जा खड़े हुए। अपने प्यारे फरिश्तेको इस प्रकार देख कर अन्तर्य्यामी खुदा उसके मनकी बातको समझ गये; परन्तु तौभी जिब्रीलसे बोले—जिब्रील, तुझे क्या कहना है, कह। प्रभुकी आज्ञा पाकर जिबरील बड़े आदर और आहिस्तगीके साथ कहने लगे—"स्वामी मेरे हृदयमे एक क्षोभ—एक शका उत्पन्न हो रही है। मै जानता हूँ कि शंका ही गुनाहकी जड है। मुझे विश्वास है कि सरकारके साम्राज्यमें अन्याय नहीं रह सकता; परन्तु तौभी यह विस्मय मेरा पीछा नहीं छोडता, यह मेरे हृदयको दग्ध किये डालता है। यह मेरे मन और प्राण सभीको भस्म कर रहा है। स्वामिन्! कई दिन व्यतीत हुए कि मै टहलता टहलता मर्त्य लोककी ओर चला गया था। वहाँ एक धार्मिक फकीरको देखा कि जिसने सम्पूर्णतः वस्त्रहीन होनेके कारण अपने आधे शरीरको बालूमे गाड़ रक्खा था। अनाहारके कारण उसके शरीरमे रक्त और मासका नाम तक नही था। उसका शरीर सूख कर कॉंटा हो गया था। इसपर भी उसे कुष्ठकी बीमारी

थी। शरीरमे कीड़े पड गये थे। परन्तु प्रभो, तोभी वह धर्म्मात्मा आपसे ग़ाफिल न था। वह अपने शरीरसे कीडोंको चुनता था और आपको स्मरण करता था। माला फेरते फेरते उसके हाथमें छाले पड़ गये थे। हे स्वामिन्! इसे छोड़ कर जब मैं आगे बढा, तो इससे एकदम उलटा मुझे एक दूसरा दृश्य देखनेमें आया। मैंने देखा कि एक पापी नशेमे मस्त होकर किसी वेश्याके घरमें घुसा जाता था। दरयाफ्त करने पर माळूम हुआ कि चोरी, डकैती, हत्या और जुआ ही उसके पेशे है और शराब पीना और वेश्याओंके यहाँ भ्रमण करना यही उसका मुख्य काम है। हे प्रभो, इसे देखनेके साथ सन्देहकी अग्नि मेरे हृदयमे प्रज्वलित हो उठी, उसी क्षणसे भूख और आरामने मुझसे विदा ले ली। एक धर्म्मात्माको इतना दुःख और एक पापीको इतना आराम, सरकारका यह रहस्य मेरी समझमे नहीं आया।" इतना कहते कहते जिब्रीलका कण्ठ रुद्ध हो गया और वे पृथ्वी पर धड़ामसे गिर कर बिलख बिलख कर रोने लगे। दयासागर प्रभुसे जिब्रीलका दुःख देखा न गया। उन्होने जिबरीलको उठनेकी आज्ञा दी और अनेक प्रकारसे उन्हें सान्त्वना प्रदान की। खुदा बोले—"देख जिबरील, निस्सन्देह शंका और अविश्वास ही सारे पापोकी जड है; परन्तु मैं तेरी इस शुद्ध शकासे तनिक भी अप्रसन्न नही हूँ। तू मेरा प्रधान और प्यारा अनुचर है। मै तुझे आज्ञा देता हूँ कि तू दोबारा ससारमे जा और इन दोनो आदमियोंके सच्चे विश्वास और धर्मका पता लगा। जिब्रील फिर भी मर्त्यलोकको पधारे। पहले वे धर्मात्मा फकीरके पास गये और सलाम बन्दगीके बाद उसके निकट बैठ गये। दो चार बातोंके बाद उन्होने उस फकीरसे जिज्ञासाकी कि "दोस्त, तूने क्या अभी थोडी देर पहले एक कौतुक देखा था?" फकीर ने कहा-"नहीं तो, क्या हुआ?" जिबरीलने उत्तर दिया "अभी एक क्षण पहले इसी सड़क पर सत्तर

हजार ऊँट एक सुईके छिद्रसे पार हुए थे।" फकीर जिब्रीलके इस कहने पर बहुत हँसा और उन्हे उसने सिडी और ठट्टेबाज समझ कर तिरस्कारके साथ अपने समीपसे दुरदुरा दिया। अब जिब्रील उस पापीके पास पहुँचे और उससे भी उन्होने वही प्रश्न किया। प्रश्नके सुनते ही ,वह जूता लेकर खडा हुआ और उसीसे उसने जिब्रीलकी खबर लेनी चाही। उसने कहा कि "बदमाश, तुझे क्या ठट्टेबाजी सूझी है? खुदाकी कुदरतके सामने क्या असभव है? सत्तर हजार ऊँट क्या कोटानुकोटि हाथी भी एक सूईके छेदमेसे पार हो सकते है।" जिबरील अपनी शंकाका पूरा समाधान पाकर खुश खुश वहिश्तको चल दिये। खुदा अन्यायी नहीं है और किसीको निरपराध दण्ड नही देता। इस तरहकी केवल एक ही नहीं, वरन् लाखो कथाये हर देश और धर्ममे मौजूद है। क्रिश्चियन धर्मके सम्बन्धमे कुछ कथाओका उल्लेख कौटर मौरिसनने अपने 'सर्विस ऑफ मैन' नामी ग्रन्थके पॉचवे अध्यायमे किया है।

कयामतका चित्र।

धर्मके इसी अश (Aspect) पर व्यग करते हुए कर्नल इंगरसौलने कयामत (Day of judgement)—विचारके दिन—का निम्नलिखित हास्योत्पादक चित्र खीचा है।

"थोड़ी देरके लिए सोचो कि कयामतके दिन हमलोग विचारके निमित्त खुदाके सामने खड़े है और लोगोका न्याय हो रहा है। लिखनेवाला सेक्रेटरी आत्माओसे जिरह कर रहा है। एक रूह(आत्मा)के पहुँचने पर वह उससे प्रश्न करता है:—

"तुम कहाँसे आते हो?"

"मै दुनियासे आ रहा हूँ।"

"तुम किस तरहके आदमी थे?"

"मै अपने बारेमे स्वयं कुछ नही कहना चाहता। आप अपनी किताबोको देख कर मेरे चरित्रको खूब समझ सकते है।"

"नही नही, तुम्हे अपने मुखसे उत्तर देना होगा।"

"जब आपकी यही इच्छा है, तो सुनिए। मै बहुत अच्छा ऊँची श्रेणीका आदमी था। मै अपनी स्त्री और बच्चोको खूब प्यार करता था। मेरा घर ही मेरे लिए स्वर्ग था। स्त्री बच्चोके साथ अग्निके इर्द गिर्द बैठना मुझे वैकुण्ठसे भी अधिक प्रिय मालूम होता था। अग्निके समीप बैठ कर उनके मुखारविन्दके निहारनेसे, अग्निके प्रकाशसे उनके चेहरेके चमक उठने तथा परछाहीके पड़ने पर उनके चेहरेमे जो अनिर्वचनीय शोभा उत्पन्न होती थी उसका अवलोकन करनेसे मुझे परम आनन्द प्राप्त होता था।"

"अपने कुटुम्बके साथ तुम्हारा कैसा व्यवहार था?"

"मैने कभी एक भी कठोर शब्द किसीसे नही कहा। मैने अपनी स्त्री या पुत्र पुत्रियोको कभी एक क्षणके लिए भी कोई दुःख नही दिया।"

"तुमने अपने सारे कर्जको अदा कर डाला था?"

"मरते समय मेरे जिम्मे किसीकी एक कौडी भी बाकी न थी और मरते समय मै यथेष्ट सम्पत्ति छोड कर मरा था कि जिसमे मेरा श्राद्ध सुन्दरतासे निपट जाय और मेरे परिवारको किसी बातकी तकलीफ न हो।"

"तुम किस मतके अनुयायी थे और किस गिरजेके अधीन थे?"

"नही जनाब, सभी मत और मज़हब मुझे अति सकुचित, क्षुद्र, हृदयहीन और भ्रमप्रमादसे परिपूर्ण मालूम होते थे। मुझे यह मालूम होता था कि यदि और लोग जहन्नुममे जायेंगे, तो मुझे स्वर्गमे भी आनन्द न मिलेगा।"

"तुम अनन्त दण्ड (eternal punishment) मे विश्वास करते थे या नही ?"

"नही, मुझे माल्म होता था कि बहुत थोड़े समयमे खुदाका बदला लेना पूरा हो जायगा और उसका गुस्सा ठढा हो जायगा।"

"हौवाकी पसुलीसे पैदा किये जानेवाले किस्सेमे तुम्हे विश्वास है ?"

"क्या आपका आशय आदम और हौवेके किस्सेसे है ?"

"हॉ, तुम इस पर विश्वास करते थे ?"

"यदि सच पूछते हो तो यह किस्सा मेरी बुद्धिमे न अँटता था।"

"अभी अभी इसे नरकमे ले जाओ।"

इसके बाद दूसरेकी बारी आई।

"तुम कहाँसे आते हो ?"

"मै भी दुनियाहीसे आ रहा हूँ।"

"तुम किसी गिरजेके अधीन थे ?"

"जी हॉ, और मै यङ्गमेन्स क्रिश्चियन एसोसियेशन (Young Men's Christian Association) का भी सभासद था।"

"तुम्हारा क्या पेशा था ?"

"मै एक सेविंग्स बैंकका खजानची था।"

"तुमने कभी कुछ रुपया उड़ाया था ?"

"मै जिस स्थानसे आ रहा हूँ वहाँका यह नियम था कि साक्षी ऐसे प्रश्नोका उत्तर नही दे सकता है कि जिससे वह खुद मुजरिम साबित हो।"

"यहॉका नियम दूसरा है। तुम प्रश्नका उत्तर दो। कभी कुछ रुपया ले भागे थे ?"

"जी हाँ।"

"कितना ?"

"तीन लाख नकद ।"

"तुम अपने साथ और भी कुछ ले भागे थे ?"

"जी हाँ ।"

"जल्द बोलो क्या ले भागे थे ?"

"मै अपने एक पड़ोसीकी स्त्रीको भी निकाल लाया था । गिरजामें हम दोनो एक साथ गया करते थे ।"

"तुम्हे निजकी भी स्त्री और बच्चे थे ?"

"जी हाँ ।"

"और तुमने उन सबको परित्याग कर दिया ?"

"जी हाँ । परन्तु ईश्वरमे मुझे ऐसा दृढ विश्वास था कि मैने सोचा ईश्वर उनकी जरूर खबर लेगा ।"

"उसके पश्चात् तुमने उनके बारेमे फिर कुछ सुना है ?"

"जी नहीं हुजूर ।"

"तुम पसुलीके किस्सेमे विश्वास करते थे ?"

"खुदा आपको सलामत रक्खे, निस्सन्देह । हजारो बार मेरी इच्छा होती थी कि बाइबिलमे इस प्रकारकी एक ही कथा क्यो है । यदि इस तरहकी हजारो कथाये होतीं, तो मै अपने विश्वासकी दृढता और भी स्पष्ट कर दिखलाता ।"

"तुम उस किस्सेमे अब तक विश्वास करते हो ?"

"निस्सन्देह ।"*

"इसे स्वर्गमे ले जाओ । इसके हाथमे एक वीणा दे दो और इसका पूरा सत्कार करो ।"

* Ingersoll--Lectures and Essays Part II. P. 37.

वाहरे विश्वास और वाहरे तेरा माहात्म्य ! मनुष्यके रक्तसे अपने हाथ धो डालो, पीठ पीछे निपराधी लोगोंकी निन्दा करके उनके उज्ज्वल यशमें धब्बा लगा दो, मॉकी गोदमे हँसते हुए शिशुकी हत्या कर डालो, सुन्दर स्नेहकी मूर्त्तिको जो तुम्हारे लिए जान देती है और तुममें परम विश्वास रखती है धोखा दो, उसका सर्वनाश कर दो और उसे परित्याग भी कर डालो। इन सभी अपराधोंके लिए तुम्हे क्षमा प्रदान की जा सकती है; परन्तु यदि तुमने कहीं ईश्वर, देवता या बाइबलमे क्षणमात्रके लिए भी अविश्वास किया तो दयाका दिव्य सुन्दर और करुणामय मुखड़ा क्रोध और अनन्त घृणासे लाल हो उठेगा, स्वर्गके सुनहरे कपाट बन्द हो जायँगे और तुम नरककी भयानक अग्निमें झोंक दिये जाओगे। मृत्यु भी तुम्हारी सहायता नहीं कर सकती, क्योंकि नरकमे मौत नहीं है। मजहबी लोगोंके इसी आचरणको देख कर धर्मके इसी अन्धविश्वास पर व्यंग करते हुए वोल्टेअर* ने कहा था कि जैसे स्कूलोंमें इतिहास भूगोल या अन्य पुस्तकोंमें लड़कोंकी परीक्षा होती है मानो उसी प्रकार मजहबी लोगोंको वेद, बाइबल और कुरानमें परीक्षा पास करनी पड़ेगी।

विश्वास करने पर सत्कर्म और दुष्कर्ममें कोई अन्तर नहीं रहता।

निस्सन्देह, विश्वासकी महिमा अकथनीय है। नहीं नहीं, विश्वासका इतना माहात्म्य है कि फिर सत्कर्मकी परवाह ही करना वृथा है। जब एक बार राम नामका उच्चारण करनेसे, एक बार गंगास्नान करनेसे तथा ब्राह्मणोंको दान+देनेसे हजारो कुकर्म नष्ट हो जाते है, तब सदाचारकी तो कोई विशेष आवश्यकता नहीं दीख पड़ती!

---

* साधारण लोगोंका यह विश्वास है कि वौलटेअर नास्तिक है; परन्तु यह एकदम गलत है। वॉलटेअर कट्टर आस्तिक था और आस्तिकता पर उसने कितने ही निबन्ध लिखे हैं।

+ आधुनिक भारतहीके समान मध्यकालीन योरोपमें भी पुण्य रुपयों

अब यह विचार करना चाहिए कि जब भक्ति इतनी सहज, स्वर्ग इतना सुलभ है, तो लोग कर्त्तव्यकर्मका आश्रय क्यों ग्रहण करेंगे? क्या मजहबकी ऐसी शिक्षाओंसे सदाचारकी पुष्टि होती है या उलटा उसकी जड़मे कुल्हाडा लगता है? मान लिया कि व्याधाके, पापीके, डाकूके, गणिकाके, शराबीके, सभीके अपराध क्षमा कर दिये गये, उनका सारा पाप विश्वासकी पावनी गंगा द्वारा धुल गया, पर क्या उनके कुकर्मोंका नतीजा भी एकदम मटियामेट हो गया? या उनके एक बुरे कार्य्यसे हजारो बुरे कार्य उत्पन्न हुए? एक एककी अगणित संतति हुई? ईश्वरने *तो व्याध, डाकू, गणिका, कसाई इत्यादिको क्षमा कर डाला, पर क्या जिनकी उन्होंने हत्या की थी, जिनका उन्होंने सर्वस्व हरण किया था, जिन्हें पापमें फँसाया था, जिन्हें यन्त्रणा दी थी, क्या उन लोगोंने भी उन्हें क्षमा कर दिया? इन लोगोंका तो दुःख दूर हुआ, पर क्या इससे उन सबका भी दुःख दूर हो गया जिनका इन्होंने अहित किया था?*

सदाचार पर कुठाराघात

द्वारा खरीदा जा सकता था। थोड़ासा धन व्यय करनेसे ईश्वर अपराधियोंका अपराध क्षमा करता था और इसका सर्टिफिकेट गिरजेके प्रधान पुजारीके हाथोंसे रुपया देनेवालेको मिलता था। सर्टिफिकेट पर प्रधान पादरीके हस्ताक्षर बने होते थे। प्रत्येक पापसे मुक्ति लाभ करनेके लिए द्रव्य निर्द्धारित थे। जैसे डाइन होनेके पापसे मुक्ति पानेके सर्टिफिकेटका मूल्य दो डयूकेट था। बहुविवाहके अपराधको ईश्वर छ डयूकेट(ducat एक सिक्केका नाम) में, हत्याके अपराधको आठ डयूकेटमे और झूठ गवाही देने तथा मजहबी बातोंमे ठट्ठा करनेके अपराधको नौ डयूकेटमे क्षमा करता था।

और हमारे पापके उन साथियोंका क्या होगा, जिन्हें हमहीने पापके रास्तेमें ला छोड़ा है ? उस स्त्रीका क्या होगा जिसका सतीत्व हमने भग किया है ? उन युवकोका क्या होगा जो हमारा ही अनुसरण कर कुकर्मी हो बैठे है ? क्या हमारे साथ साथ इन्हे भी क्षमा प्रदान किया जायगा ? या अपने कार्य्योंका अवश्यम्भावी फल उन्हे चखना ही पडेगा ? हमारा प्रत्येक कार्य्य बीजके समान है । जिस प्रकार एक बीजसे अनेको बीज पैदा होते है, उसी प्रकार हमारे एक बुरे कामसे अनेको बुराइयॉ और एक सत्कर्मसे अनेको भलाइयाँ संसारमे जन्म ग्रहण करती है ।

परन्तु मज़हब इसपर ध्यान नहीं देता । यदि समय पर तौबा कर लिया जाय, तो कुकर्मों और सत्कर्मों सभीका अन्त एक ही होता है । इस समय जो घोर कुकर्मी है कल वही पूजनीय और महात्मा हो सकता है, और जो इस समय बड़ा सच्चरित्र देखनेमें आता है कल वही बहुत बड़ा अधर्मी हो सकता है । इसी कारण मज़हबने सत्कर्मकी अपेक्षा विश्वास, भक्ति, नामकीर्तन पर अधिक जोर दिया है । मजहब सदाचारका सहायक है या शत्रु, यह अब आप पर और भी स्पष्ट हो गया होगा ।

कर्तव्यको विश्वाससे कोई सरो-कार नही है।

मज़हबकी स्थिति विश्वासपर है और सदाचारकी कर्मपर । अतएव यदि मजहब और सदाचारका साथ नही होता, तो इसमे आश्चर्य्यकी कोई बात नही है । चाहे हम यह विश्वास करे कि इस जगतकी रचना एक ईश्वरने की है या चाहे हम यह माने कि बीस ईश्वरोने मिलकर इस दुनियाको बनाया है, हमारे कर्तव्यमे कोई अन्तर नही आता । मजहबका उद्देश ईश्वरको प्रसन्न करना है और इस कारण सच्चरित्र होने-

की अपेक्षा मजहबी आदमीको अत्यन्त नम्र तथा विनीत होकर ईश्वरकी उपासना करनेकी अधिक आवश्यकता है। *यदि वह कोई बरा काम भी करता है तो कोई परवाह नहीं। क्योंकि इसका फल सहजमें दो बार माला फेर लेनेसे, या किसी धर्मपुस्तकके दस पॉच पन्ने पढ़ या सुन लेनेसे एकदम मेटा जा सकता है।* मजहब भी निःसन्देह हमें कभी कभी सच्चरित्र होनेके लिए कहता है। इसी लिए कि ईश्वर इससे प्रसन्न होगा और हमे इसका पुरस्कार मिलेगा। इस लिए नही कि सदाचार स्वयं साध्य है। सत्कर्मका कोई पुरस्कार हो ही नहीं सकता। वास्तवमे आजन्म सत्कर्म करते रहने पर भी उन लोगोको महान् पुरुष कदापि नही कहा जा सकता, जो सत्कर्मको सत्कर्म समझ कर नहीं करते वरन् जो ईश्वरके कुपित होनेके डरसे दुष्कर्मोंसे अलग रहते हैं। नादिर, तैमूर, अकबर औरगजेब प्रभृति बादशाहोके मुसाहिबो, भृत्यो, या दरबारियोका विनीत अभिवादन या सलाम यदि सदाचरण कहा जा सकता है, तो निस्सन्देह हमे मजहबी लोगोकी ईश्वर-बन्दना और चाटुकारिताको भी सदाचारमे शामिल करना पडेगा।

कर्मका प्रभाव अमिट है।

सदाचार-व्रत धारण करनेमे हमे इस बातके जाननेकी आवश्यकता है कि कर्मका प्रभाव कदापि नही मेटा जा सकता। किसी समुद्रके किनारेसे एक कंकरीको उसमे फेक दो। उसमे तुरन्त ही लहरे उठना आरम्भ होगी और किनारे तक अवश्य पहुँचेगी—चाहे वे लहरे कितनी ही छोटी क्यो न हो, चाहे हम उन्हे अपनी ऑखोसे भी न देख सके। हमारे कर्मोंकी भी यही हालत है। चाहे कितने ही छोटे रूपसे क्यो न हो, हमारे प्रत्येक कर्मके द्वारा इस ससाररूप

समुद्रमे एक लहर अवश्य पैदा होती है। हमारे कर्मोंका नतीजा* ज़रूर व्याप्त होता है, चाहे ईश्वर हमे लाखो वार क्यो न क्षमा कर दे। अनुमान करो कि हम छल या पापण्डसे किसीका सर्वस्व हरण कर डालते है, उसके दूध पीते वच्चेको, उसकी स्त्रीको, दाने दानेके लिए मुहताज वना देते है या किसी निरापराधीको अनेक यत्रणाये देकर उसकी हत्या भी कर डालते है, तो क्या रशियाके भूतपूर्व जार या टर्कीके सुलतानके अपराध क्षमा कर देनेसे, कोई दण्ड न देनेसे, हमारा पाप पूर्णतया मिट जा सकता है? *यदि ये हमारे पापको मेट सकते है, तो ईश्वर भी ऐसा कर सकता है। जव तक हम ऐसा सोचते रहेगे, तव तक हमारे लिये यथार्थ सच्चरित्र होना कठिन है, क्योकि रो कलपकर, प्रार्थना कर, गिडगिडाकर, तथा खुशामद और चापलूसी कर ईश्वरके प्रसन्न करनेका रास्ता हमारे सामने खुला हुआ रहेगा।*

---

* यथा वार्धुषिको वृद्धिं दिनभेदे प्रतीक्षते।
धर्मेण पिहितं पापं धर्ममेवाभिवर्धयेत॥

—महाभारत, अनु० प०-१६२-५७।

अर्थात् "ऐसे मनुष्यके दुष्कर्मका प्रभाव दिन प्रति दिन उसी प्रकार वढ़ता है, जिस प्रकार कुसीदजीवी (व्याज लेने वाले) महाजनका सूद। यदि एक वार दुष्कर्म करके मनुष्य उसे सत्कर्मोंसे ढॅकना चाहता है, तो सत्कर्मके द्वारा उसके दुष्कर्मका प्रभाव नष्ट होता है और फिर उससे अन्य पापोंकी उत्पत्ति नहीं होती।"

बारहवाँ अध्याय।

मज़हब और सदाचार।

३–ईश्वरमें सदाचारका आदर्श।

प्राय: सभी मज़हब एक सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान ईश्वरमे विश्वास करते हैं। इसी विश्वासके सहारे प्राय: सारे मजहब खड़े हैं। यही मज़हबोका मुख्य स्तम्भ है। अतएव यहाँ पर यह अन्वेषण करना असंगत न होगा कि स्वय ईश्वरमें सदाचारकी मात्रा कितनी है। सदाचारके अवलम्बनमें ईश्वर कहाँ तक हमारा आदर्श हो सकता है। मजहबी लोगोके कथनानुसार ईश्वरमे विश्वास ही वह सजीवनी बूटी है जिसके द्वारा मज़हबी लोग सच्चरित्र होते है और मजहबके न रहने पर जिस सजविनीके अभावके कारण लोग दुश्चरित्र हो जायँगे।

ईश्वरमें सदाचारकी मात्रा कितनी है ?

पाठक घबरा सकते है, और कह सकते है कि ऐसा करनेका हमे कोई अधिकार नही है। ईश्वर अनन्त है, महान् है, हम क्षुद्र मनुष्य उसके भेदो पर, उसकी बातो पर विचार नहीं कर सकते। यदि आपका यह विचार है तो यह नि:सन्देह बलवानोकी स्तुति करनेके तुल्य है। यदि हम सत्यव्रती—सच्चरित्र होना चाहते है, तो हमे सत्यपर ही दडायमान होना पड़ेगा। हमे भयको, असत्यको परित्याग करना ही होगा। हम भले

इस प्रश्न पर विचार करनेमे भयभीत नही होना चाहिए।

ही क्षुद्र हो, दुर्बल हो; परन्तु सत्यको क्यो छोड़े ? ईश्वरके भयसे हम अपने अन्तःकरणको, अपने स्वाभाविक भावोको, क्यो दबाये ? हम सत्यवक्ता क्यो न हो ? परिणाम चाहे जो हो—ईश्वर हमे नरकमे भी फेक दे— हम अपने नैतिक स्वभावको नहीं छोड़ सकते। हो सकता है कि अपनी छोटी बुद्धिके कारण हम ईश्वरके कार्य्योंकी समालोचनामे भूल भी करे; परन्तु हमारी बुद्धिको इतना सीमाबद्ध किसने बनाया ? इसमे भी तो दोष ईश्वरहीका है।

संसारमें दुःखों और कष्टोंकी मात्रा।

दया, न्याय और अहिंसाका पालन, यह सदाचारकी आज्ञा है। पर ईश्वरमे इस दया न्याय अहिंसाकी मात्रा कितनी है ? और सदाचार पक्षपात छोड़नेकी भी शिक्षा देता है। पर क्या ईश्वर सर्वथा पक्षपातविहीन है ? देखो, सारी प्रकृति एक प्रकारका रणस्थल, एक प्रकारका श्मशान बनी हुई है। मक्खीके फँसानेके लिए मकड़ी क्या क्या चाले चलती है। बकरोका एक दल एक क्षणमे घास चरते हुए इतने जीवोको भक्षण कर डालता है कि जितने आदमी भी इस भूमण्डल पर न होगे *। बहरी छोटी छोटी चिड़ियोंका शिकार करती है,

---

* सूक्ष्मयोनानि भूतानि तर्कगम्यानि कानिचित्।
पक्ष्मणोपि निपातेन येषां स्यात् स्कन्धपर्ययः॥

—महाभारत, शान्तिपर्व १५–२६।

"इस जगतमे ऐसे सूक्ष्म जन्तु हैं कि जिनका अस्तित्व नेत्रोंसे नहीं देख पड़ता, तथापि तर्कसे सिद्ध होता है। ऐसे जन्तु इतने हैं कि यदि हम अपनी आँखोंके पलक हिलावें तो इतनेहीसे उन जन्तुओंका नाश हो जाय।"

—गीतारहस्यका हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ३१।

आह ! और सिवाय हिंसाके इस ससारमे है ही क्या ? एक करुणार्द्र अँगरेजी लेखकने सच ही कहा है कि हमें प्रत्येक मुखको यथार्थ वध्य-भवन (Slaugh-

सिह अनेको जानवरोको मार कर अपनी उदरपूर्ति करता है; परन्तु सिह और बहरी दोनो ही मनुष्यके शिकार बनते है। और वह मनुष्य भी क्या निरापद है? नही नही, कदापि नही। लड़ाई छिडती है, मानवरक्तसे रणस्थल लाल होता है, उसका सिर धडसे विलग हो कर पृथ्वी पर लोटता है, दर्द और दुःखसे कातर हो कर जख्मी मनुष्य कराहने लगता है तथा बेचैन होकर प्रचण्ड ग्रीष्मके उत्तापमे बिना पानीके तृष्णाके मारे पानी पानी चिल्लाता हुआ अपने प्राण देता है और उसके मासको चील कौवे तथा जंगली जानवर भक्षण करते है। इतना ही नही, केवल लड़नेवाले ही लड़ाईमे काम नही आते। एक एक

---

ter house) और प्रत्येक उदरको यथार्थ कब्र समझना चाहिए। इस प्रसगमे कौशिकके प्रति व्याधके वचन विशेष रूपसे उद्धृत करनेके योग्य हैं। "खेती करके अन्न पैदा करना कितना आवश्यक है, पर हल चलाने और अन्य कृषि कार्योंसे कितने जीवोंकी हिसा होती है? मनुष्य वृक्ष और ओषधियोको काटता है। इनमे भी कितने जीव रहते हैं? सबके पीनेकी वस्तु जल भी तो जीवसकुल है! ऐसी अवस्थामे सिवाय इसके और क्या निर्णय किया जा सकता है कि इस जगतमे एक जीव दूसरे जीवका आहार होता है!!! देखो, मछली मछलीको भक्षण कर डालती है और एक प्रकारके जीव अन्य प्रकारके जीवोंको वध करके अपनी उदरपूर्ति करते है। कुछ जीव अपनी जातिके जीवोका ही बध करते है। हे ब्राह्मण, भूमि पर रहनेवाले बहुतसे जीवोको मनुष्य अपने पैरोंसे कुचल डालता है। बुद्धिमान और ज्ञानसम्पन्न मनुष्य भी चलने फिरने, उठने बैठने, सोने इत्यादिमे बहुतसे जीवोंकी हिसा कर डालते है। पृथ्वी और आकाशमे कोई ऐसा स्थान नहीं जो जीवोसे शून्य हो। अज्ञानसे ही मनुष्य बहुतसे जीवोंकी हत्या करता है। हे पुरुषश्रेष्ठ, ससारमे ऐसा कौन प्राणी है, जिसने हिसा नही की? अनेक अनुशीलन और चिन्तनके बाद मै यही स्थिर कर सका हूँ कि ससारमे ऐसा कोई प्राणी नही कि जो हिसा न करता हो।" —महाभारत, वनपर्व।

तैमूर और चंगेजके आक्रमणोसे लाखों नगर उजाड़ हो जाते हैं, लाखों सधवायें विधवा, लाखो सतियॉ सतीत्वहीना और लाखो शिशु मातृपितृहीन हो जाते है। माताकी गोदमे उनकी ऑखोके सामने कितने मृदुल मुसकुराते हुए बच्चोकी देहमे भाला चुभाया जाता है। ठहरो, ठहरो, उदाहरणोकी कमी नही है, कहॉ तक उदाहरण दिये जायें? एक साल वृष्टि नहीं हुई। धरती माताने मनुष्यके भरण पोपणका कुछ भी विचार न करके मनो बीजके बदले एक छटाक अन्न भी प्रदान न किया। अब मनुष्य खाय तो क्या खाय? कई शाम कडाकेके बाद जो हाथ आया उसीसे काम चला, पर यह भी कब तक हो सकता है! खैर, अन्न नही तो कन्द मूल, वृक्षके फल, छाल, पत्ते और इन सबके अभावमे मिट्टीहीसे अन्नका काम लेना शुरू किया। परन्तु इससे भी प्रकृतिको सतुष्टि न हुई। अपना नियम उल्लङ्घन करनेके कारण प्रकृति उन्हे दण्ड देनेमे तनिक भी कुण्ठित न हुई। उसने अनेको बीमारियोको इनके मध्य डेरा डालनेका हुक्म दिया। हजारो सक्रामक व्याधियाँ फैल गई, और प्रकृतिके स्वामी मनुष्यने यूथके यूथ, चिरागके नीचे पतङ्गोके ढेरके समान, पैर रगड रगड कर, बिलख बिलख कर, ईश्वरको टेर टेर कर अपना प्राणत्याग किया। पैसिफिक महासागरमे एक जहाज फक फक कर पानीको चीर चीर कर अपना रास्ता बनाते हुए दनादन चला जा रहा था। उसके ऊपर लाखोका माल था। प्रायः हजारो आदमी सवार थे। कुछ लोग व्यवसायके लिए अन्य देशोको जा रहे थे। कुछ लोगोंने देशभ्रमणके लिए ही अन्य देशोकी यात्रा की थी। विद्याके कुछ प्रेमी विदेशमे विद्याध्ययनके उद्देशसे ही इस पर सवार हुए थे। स्त्री और बच्चोकी भी इस जहाज पर कमी न थी। कुछ मुसाफिर ऐसे भी थे जो बरसोके उपरान्त अपने स्वदेशको लौटे जा रहे थे

और जिनके लिए एक एक पल एक एक सालके समान माळूम होता था, जिनका प्राण स्वदेशमे पहुँच चुका था, पर केवल उनका धड ही जहाज पर अटका हुआ था। जहाजकी तेज़ चाल उन्हे साधारण प्रतीत होती थी। इतनी वड़ी सफर काटे नहीं कटती थी। उत्कण्ठा और उद्वेग उन्हे विह्वल किये हुए थे। यदि एक क्षणके लिए उन्हें अपेक्षाकृत कुछ आराम भी मिला, तो कल्पनाकी हजारो तसवीरे उन्हे बेचेन किये देती थीं। घर पहुँचनेके साथ ही उनका प्यारा वच्चा मोहन—जिसे देखे हुए उन्हे आज सात वर्ष हुए—दौडा हुआ आकर पिता पिता कह कर उनसे चिमट जायगा। सावित्री भी जिसे वे दूध-पीती छोड़कर विदेशको चले गये थे अव खूब वोलने लग गई होगी। अब तो वह वखूवी दौडती होगी। घर पहुँचने पर उनकी धर्म-पत्नीको कितना आनन्द आयेगा, वह किस प्रकार प्रेमके आँसू वहा-येगी, यह सब स्मरण आते ही उनका जी उमड आया। कितना ही रोका न रुका, सावन भादोने झड़ी लगा दी। खूब रोये। एक क्षणके वाद जब स्थिर हुए तो लगे काल्पनिक चित्र खींचने। मित्रोसे भेट होने पर वे उन्हे सफरकी अनेक कथा सुनायेगे, अमुक अमुक बाते कहकर अपनी ज्योतिर्मयी स्नेहमयी अर्द्धाङ्गिनीको प्रसन्न करेगे, इत्यादि इत्यादि। पर विधनासे यह न देखा गया। उसी क्षण जहाज एक अदृश्य चट्टानसे टक्कर खागया। एक क्षणमे जहाजमे कुहराम मच गया। चारो ओर कोलाहल छा गया। चारो ओरसे 'हाय प्राण गये, हाय प्राण गये' 'मरा' 'डूबा' की आवाजे आने लगी। स्त्रियाँ बेहोश हो गई। बच्चे घवरा घवरा कर रोने लगे। अनेक धार्मिक पुरुष ईश्वरको याद करने लगे—" हे सच्चिदानन्द जगद्बन्धु, भक्तभय-हरण ..., तुमने गजको ग्राहसे, प्रह्लादको हिरण्यकशिपुसे बचाया था।

तुमने द्रोपदीकी लाज रक्खी थी। एक साधारण गजका भी दुःख तुमसे देखा न गया था और वैकुण्ठ छोड़ तत्क्षण गरुड़के ऊपर बैठकर उसके क्लेशविमोचनके लिए दौड़े आये थे। प्रभो यही अवसर है, तुम्हारे बिना हमारा दुःख और कौन हर सकता है?—

नैया नाथ! भँवरमें अटकी।

परन्तु किसीके किये कुछ न हुआ और बातकी बातमे वह जहाज उन सभी मुसाफिरो और उनकी हसरतो, सारी उमगो, उद्वेगो, भावो और विचारोके साथ सदाके लिए अनन्त जलराशिमे लोप हो गया! इतने आदमियोकी एक हड्डी तकका भी पता न चला!

किसी नदीके किनारे, पहाड़ोसे घिरा हुआ, प्रकृतिके निजके हाथोसे सजाये हुए स्थानमे एक अति सुरम्य और उन्नत नगर बसा हुआ था। उसकी बहुत बडी आबादी थी और वह व्यापार वाणिज्यका केन्द्र था। लोग सुखी और शान्त स्वभावके थे और सर्वत्र शान्ति फैली हुई थी। यह नगर अति प्राचीन था, युगोसे यह बढ और फैल रहा था। परन्तु अब यह बहुत काल तक शान्ति भोग चुका था, शायद इसी ख्यालसे दैवने यहाँ ज्वालामुखीकी उत्पत्ति कर दी। जो पहाड़ इतने सुन्दर और प्राकृतिक सौन्दर्य्यके भांडार थे उन्हींमें अग्नि भडक उठी। पहाड़ करकरा कर पिघलने लगे। आग और चट्टानोकी गोलाबारी होने लगी और कुछ ही समयमे सारा नगर जल भुनकर खाक हो गया।

इस प्रकारके उदाहरण देकर कहाँ तक समय नष्ट किया जाय? *यदि संसारकी यंत्रणाओं पर, मनुष्यके शोकों पर, जीवोंके दुःखों पर ध्यान दिया जाय तो प्रतीत होगा कि दुःख और शोक सहनेके लिए ही मनुष्यका जन्म हुआ है। हम मृत्युहीके लिए पैदा हुए है। एक क्षण जीना मानों आयुमेंसे एक क्षण घटा लेनेके समान है।*

सहानुभूति-सम्पन्न करुणा-हृदय भगवान् बुद्ध सच कहते थे कि ससारमे सिवाय दुःख शोक और हिसाके है ही क्या ! सच है—

हवा नही है यह नेचरकी सर्द आहें हैं।
सितारे कब हैं यह हसरतभरी निगाहें हैं॥

बिना हिंसा किये हम एक क्षण भी जीवित नही रह सकते। शास्त्रने सच कहा है कि *"जीवो जीवस्य जीवनम्।"* प्रत्येक श्वासमे और प्रत्येक घूँट जल पीनेमे हम असख्य जीवोका प्राण हरण करते है। जीवनप्रयास (Struggle for existence)का नियम बड़ा कठिन है। *विचार किया जाय तो हमारे भोजनका हरएक नेवाला मासका पिण्ड है और हमारे पानीका हर घूँट लहूके समान है*। जब तक ससारमे एक भी भूखा है, तब तक क्या हमे भोजन करना शोभा देता है? जब तक एक भी मनुष्य वस्त्रहीन है, तबतक क्या ये रंग बिरंगके ऊनी और रेशमी कपड़े, तरह तरहके साटन और किमखावके वस्त्र हमारे शरीरकी सुन्दरताको बढानेके बदले उलटा इसे अपमानित नही करते? परन्तु जीवनप्रयासका नियम ही ऐसा है। पशुसर्ग वनस्पतिसर्गको अपने काममे लाते है। पशुओमे भी श्रेष्ठ पशु दुर्बलो पर जुल्म करते है और अकसर उनके रक्तमांससे अपने शरीरमे रक्तमांस कायम रखते है। मनुष्य इन पशुओ पर अपना आधिपत्य जमाता है। वह उन्हे केवल शिकार करता और खाता ही नही है वरन् अन्य रीतिसे उन्हे अपने आरामका यन्त्र भी बनाता है। मनुष्योमे भी बल बुद्धि और ज्ञानसे युक्त मनुष्य अपेक्षाकृत नीचे मनुष्योको अपने सुखसाधनका हेतु समझते है। नाज किसान पैदा करता है; परन्तु पहले भूखा वही मरता है, उत्तम भोजन उसको ही नसीब नही होता। कपडा मजदूर ही बुनते है, पर जाडेमे उनहीको नगा रहना पडता है। अतएव हमारे उपर्युक्त कथनमे तनिक भी अत्युक्ति नही है कि हमारे

भोजनका हर एक नेवाला मासके एक पिण्डके समान तथा हमारे पीनेका हर एक घूँट रक्तके सदृश है। अब जो बात व्यक्तिगत मनुष्योकी है, अन्तर्जातीय दृष्टिसे देखनेसे जातियोके साथ भी वही बात चरितार्थ होती है। जिस प्रकार नीचे और अपेक्षाकृत निकृष्ट मनुष्य बड़े और बुद्धिमान मनुष्योके सुखका यन्त्र बनते है, वही हालत नीची जातियोकी होती है। ससारकी प्रायः सभी आदिमनिवासी प्राचीन जातियाँ अब लोप होती जाती है और प्रायः हर एक नीची जाति ऊँची और सभ्य जातिकी कामधेनु बन रही है। प्रायः प्रत्येक अपक्षाकृत असभ्य देश सभ्य जातियोकी रगशाला बन रहा है।

संसारके दु खोंको देखकर हम ईश्वरको दयावान् नही कह सकते।

इतने दुःखों, इतने क्लेशो, इतनी यन्त्रणाओके मौजूद रहते भी क्या हम ईश्वरको न्यायशील, पक्षपातविहीन एव दया और स्नेहका भाण्डार कह सकते है—*उस ईश्वरको जो भूत, भविष्य, वर्तमान सभीको जानता है, उस ईश्वरको जो सर्वशक्तिमान है?* हतभाग्य मनुष्यने उसका क्या बिगाडा था, जो उसने उसे जन्म दिया? परन्तु हमारे पाठक, क्रिस्तानोके समान कह सकते है कि ईश्वरने मनुष्यको पूर्णतः स्वतन्त्र बनाया है। ईश्वर मनुष्यको दुःख नही देता, वरन् वह अपनी मूर्खतासे अपने दुराचरणके कारण स्वय दुःख भोगता है। ईश्वर पर किसी प्रकारका अभियोग नही लगाया जा सकता। पाठक, मै आपसे पूछता हूँ कि क्या ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान नही है? क्या प्रकृति, मनुष्य या समस्त सृष्टिका रचयिता ईश्वर नहीं है? उसने ऐसे मूर्ख मनुष्यकी रचना क्यो की थी कि उसे खाहमुखाह दुःख हो तथा ऐसे ससारके मध्य ही उसने मनुष्यको क्यो रक्खा था? क्या वह मनुष्यके उपयुक्त

दूसरे प्रकारके संसारकी रचना न कर सकता था कि जिसमे मनुष्यकी सभी कामनाये पूर्ण हो और उसे कोई कष्ट न उठाना पड़े ? क्या ईश्वरकी बुद्धिका भाण्डार खाली हो गया था ? मनुष्यका हृदय इतना दुर्वल क्यो बनाया गया कि वह खाहमुखाह पापके पथमे पग देता है ? उसमे इतनी वासनाये क्यो भरी गई ? इस पर भी मजहव यह धमकी देता है कि ईश्वर मरणोपरान्त उससे अवश्य बदला लेगा । किसी आदमीके हाथ पैर बाँध कर उसे समुद्रमे डाल दिया जाय और इसपर भी उससे कैफियत तलव की जाय कि तेरे कपड़े क्यो भीगे ? क्या ईश्वरका आचरण ठीक इसी प्रकारका नही है ? एक फारसीके कविने ठीक कहा है:—

दरमेआन क़ार दरिया तखतः बन्दम कर्दई: ।
बाज़ मीगोईके दामन तर मकुन हुशियार बाश ॥

अनुमान करो कि कोई पिता अपने अबोध बालकको संखियेका एक डला खेलनेके हेतु दे देता है। बच्चा उसे पाकर अत्यन्त प्रसन्न होता है। वह उसके रग पर मोहित हो जाता है, तथा उसे मिसरीका डला समझ कर चाटना आरम्भ करता है। क्षण मात्रमे हालाहल पैवस्त हो जाता है और बच्चेका मुखड़ा नीलवर्ण हो जाता है। उसके हाथ पैर और सारा शरीर ऐठने लगता है; परन्तु तौ भी उसका पिता धीर और उदासीन ही रहता है। वह कहता है कि मै बच्चेकी मृत्युका उत्तरदाता किसी प्रकार नहीं हो सकता। क्योकि जहर खा कर बच्चेने अपने प्राण स्वय दिये है। इसमे मेरा क्या दोप ? क्या परम पिता परमात्माको यह उत्तर शोभा देगा ? क्या मनुष्यको ईश्वरसे यह प्रश्न पूछनेका अधिकार नहीं है कि आपने मुझे जन्म क्यो दिया, और यदि जन्म भी दिया तो इतना दुर्वल क्यो बनाया ? इसपर इतनी वासनाये हमारे हृदयमे क्यों

भर दीं ? और यदि कामनाये उत्पन्न कीं, तो उन्हे पूर्ण क्यो न किया तथा जन्म देकर इतना दु:ख क्यो दिया ?

मनुष्यको यंत्रणा पहुँचानेके सूक्ष्माति-सूक्ष्म उपाय।

अहा ! और मनुष्यको दु:ख और यत्रणा पहुँचानेके लिए उपाय भी कैसे कैसे किये गये है। कैसी कैसी व्याधियोके और कैसे कैसे विषोकी रचना की गई है। पुनः ये बीमारियॉ किस सुगमताके साथ--किन किन अदृष्ट रीतियोके द्वारा अपना लक्ष्य बनाती है। बीमारीके कीड़े (Bacteria) भी किस चतुरता और बुद्धिमानीके साथ बनाये गये है। बारीकसे बारीक यन्त्रोके द्वारा भी बाज दफा इनका पता चलना बड़ा कठिन हो जाता है। तब बेचारा मनुष्य अपनी नंगी ऑखो द्वारा इनसे कहाँ तक सतर्क रह सकता है। वायुके साथ, भोजनके साथ, या अन्य तरल पदार्थोंके साथ ये हमारे शरीरमे प्रवेश कर जाते है और अपना भीपण कार्य्य आरम्भ कर देते है। और ये बढते भी कितना जल्द है। एक अकेला कीडा (जीवाणु Bacteria) केवल बारह घटेमे १६,८००,००० कीड़ोकी उत्पत्ति कर सकता है ! *प्रकृतिको देखकर, संसारको देख कर, यदि कुछ स्पष्ट होता है, तो यही कि प्राणियोंके सुखकी अपेक्षा उनके दुःखका ही अधिक प्रबंध किया गया है*---मनुष्यके सुखी बनानेकी अपेक्षा उसके दुखी बनानेके लिए ही ईश्वरने अधिक प्रयत्न और परिश्रम किया है।

आप कहेगे कि ईश्वर सब कुछ हमारी भलाईहीके लिए करता है। हमे जो अमङ्गल या बुराई देख पडती है वह भी यथार्थमे मंगल और भलाईहीके लिए है। पर *क्या ईश्वर सर्वशक्तिमान नहीं है ? सब कुछ सामर्थ्य रखते हुए भी वह निर्दयता और हिंसासे क्यो काम लेता*

है ? जो बात मनुष्यके लिए अन्यन्त निन्दनीय है; क्या वह ईश्वरके लिए उपयुक्त है ? अच्छा (ईश्वरके सर्वशक्तिमान होने पर भी) क्षण-भरके लिए मान लेते है कि ईश्वर कोई दूसरा प्रवध न कर सकता था। इससे उत्तम प्रबन्ध करना उसके लिए असम्भव था। तब उसे *सृष्टिरचनाहीकी क्या आवश्यकता थी ?* क्या चुपचाप बैठे बैठे ईश्वरका जी उकता गया था ?

इसपर भी यह कहना कि जो कुछ होता है वह मनुष्यकी भलाई-हीके लिए होता है, उसको चिढानेके तुल्य है। *मानों* यह उसके *ताजे जख्मोपर नमक छिड़कना है*। मित्रो, दुखियोके दुःखसे दुखित होओ—सहानुभूति-सम्पन्न होओ—हृदयको कठोर मत बनाओ।

दुःख और शोकके द्वारा ईश्वर संसारका मंगल करना चाहता है—इस विश्वाससे हमारा नैतिक चरित्र उन्नत नही हो सकता।

अच्छा, खैर मान लिया कि सब कुछ ईश्वरकी इच्छासे होता है। दुःख, शोक, हिंसा या अन्य सब बुराइयोके द्वारा ईश्वर अच्छा करना चाहता है। तो क्या इस विश्वाससे हमारा कुछ उपकार होता है ? हमारी सदाचारबुद्धि बढती है ? यदि ये सारी बुराइयाँ ईश्वरकी इच्छासे ही मौजूद हुई है और इनके द्वारा ईश्वर संसारका भला करना चाहता है तो *इसमे दखल देनेका—संसारके दुःख और सतापके कम करनेके निमित्त प्रयत्न करनेका हमें क्या अधिकार है ?* क्या ईश्वरकी इच्छाके विरुद्ध काम करना हमारे लिए मुनासिब है ? ईश्वर अनन्त है, सर्वज्ञ है, सर्वशक्तिमान है। वह सब कुछ संसारके हितके लिए करता है। उसमे निर्दयता नहीं। *मनुष्यको शोक और संताप, दुःख और रोग उसके भावी मगलके लिए मिलते हैं—इसमें ईश्वरका गूढ अर्थ छिपा हुआ है। अतएव हम किसीका*

क्लेशविमोचन क्यों करें ? हम रोगियोकी चिकित्सा क्यो करे ? हम दुखियोका शोक क्यो मेटे ? हम अनाथोंकी सहायता क्यो करे ? जब उनके ही भावी मगलके लिए ईश्वर उन्हे रोगी और दुखी बनाता है, तब हम ईश्वरके कार्य्यमे क्यो हाथ डाले ? हमारा दखल देना उनकी सहायता करना नहीं, वरन् उनकी यथार्थ शत्रुता करना है।

अब आप स्वय विचार कर सकते है कि ईश्वरमे हमे सदाचारके क्या क्या लक्षण मिलते है और क्या सदाचारव्रत धारणमे ईश्वर हमारा आदर्श हो सकता है ?

दुःख और शोककी समस्या पर मनुष्य बहुत दिनोंसे विचार करता आ रहा है। ईश्वरकी बातोंको वह अब तक नही समझ सका है।

निस्सन्देह जिस समयसे विचारने मनुष्यके जीमे अपना जन्म ग्रहण किया है उस समयसे ही ईश्वरके तरीके——खुदाकी खुदाई——मनुष्यके हृदयमे खटकने लगी है। ईश्वर न्यायशील है, कृपालु है, स्नेहपूर्ण है, तो भी उसके साम्राज्यमे इतना क्लेश क्यो है ? मनुष्यको इसका कोई उत्तर न मिला। ईश्वर न्यायी है, पर हर एक धर्मग्रन्थमे ऐसी अनेक कथाये मिलती है जिससे यह पता चलता है कि वह मनुष्य जिसने जीवनपर्य्यन्त दुष्कर्म किया है, दूसरोका अनिष्ट किया है, केवल क्षण भरके लिए ईश्वरको याद कर हॅसता हँसता वैकुण्ठमे गया है और वह मनुष्य जिसने कि अपना सारा जन्म सत्कर्मोंमे, संसारकी भलाईमे व्यतीत किया है, एक साधारण दोषके कारण अनन्त नरकमे भेज दिया गया है। *क्या ईश्वर ऐसा खुशामद-पसन्द है ?* स्वाभाविकतः ये सब प्रश्न मनुष्यके हृदयमे उठने लगे है। निसन्देह शुरूसे ही मनुष्यके सामने इससे और कोई बडी समस्या न थी और इसके हल करनेमे इतनी बुद्धि खर्च की गई है कि जितनी और किसी

काममे नही की गई। हर एक मज़हबने इसको हल किया है और अपना अपना मत दिया है। किसीने पुनर्जन्मका आविष्कार किया है, कोई कहता है कि ईश्वर अन्यायी नहीं, बिना अपराधके वह दण्ड नही देता, वे सभी पुरुष, स्त्री, बच्चे जो समुद्रमे डूब कर, ज्वालामुखीकी अग्निसे जल कर, अथवा दुर्भिक्षकी यन्त्रणाओंको सह कर या अन्य प्रकारसे मरे हैं, पापी थे। बहुतेरे मत इस समस्याका कोई उत्तर न पा कर हताश हो गये है और इसके हल करनेके श्रमको ही वृथा समझते हैं। ईश्वर अनन्त है, उसकी बुद्धि अनन्त है, मनुष्य परिमित है, उसकी बुद्धि छोटी है। वह ईश्वरकी निगूढ बातोंका पता कैसे लगा सकता है? क्या चिड़िया उड कर आकाशकी ऊँचाईका पता लगा सकती है? क्या सागरको गागरमे बन्द किया जा सकता है? परन्तु धर्मोंद्वारा इतने उत्तरोंके पाने पर—इस जटिल समस्या पर इतनी पुस्तकोंके लिखे जाने पर भी आजतक मनुष्य सतुष्ट नही हुआ है। शकाकी अग्नि अब तक नहीं बुझ सकी है और वह अबतक नित्य प्रति हाथ जोड़ कर भक्तिभरे भावसे ईश्वरके सामने निम्नलिखित भजन गाया करता है और इस समस्याका उत्तर चाहता है—

दयानिधि तेरी गति लखि न परे।
धनते धर्म धरमते अधरम, अकरम कर्म करे॥ दयानिधि०
पिता वचन मेटै सोइ पापी, सो प्रह्लाद करे।
ताको बन्दि छुड़ावनको प्रभु, नरसिंहरूप धरे॥ दया०॥
एक गऊ जो देत विप्रको, सो सुरलोक तरे,
कोटिन गउ राजा नृग दीन्हीं, गिरगिट होइ कूप परे॥दयानिधि॥
गुरु वसिष्ठ अति ही गुनआगर, रुचि रुचि लग्न धरे।
सीता हरन मरन दसरथको, विपतिमें विपति परे॥ दयानिधि०॥

वेदविदित तेरो जस गावै, सो बलि यज्ञ करे।
ताको बांधि पताल पठायो, कैसे सूर तरे॥ दयानिधि०।

अतएव धर्मका उद्देश्य इस ईश्वरको प्रसन्न करना है न कि मनुष्यको सच्चरित्र बनाना। चाहे हम मुँहसे कुछ कहें, साधारण मनुष्यके हृदयमे ईश्वरके नामसे भयका ही संचार होता है, प्रेमका नही। वह ईश्वरकी बातोंको नहीं समझ सकता। उसे ईश्वर दयालु नही वरन् भयानक प्रतीत होता है। परन्तु वह *अपने भावोंको प्रकट नहीं कर सकता—शायद ईश्वरको इससे और भी बुरा लगे।*

साधारण मनुष्य ईश्वरको कैसा समझता है।

खुदा हरचे खाहद कुनद बन्दः बाश।
रज़ां पेश गीर वो सर अफगन्दः बाश।

अर्थात्—ईश्वर जो चाहे करे, तू उसका भृत्य बना रह। उसकी इच्छाको शिरोधार्य कर और गर्दन झुकाये रह।

ईश्वर चंगेज़, नादिर तथा तैमूरके समान अत्याचारी है और वह स्पष्ट बात कदापि नहीं सह सकता। इसीलिए मजहबी लोग हब्शी गुलामोसे भी अधिक भीरु और कापुरुष होते हैं। क्योकि जालिम आदमीको खुशामद और चुपचापे आज्ञापालनसे अधिक और कुछ पसन्द नहीं आता। ईश्वर किसी प्रकारके अभिमानको बर्दाश्त नहीं कर सकता। उसका नाम ही गर्व-प्रहारी है। लाखो बरस भी कोई ईश्वरकी सेवा क्यो न करे, पर ज़रासे अभिमानसे सम्पूर्ण नाश हो जाता है। क्योकि—

यह विश्वास मनुष्यको भीरु और कापुरुष बनाता है।

गया शैतान मारा एक सिजदेके न करनेमें।
अगर लाखों बरस सिजदेमें सर मारा तो क्या मारा॥

सूरदासने सच ही कहा है। ईश्वरकी रीतियाँ ही निराली है। ईश्वर पर भरोसा नही किया जा सकता। हम नहीं कह सकते कि वह कब और कौनसे कार्य्योंसे प्रसन्न होता है और कब और कौनसे कार्योंसे अप्रसन्न। ईश्वरमे कोई नियमाधीनता या स्थिरता नही है। इसी लिए मजहबी आदमी एक पतित भृत्यके समान बन कर ईश्वरकी खुशामद करने लगता है और अपने अन्तःकरणमे उसे निष्ठुर और निर्दय समझ कर भी दयालु करुणासिन्धु कहता है। वह इस प्रकार प्रार्थना करता है (और सिवाय इसके वह कर भी क्या सकता है ?) कि—

"हे प्रभो मै पतितन सरदार।"
"हकीकतमे बन्दा गुनहगार है,जो चाहो सजा दो सजावार है।"
"पापोहम् पापकर्माहम् पापात्मा पापसम्भवः।
त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष सर्वपापहरो मम॥"
"नहिं विद्या नहिं बाहुबल, नहिं खरचेको दाम।
ऐसे पतित अपंगुकी, पत राखहि श्रीराम॥"
"मेरे अघ शारद अनेक युग, गनत पार नहिं पावै।
तुलसी पतित पतितपावन प्रभु, यह भरोस जिय आवै॥"

गरज दीन बन कर, हीन बन कर, कायर कापुरुष बन कर, अधम और पापी बन कर, अपने मनुष्यत्व और गौरवको नष्ट कर वह ईश्वरके सामने कगालके समान भिक्षाका प्रार्थी बनता है। आईनके अनुसार प्रति सभ्य देशसे गुलामीकी प्रथा उठा दी गई है, परन्तु न जाने लोग यह खुदाकी गुलामी करना कब छोडेगे ! उदाहरण कहाँ तक दिये जायँ। धर्मग्रन्थोको छोड़िए, भक्तिपथका कोई भी ऐसा प्रचालित गीत न निकलेगा, जिसमे यह भाव न भरा हो। वे साधारण भजन भी जिन्हे लड़के बाजारो बाजार गाते फिरते है इन्ही विचारोसे परिपूर्ण है। प्रायः हर

एक भक्त भारतवर्षके आधुनिक मंगतोके समान ईश्वरके साथ ज़िद करता है। वह कहता है कि "चाहे तू मुझे मार या डॉट, जो तेरी इच्छा हो, कर डाल, परन्तु मैं तुझे छोडनेवाला नहीं।" धन्य है लाखोमे एक श्रीरामकृष्णके समान महात्मा, जिनका ईश्वर सर्वस्व प्रेम होता है और जो अपना सर्वस्व ईश्वरको समर्पण कर डालते हैं। ईश्वर जिनका मालिक नहीं बल्कि सखा, मित्र या भाई होता है। नही नही, जो सब कुछ ईश्वरको समर्पण कर स्वयं ईश्वर हो जाते है। जो कालीको पहराई जाने-वाली मालाओंको पहले स्वय पहिन कर देख लेते है कि सुन्दर लगती है या नहीं, जो सेवरीकी तरह ईश्वरके नेवैद्यको पहले स्वयं खाकर देख लेते हैं कि सुस्वादु है या नही। परन्तु ऐसे महात्मा विरले है और हर एक धर्मके इतिहासमे शायद ऐसे महानुभाव दो चारसे अधिक न निकलेगे। और हम उन्हे मजहवी कह भी नही सकते, क्योकि ऐसे महात्मा किसी मजहवके अक्षरशः भृत्य कभी नही होते। वे मजहवके प्रत्येक आदेशको कभी नहीं मानते।

परन्तु *साधारण आदमीका ईश्वर ज़िद्दी, ज़ालिम और अस्थिरचित्त होता है और मजहवका उद्देश उसी ईश्वरको प्रसन्न करना है। इसलिए मज़हवके लिए सदाचारकी अपेक्षा व्रत उपवास पूजा और पाठ अधिक आवश्यकीय है।* यदि कभी सत्यका उल्लघंन हो जाय तो कोई हर्ज नही, ईश्वर दयालु है क्षमा कर देगा; परन्तु खाद्याखाद्यके नियमका कभी उल्लघंन नहीं होना चाहिए। स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, परिवार तथा मनुष्य जातिके साथ हमारा जो कर्त्तव्य है उसमे त्रुटि हो जानेमे कोई क्षति नहीं; परन्तु नीच जातिका छुआ हुआ जल नहीं पीना चाहिए। जब नामकी महिमा अपार है, तब सदाचार, ज्ञान, धर्म, कर्म इत्यादिके बखेड़ेमें कौन फँसे ?

को करि तर्क बढ़ावे साखा ।
होइहै वहि जो राम रचि राखा ॥

आओ किसी कोनेमें बैठ जायँ, हाथमे माला ले कर राम राम जपा करे। बस बेडा पार है। और अब तो तिब्बतके लामाने माला जपनेके कामको भी सहज बना डाला है। उन्होने एक यंत्रका आविष्कार किया है जिसके द्वारा माला हाथकी अपेक्षा अधिक सुगमता और शीघ्रताके साथ जपी जा सकती है !

मजहब और सदाचारका क्षेत्र पृथक् है। वास्तवमे यदि विचारकी दृष्टिसे देखा जाय तो यह समझमेही नही आता कि हमारे दिन रात राम राम रटनेसे, केदार-बदरिकाभ्रमणसे, एकादशीके दिन भूखे रहनेसे, रविवारके दिन तेल न लगानेसे, शनिवारको हजामत न बनानेसे, अमुक वस्तुके न खानेसे, या अमुकका छुआ हुआ जल न पीनेसे (शायद हमारा कुछ भला होता हो) संसारको क्या लाभ पहुँचता है? मजहबी आदमी यह नहीं चाहता कि उसका जीवन सत्कर्मंमे समाप्त हो जाय। नहीं नही, उसकी कामना दूसरी होती है। वह कहता है:—

मदीने जाऊँ मदीनेसे लौट कर आऊँ,
इलाही उम्र इसीमें तमाम हो जाये ॥

तेरहवाँ अध्याय ।

मज़हब और सदाचार ।

४-मनुष्यके हृदय पर मज़हबका प्रभाव ।

मज़हबोंका सार ईश्वरसे प्यार और मनुष्योंसे घृणा करना है ।

यदि पक्षपात छोड़ कर देखा जाय तो यह सिद्ध हो जायगा कि हमारी बुद्धि और हृदय पर मज़हबका बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है । यह सच है कि मज़हब आदमीको एकताके सूत्रमें गॉथता है । साधारण विपत्तिके आ पड़ने पर—मजहबकी पुकार सुनने पर—सारे सधर्मी श्रीकृष्णकी बॉसुरीके द्वारा मुग्ध गोपियोके समान इकट्ठे हो जाते है। एक सहधर्मीके समीप उसका दूसरा सहधर्मी भाईसे भी अधिक प्यारा होता है । परन्तु इसके साथ ही मज़हब इसी दर्जेका भेद और द्वेष भी पैदा करता है । क्रिश्चियनोकी कुल सहानुभूति केवल क्रिस्तानोहीके साथ है, और सो भी उन्हीं क्रिस्तानोके साथ है जो उन्हींके गिरजेके अधीन हैं । मुसलमान हिन्दूको कुत्तेसे भी अधिक घृणित समझता है, उसके लिए 'हिन्दू' शब्द ही अपमानसूचक है । हिन्दू अन्य जातियोंको केवल घृणाहीकी दृष्टिसे नहीं देखता, बल्कि उनका छुआ हुआ जल तक नहीं पीता । जरा ध्यान देकर देखोगे तो मालूम होगा कि 'जेन्टाईल' (Gentile), 'हिथेन' (Heathen), 'काफिर,' 'यवन,' 'म्लेच्छ' इत्यादि शब्दोमे कितनी निष्ठुरता, और कितनी घृणा भरी हुई है ! दूरदर्शी दयालु वाल्टेअर

(Voltair) ने क्या ही सत्य कहा है कि *"ईश्वरको प्यार करना और मनुष्यसे घृणा करना ही शायद सब धर्मोंके सिद्धान्तोंका सार है।"*

जाके प्रिय न राम वैदेही।
सो छाँड़िये कोटि वैरी सम, यद्यपि परम सनेही॥

सहानुभूतिका विनाश।

लोगोने एक हाथमे कुरान या बाइबल और दूसरे हाथमे खड्ग लेकर धर्मका प्रचार किया है। दयाके स्थान पर रक्तपात किया है। । अहिंसाके स्थान पर देश विजय किये है। एक धर्मके अनुयायीके नजदीक अन्यधर्मावलम्बी सभी मनुष्य नरकके भागी है। नरकाग्निकी भयानक रोशनीको छोड़ कर स्वर्गकी सुन्दर आभा मजहबी लोगोंके हृदय पर कभी नही पड़ती। उसी नरकाग्निके प्रकाशमे वे अपने धर्मग्रन्थोंको बाँचते है, और उसीके सामने बैठकर अपने हाथोको सेकते है। केवल यही एक बात यथेष्ट रीतिसे सिद्ध कर देती है कि हमारी सहानुभूति और हमारी बुद्धि पर मजहबका कैसा प्रभाव पड़ता है। मजहबके तापसे हमारी सहानुभूतिका शीतल और शान्तिप्रद स्रोत सदाके लिए शुष्क हो जाता है। गंगाका पवित्र तट सहारेका मरुस्थल बन जाता है। जहाँ मृदुल मलयानिल बहता था वहाँ

परलोककी धमकी।

लू चलने लगती है। आरामकी जगह श्मशान उपस्थित हो जाता है। अहा! किस शीघ्रताके साथ एक मतका आदमी अन्य मतके लोगोको जहन्नुममे भेजता है, एवं यह सोच कर कि अन्य सभी मतवाले जहन्नुममे जायँगे उसे कितनी प्रसन्नता होती है। किस पैशाचिक प्रसन्नताके साथ, किस दमदमाते हुए चेहरेसे, किस जोशके साथ वह नरकका सम्पूर्ण चित्र खींचता है और वहाँकी यन्त्रणाओंका वर्णन करता है। मजहब लोगोको यथार्थ

मनुष्य नहीं वरन् पिशाच, प्रह्लाद नहीं वरन् हिरण्यकश्यपु बनाता है। बलिहारी है मज़हबी लोगोंके हृदयकी ! अजी हजरात, क्या नरकके दारोगा आप ही लोग है ? मोछों पर ताव देकर किस गर्व और तानेके साथ एक मज़हबी आदमी अन्य धर्मावलम्बी भाइयोंके प्रति बातचीत करता है ! वह कहता है—

जो अपराध भक्तकर करई।
राम-रोष-पावक सो जरई॥

अथवा—

"ऐ मनुष्य, तू कितना ही चतुर क्यो न हो, परन्तु ईश्वरके साथ तेरी चतुराई नहीं चल सकती। तेरे गुप्तसे गुप्त पाप ईश्वरसे छिपे नहीं रह सकते। तेरे सभी कर्म तेरे नाम-ए-अमालमें—खुदाके रजिस्टरमे—लिखे जाते हैं, एक भी बात नहीं छूट सकती। खुदा न्यायी है। सजा देनेमें वह किसी प्रकार भी कुण्ठित नहीं होता। यथोचित दण्ड देनेमे ईश्वरको दुःख नहीं बल्कि प्रसन्नता होती है। ईश्वरकी दया भी तुझे ईश्वरकी सज़ासे नहीं बचा सकती। ईश्वर अपने स्वभावको. अपने न्यायको, किस प्रकार छोड सकता है ?" एकोआइनस (Equinas) जोनाथेन एडवार्डस (Jonathen Edwards)के समान बड़े बड़े धर्म-दिग्गज, पापियोंकी यन्त्रणाओको पुण्यात्माओंके सुखका कारण समझते थे और अभी कुछ ही समय पहले टाइम्सके (Times) एक लेखकने भी क्रिश्चियन मतके इस सिद्धान्तको बड़े जोरोंसे समर्थन किया है। (देखो ९ अगस्त, सन् १९०५का टाइम्स।) उसने कहा है कि पापियोको अनन्त दण्ड देनेसे ईश्वरका गौरव बढता है। *

---

* देखो Ethics by Dr. Saleeby P. 39.

बाइबलमें स्वयं ईश्वर कहता है कि मैं उन्हें अपने क्रोधसे भस्म कर डालूँगा और इससे मुझे तृप्ति होगी। ("I will cause my fury to rest upon

ईसाई देशोसे इस प्रकारके और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते है; परन्तु इसकी कोई आवश्यकता नही देख पड़ती और शायद वे पाठकोको रोचक भी प्रतीत न होगे। सेट जॉन, सेट पॉल, टर्टूलियन, पीटर लोम्बार्ड आदि बड़ेबडे धर्मदिग्गज भी कहते थे कि परलोकमे मजहबी लोगोको स्वर्गका पूर्ण आनन्द तो निस्सन्देह प्राप्त होगा; परन्तु स्वर्गसे भी अधिक आनन्द उन्हे अपने मजहबके न माननेवालो तथा उनकी बातोके उल्लघन' करनेवालोकी यत्रणाको देख कर होगा। और तर्क करनेवाले दार्शनिको तथा ज्ञानगर्वसे चूर विद्वानोको धधकती हुई अग्निके मध्य देख कर तो वे फूले भी न समायेंगे।

क्या कोई मनुष्य जिसमे तनिक् भी मनुष्यत्व, तनिक भी सहृदयता है वह अपने असख्य भाइयोको नरकमे भेज सकता है? वह ऐसे स्वर्ग पर लात मारेगा जिसका द्वार केवल किसी सम्प्रदाय विशेषके लिए खुला हुआ है और स्वय प्रसन्नवदन हँसता हुआ अनन्त नरककी अग्निमे प्रवेश करेगा, साथ ही अपने असंख्य भाइयोके साथ रहने और उनके दु:खमे भाग लेनेके कारण वह अग्नि उसे चमेलीके बाग़ जैसी प्रतीत होगी। अकेला एक मनुष्य या एक सम्प्रदाय स्वर्गका सुख लूटे और समस्त मनुष्यजाति अनन्त नरकमे जले, इससे अधिक स्वार्थपरता, इससे अधिक पशुत्व, इससे अधिक पैशाचिकता और क्या हो सकती है!

---

them and I will be comforted"—Ezak V, 13) तुम्हारे दु:खोंको देख कर मै अट्टहास करूँगा। (I also will laugh at your calamity. Prov. I,26)

घनघोरसे घनघोर समर, भीषणसे भीषण लड़ाइया मज़हबहीके कारण उपस्थित हुई है। मज़हबहीकी प्रेरणासे मनुष्यने मनुष्यको पैशाचिक यन्त्रणाये दी है, और स्वयं भी सही है। मजहबहीने मनुष्यको मनुष्यके विरुद्ध, कुटुम्बको कुटुम्बके विरुद्ध, जातिको जातिके विरुद्ध, और देशको देशके विरुद्ध खड़ा किया है। रक्तका महासागर बहाया है तथा संसारको दुखियोके रुदन और कोलाहलसे परिपूर्ण कर दिया है। *संसारका इतिहास धर्मोन्मादका इतिहास ह।*

मज़हब-जनित भेद भाव।

यो तो सभी मज़हबोके हाथो बड़े बड़े अत्याचार हुए है और सुख शान्तिकी हत्या हुई है, पर हम जहाँ तक समझते है शायद ईसाई मज़हबसे अधिक रक्तपात और किसी मजहबने नही किया है। अतएव यहाँ पर ईसाई मज़हबके अत्याचारोका थोड़ासा उल्लेख पाठकोको अरुचिकर प्रतीत न होगा। अत्याचारकी प्रधान सस्था इन्क्वीजीशन (Inquisition) थी। इसीसे हम अपना वक्तव्य आरम्भ करते है। इन्क्वीजीशन एक प्रकारकी अदालत थी। इसके विचार-पति ईसाई साधु होते थे। यह किसी दूसरी कचहरीके अधीन न थी। यह सभी कचहरियोसे ऊँची थी और इसके फसले पर कोई अपील न हो सकती थी। रोमन कैथोलिक मतके न माननेवालोको, उसमे या उसके किसी भी विपयमे शका करनेवालोको, या पोपकी आज्ञाओके पालनमे आगा पीछा करनेवालोंको दण्ड देना ही इसका मुख्य काम था। इस सस्थाको पाप-निवेदन (Confession) की सस्थासे वड़ी सहायता मिलती थी। प्रत्येक ईसाईके लिए पादरीके समीप अपने सभी दोषो अपराधो तथा गुप्तसे गुप्त वातोको प्रकाशित करना

ईसाई अत्याचार —इन्क्वीजीशनका वर्णन-

अनिवार्य्य था। अतः इन्क्वीजीशनने इस संस्थाके द्वारा एक प्रकारसे सर्वज्ञता और सर्व-व्यापिता लाभ कर ली थी। कोई आदमी निरापद न था। पादरी इस पाप-निवेदनके द्वारा स्त्री, पुत्र, पुत्री, तथा दास दासियोसे प्रायः प्रत्येक मनुष्यके सम्बन्धमे हर तरहकी बाते जान लेते थे। अर्थात् उस मनुष्यकी स्त्री, पुत्र या पुत्री एक प्रकारसे पादरियोकी जासूस बन कर उसके सर्वनाशका कारण होती थी। इन्क्वीजीशन सिर्फ कार्य्योंके लिए नही, वरन् विचारोके लिए भी सजा देता था। इसकी कार्यवाही अत्यन्त सरल थी। जरासा शक होने पर भी मनुष्य फौरन गिरफ्तार कर लिया जाता था और जब तक अपराध स्वीकार न कर लेता तबने उसे नाना प्रकारके कष्ट दिये जाते थे। कैदीको कब तक कष्ट भुगताना पड़ेगा, इसके लिए कोई निश्चित समय न था। अपराध स्वीकार करने ही पर इन यत्रणाओसे छुटकारा मिल सकता था। किसी मनुष्यको कारागारमे भेजनेके लिए दो गवाहोकी गवाही काफी होती थी। ये दोनो गवाह दो बातोके भी हो सकते थे। यानी किसी दूसरे गवाहके द्वारा किसी गवाहका साक्ष्य-समर्थन अनावश्यक अनुमान किया जाता था। कारागारमे कैदीको बहुत कम भोजन दिया जाता था और किसीसे बातचीत करनेकी भी उसे मनाही रहती थी। कुछ दिनो तक पीड़ा सहनेके बाद उसकी फिर जॉच की जाती थी। यथार्थमे निर्दोष होने पर भी यदि वह अपना अपराध स्वीकार कर लेता और अविश्वासको परित्याग कर देता, तो उसकी सारी सम्पत्ति हरण कर ली जाती थी और वह छोड़ दिया जाता था। परन्तु दृढ रहने पर—अपनेको निर्दोष बतलाने पर—यदि दो गवाह होते तो उसे स्टेक (Stake)* मे बॉधे जानेका और यदि एक ही गवाह होता तो उसे

* 'स्टेक' उस खूँटेको कहते थे कि जिसमे बॉध कर लोग जीवित जलाये जाते थे।

रैक(Rack)×के समीप भेज दिये जानेका फैसला सुनाया जाता था। अभियुक्तको यह बतला दिया जाता था कि उसके खिलाफमे कौन कौन और कितने सुबूत है, परन्तु गवाहोसे उसका साक्षात् कभी न कराया जाता था और न उसे अपनी निरपराधता साबित करनेका मौका दिया जाता था। उत्पीड़नके द्वारा ही अभियुक्तका न्याय होता था। भयानक कारागारमे, मशालोके धुँधले प्रकाशमे, अर्द्ध रात्रिके समय, अभियुक्तसे अपराध स्वीकार करानेका कार्य्य आरम्भ किया जाता था। अभियुक्त—चाहे वह पुरुष हो या कोई प्रौढा या कोमलागी कुमारी—नंगा कर दिया जाता था। उसके सभी वस्त्र उतार लिये जाते थे और वह लकड़ीके बेच पर लेटा दिया जाता था। फिर ऐसे ऐसे यंत्रोका प्रयोग किया जाता था कि जिनसे अभियुक्तके शरीरकी समस्त रगे खूब खिच जायँ और उसकी हड्डियोमे खूब चोट पहुँच जाय; परन्तु वे टूटे नही। जल्लाद—जो साधुओके उर्वर मस्तिष्कसे निकले हुए नाना प्रकारके यन्त्रणा पहुँचानेवाले यंत्रोका*व्यवहार

×'रैक' यंत्रणा पहुँचानेका एक प्रकारका यंत्र था। इसके द्वारा अभियुक्तके अवयव खीचे जाते थे यहाँ तक कि वे कभी कभी उखड़ भी जाते थे। इससे कितनी यंत्रणा होती होगी यह अनुमान करना भी कठिन है। इसीसे 'रैक' अँगरेजीमें अत्यन्त पीड़ाका एक पर्य्यायशब्द हो गया है।

* केवल रैक ही नहीं, मनुष्यको यंत्रणा पहुँचानेके लिए इसके अतिरिक्त और भी अनेक यंत्रोंका आविष्कार हुआ था। यहाँ पर तीन यंत्रोंका संक्षिप्त वर्णन दिया जाता है। १–थम्ब स्क्रू (thumb screw) यत्र लोहेके दो टुकड़ोंका बना होता था। इसके भीतरी भागमे दो चार फोड़ेसे उठे हुए मुकाम होते थे। लोहेके इन दोनों टुकड़ोंके सिरोंपर पेंच लगे रहते थे। अविश्वासीकी उगलीमें इस यंत्रको पहरा कर इसके दोनों सिरोंका पेंच बहुत सख्तीसे कस दिया जाता था। दर्दसे बेचैन होकर निरपराधी मनुष्य भी अपने अपराधको स्वीकार कर लेता था और इस तरह प्राण देकर दु:खसे मुक्त होता था।

करता था तथा साधुओके कथनानुसार अन्य रीतियोसे भी अपराधियोको दु.ख पहुँचाता था—ऊपरसे नीचेतक काले कपड़ेसे ढँका होता था। उसका मुँह भी काल कपड़ेसे छिपा रहता था। केवल उस कपडेके दो छिद्रोमेसे उसकी दो ऑखे नजर आती थी जो इस भयानक दृश्यको और भी भीपण बना देती थी।

इस प्रकार कैदीको कितने दिनोतक यत्रणा सहनी पडेगी, इसके लिए कोई निश्चित समय न था।

बिना अपराध स्वीकार किये इससे छुटकारा नही था। और छुटकारा भी किस प्रकारका ? क्या अपराध स्वीकार करने पर अभियुक्त स्वतंत्रता लाभ कर सकता था ? नही, मृत्युके द्वारा ही वह इन पैशाचिक यत्रणाओसे निस्तार लाभ करता था। क्योकि अपराध स्वीकार कर लेने पर उसको फॉसीका हुक्म दे दिया जाता था। इन्क्वीजीशनका

२–कॉलर ऑफ टॉरचर (Collar of Torture) एक दूसरा भीषण यत्र था। एक कंठहारमे सैकडो सूइयॉ टकी होती थीं। यह कॉलर अविश्वासीके गर्दनमे पहराया जाता था और इसका नतीजा यह होता था कि मनुष्य उठने बैठने चलने फिरनेसे मजबूर हो जाता था। अगके जरा भी हिलानेसे सूइयॉ चुभने लग जाती थी। कुछ समयके बाद उसकी गर्दन सूज जाती थी और उसका दम घुटने लगता था। इसी प्रकार कुछ समयके बाद श्वास बन्द हो जानेके कारण उसकी मृत्यु हो जाती थी।

३–स्कैवेजर्स डौटर (Scavenger's daughter) नामका यंत्र कैचीके सदृश होता था। इसके दोनों सिरोंपर दस्ते होते थे और बीच मे धारोंको एक दूसरेसे मिलानेवाले पेंचके कुछ ऊपर एक चक्र होता था। ऊपरके दस्तोंमे अभियुक्तके दोनों हाथ और नीचेके दस्तोमे उसके दोनों पैर डाल कर कस दिये जाते थे। तत्पश्चात् अपराधीका सिर जबरदस्ती बीचवाले चक्रमें डाल दिया जाता था। इसी अवस्थामे झुका हुआ वह बहुत समयके लिए छोड़ दिया जाता था। यहॉ तक कि दु ख और क्लेशसे मनुष्य पागल हो जाता था।

प्रधान ऐतिहासिक लिखता है कि लोगोने पन्द्रह पन्द्रह वर्ष पर्य्यन्त यंत्रणाये सही है और अन्तमे वे स्टेकमे बॉधकर जला दिये गये है।

कैदी एक एक दो दो करके तुरत न जलाये जाते थे। बल्कि जब यह देखा जाता कि उनकी संख्या अधिक हो गई है तब उनके वधके लिए एक दिन निश्चित किया जाता था और इस दिन समस्त लोग त्योहार मनाते थे। लोग खुशी मनाते और तमाशा देखनके लिए उत्सुकता प्रकट करते थे। स्वय बादशाह भी अपने पूर्ण ऐश्वर्य्य और वैभवके साथ इस अवसरको सुशोभित करते थे। निश्चित दिनको मनुष्य कैदखानेसे बाहर निकाले जाते और उन्हे पीत वर्णका अँगरखा पहिनाया जाता था। यह अँगरखा विना आस्तीनोका होता था। समस्त वस्त्रमे शैतान और भूतोके काले काले चित्र बने होते थे। एक बहुत ऊँची टोपी—जो नीचेसे त्रिकोणाकार और ऊपरसे नुकीली होती थी—उनके सर पर रक्खी जाती थी। टोपीके ऊपर आग्निमे जलते हुए एक मनुष्यका और अग्निके चारो ओर उस मनुष्यको घेरे हुए भूतोके चित्र अङ्कित होते थे। तब अपराधियोमेसे प्रत्येककी जिह्वा बड़ी दृढ़ताके साथ कस कर बॉध दी जाती थी जिससे वह न तो अपना मुँह पूरे तौरसे बन्द ही कर सकता और न खोल ही सकता था। तत्पश्चात् भोजनोसे भरे हुए थाल उनके सामने लाये जाते थे और व्यगपूर्वक उनसे अपनी जठराग्नि शान्त करनेके लिए अनुरोध किया जाता था। बड़ी धूमधामके साथ कैदीगण जलाये जानेके स्थान पर पहुँचाये जाते थे। जलूसमे सबसे पहले छोटे बच्चे होते थे और उसके बाद उपर्युक्त वेशमे कैदी। इनके पीछे हाकिम, उच्चकुलसम्भूत रईस, अमीर और गिरजेके प्रधान पदाधिकारी और पादरी होते थे। सबके पीछे अपने अमलो और कर्मचारियोके साथ घोडो पर सवार इन्क्वीजीशनके पवित्र जज

होते थे। इनके सरपर इन्क्वीजीशनका लाल फरेरा उड़ता था। इस सज्जित समारोहके पीछे लोगोकी भीड़ होती थी। जब सब लोग इच्छित स्थान पर पहुँच जाते और कतार बाँध कर खड़े हो जाते थे तब प्रधान पादरी व्याख्यान देना आरम्भ करता था। इन्क्वीजीशनकी प्रशंसा की जाती थी और कैदियोको गालियाँ सुनाई जाती थी। इसके पश्चात् पादरी लोग एक मजहबी भजन आरम्भ करते थे जिसे समस्त लोग एक साथ गाने लगते थे। भीषण कोलाहल उपस्थित होता था। यदि कैदियोमे कोई अविश्वासी पादरी होता तो उससे उसका धार्मिक लिबास छीन लिया जाता और उसका मुड़ा हुआ सर, उसके हाथ और ओष्ठ, शीशेके टुकड़ेसे खरोच डाले जाते थे। तत्पश्चात् वह साधारण आदमियोमे ढकेल दिया जाता था। प्रत्येक कैदीको एक चबूतरे पर चढना पडता था जहाँ कि जल्लाद उसे धधकती हुई अग्निमे डालनेके निमित्त प्रस्तुत रहते थे। इसी स्थान पर इन्क्वीजीशनका जज कैदियोको जल्लादोके हवाले करता था। जो कैदी अन्तिम समय तक दृढ रहते थे वे तो जीवित अग्निमे जला दिये जाते थे, परन्तु उन कैदियोको—जो इस असह्य यातनासे भय खा कर अन्तिम समय अपने स्वतत्र विचारोको छोड कर अपनेको दोषी मान लेते थे—पहले गला दबा कर मार डाला जाता था और इसके बाद उनका शव अग्निमे डाल दिया जाता था।*

अब इस बातपर भी विचार कीजिए कि किन किन अपराधोके लिए लोगोके प्रति ऐसा कठोर व्यवहार किया जाता था। बाइबल या उसके किसी अगको किसी भी भाषामे पढना मना था। पादरियोंको छोड़कर

---

* देखो Moteby "Dutch Republic Routledge" 1899 Part II Chapter III.

सिझा कर उसका कवाब बनाया गया। परन्तु अन्त समय तक उसने अपने दृढ विश्वासको न छोड़ा और अपने सिद्धान्तो पर डटा रहा।

पाश्चात्य ऐतिहासिकोने मनुष्यके द्वारा मनुष्यको ऐसी पैशाचिक यत्रणाये दिये जानेके असंख्यों उदाहरणोका उल्लेख किया है। एककी पैशाचिकता दूसरेसे बढी हुई है। उनमेसे दो एकका चुन लेना अत्यन्त ही कठिन है। जो हो, इन दो एकसे ही उस समयकी अवस्थाका बहुत कुछ पता चल जायगा।

ईसाई मज़हवके हाथों सताये गये लोगोंकी संख्या।

विद्वानोने ईसाई मज़हवके हाथो मरे हुए लोगोकी सख्याके पता लगानेकी भी चेष्टा की है। इन्कीजीशनके स्थापित होनेके पहले ही वर्षमे केवल एक प्रान्तमे दो हजार यहूदी जलाये थे। इनके सिवाय कई हजार कब्रे खोद कर और उनमेसे लाशे निकाल कर जलाई गई थी। सत्रह हजारको आर्थिक दण्ड या आजन्म कारावासका हुक्म दिया गया था। लेकीने लिखा है कि ईसाइयोके ज़ुल्मसे तग आकर यहूदी लोग अक्सर आत्मघात कर लेते थे। वे उस जीवनसे मृत्युमे ही अधिक सुख समझते थे। सन् १०९५ ईसवीमे फ्रासमे ५०० और यौर्कमे ५०० से भी अधिक यहूदियोने एक साथ आत्मघात कर डाला था!

अनेक अत्याचारोके वाद भी जब यहूदियोने ईसाई मत अङ्गीकार न किया, तब टौर्कीमेडाने उन्हे देशसे निर्वासित कर देनेका निश्चय किया। यहूदियोको स्पेन छोड़ देनेका हुक्म दे दिया गया और यह घोषित किया गया कि पुन· लौटने पर उन्हे प्राणदण्ड दिया जायगा। निर्वासित लोगोमेसे कुछ आफ्रिका चले गये और कुछ इटलीमे आये जहाँ एक

प्रकारके ज्वरसे उनकी संख्या बहुत ही कम हो गई। कुछ टर्की गये और कुछ इँग्लैण्ड भी आये। मार्गमे हजारो नव-प्रसूत बच्चे, उनकी माताये, छोटे छोटे बालक, बालिकाये और बूढे, मृत्युके शिकार बन गये।

सत्रहवीं शताब्दिमे मूर जाति भी इसी प्रकार अपने बापदादाओंके जन्मस्थानसे—अपने सदाके घरसे—निर्वासित की गई थी। उन्हे यह हुक्म दिया गया था कि वे मुसलमान देशोमे न जायँ। उनके दुःखो और यातनाओका आप स्वय अनुमान कर सकते है। बक्ल कहते हैं कि स्पेनमे एक बहुत बड़े दलकी यह इच्छा थी कि स्त्रीबच्चोंसमेत सभी मूरोका वध कर डालना चाहिए और इस दलके नेता स्पेनके प्रधान पादरी थे!

इन्क्वीजीशनके मुख्य इतिहासलेखक लौरेण्टीने बहुत खोज और अन्वेषणके बाद यह स्थिर किया है कि अकेले टौर्कीमेडाने अपने १८ वर्षके प्राधान्यमे दस हज़ार दो सौ बीस आदमियोको जीता जलाया था, छः हजार आठ सौ साठ अविश्वासियोके जीवित शरीरोको न प्राप्त कर सकनेके कारण उनकी मूर्तियाँ बनवा कर उनका दहन किया था और सत्तानवे हज़ार तीन सौ इक्कीस आदमियोको अन्य प्रकारका दण्ड दिया था। लौरेण्टीके कथनानुसार अकेले इसी मनुष्यने एक लाख चौदह हज़ार चार सौ एक कुटुम्बोका सर्वनाश किया था। टौर्कीमेडा-ने हिब्रू भाषामे मूल बाइबलको जहाँ कहीं पाया भस्म कर डाला और सैलेमैंका नगरमे प्राच्य ज्ञानकी छः हजार पुस्तकोको अग्निके हवाले कर दिया। *

बक्ल कहते है कि पचम चार्ल्सके राजत्वकालमे प्रायः एक लाख अविश्वासियोको प्राण दण्ड दिया गया था। मोटली कहते है कि नींद-

---

*Draper-conflict-between Religion and science p. 146.

स्लैण्डसमे पचास हजारसे अधिक मनुष्य धार्मिक अत्याचारके बलि बने थे। डारविन भी बहुत सोच विचार और ढूँढ खोजके पश्चात् लिखते है कि केवल स्पेनमे लगभग तीन शताब्दियो तक प्रतिवर्ष एक हजार आदमी मजहबके हाथो मारे जाते थे। हाल ही गणना करके यह स्थिर किया गया है कि अविश्वासियो पर पोपोके अत्याचारसे, इन्क्वीजीशन (Inquisition)से, तथा ईसाई सम्प्रदायोकी पारस्परिक लड़ाइयोसे एक करोड़से अधिक आदमियोकी मृत्यु हुई है ! ×

लिटररी गाईड नामक पत्रमे एक लेखकने लिखा है कि केवल सोलहवी और सत्रहवी शताब्दिके मध्य समस्त योरोपमे ढाई लाख स्त्रियाँ डाइन होनेके अभियोगमे जलाई गई थी ! (Literary Guide Oct 1920 P. 159)

यह कौन बतला सकता है कि इनके सिवाय अज्ञातरूपसे और कितनोको दुःख हुआ है और कितनोंकी जानें गई हैं ?

जब इतने आदमियोके मरनेका पता पुस्तको और ग्रन्थकारो द्वारा ही चलता है तब अज्ञातरूपसे कितने आदमियोकी जाने गई होगी यह कौन बतला सकता है ! और उन लोगोकी सख्या भी कौन बतला सकता है कि जिन्हे कोई शारीरिक यंत्रणा न सहनेपर भी असीम मानसिक क्लेश भुगतना पड़ा होगा ! अनेकोने जानके भयसे, बच्चोके भयसे, अपने असल विचारोको छोड़कर प्रचलित विचारोके माननेका मिप किया होगा। मन और हृदयमे प्रातिकूल विचारोके रखने पर भी कितनोने अपने बाहिरी आचरणोमे प्रचलित रीति नीतिके माननेका प्रयत्न किया होगा और इस प्रकार कपटका सिर ऊँचा और सत्यका सिर नीचा किया होगा। इससे समाजको कितनी

× Hæckel's 'Riddle of the Universe'—P. 293.

हानि पहुँची होगी, कौन अनुमान कर सकता है ! सत्यप्रियताके सिर पर कितना गहरा कुल्हाडा लगा होगा, कौन बतला सकता है ! दम्भको कितनी उत्तेजना मिली होगी, कौन स्थिर कर सकता है !

संकीर्ण होनेके कारण मज़हबी लोग स्वभावतः निर्दय होते हैं।

ईसाई धर्मके केवल कैथोलिक सम्प्रदायोंहीने इतना अत्याचार नहीं किया है. पैशाचिकता और अत्याचारमे प्रोटेस्टैण्ट सम्प्रदायोने भी उनका सामना करनेके लिए कम प्रयत्न नहीं किया है। निर्दयताकी दौडमें यद्यपि वे कैथोलिक मतके साथ साथ—कन्धेसे कन्धा सटा कर—नहीं दौड़े हैं, तथापि बहुत पीछे भी नहीं रहे है। और कैथोलिक मतकी अपेक्षा इनके कुछ कम निष्करुण होनेका एक कारण भी है। प्रोटेस्टेण्ट मतोमे पादरियोकी इतनी प्रधानता नहीं है। इसमे साधारण मनुष्योको भी बहुत कुछ अधिकार प्राप्त है। बाइबलका पढना या उसका स्वतंत्र अर्थ करना अपराध नहीं है। *परन्तु निर्दयता अत्याचार और ज्ञानावरोधका बीज मज़हबकी संकीर्णतामें अवश्य है और वह केवल प्रोटेस्टेण्ट मतमें ही क्यों ससारके प्रायः सभी मजहबोंमें विद्यमान है।* मज़हब जब तक अपनी सङ्कीर्णता न छोडेगा तब तक अत्याचार अवश्य होंगे, ज्ञानका पथ बन्द अवश्य किया जायगा। सकीर्णतामें प्राय॰ सभी मजहब समान हैं—सभीको पूर्ण ज्ञान प्राप्त है—सभीको स्वय ईश्वरने रचा है और स्वय ईश्वर सबकी रक्षा करता है। इनके पवित्र धर्मग्रन्थ स्वय ईश्वरके वाक्य हैं, क्या वे असत्य हो सकते है ? क्या इनके अतिरिक्त ससारमे और कोई बात भी जाननेके योग्य है ? नहीं, कदापि नहीं। *तब वे लोग जो तानिक भी मजहबके विरुद्ध लिखते या बोलते हैं अवश्य अपराधी हैं—केवल मनुष्यके ही नहीं, स्वयं*

ईश्वरके भी बड़े अपराधी हैं । इन ईश्वरके शत्रुओ और शैतानके दोस्तोंको अपने अपवित्र जीवनके द्वारा संसारको कलुषित करनेके लिए नहीं छोड़ देना चाहिए । इनका मूलोच्छेद ही न्याय-सगत है । जिन मज़हबोमे यह भाव विद्यमान है—और ससारका शायद ही कोई मजहब ऐसा होगा जिसकी भावना इस प्रकारकी न हो—वे अवश्य अत्याचार करेगे—अवश्य मनुष्योका अहित करेगे, अवश्य ज्ञानरूपी सूर्य्यको राहु बन कर ग्रास करना चाहेगे और ससारको दुखियोके कोलाहलसे और स्त्रियो और बच्चोके आर्तनादसे परिपूर्ण करेगे ।

सभी मजहबोंने समान अत्याचार क्यों नही किये ?

अब प्रश्न यह हो सकता है कि संसारके सभी मज़हबोने समान अत्याचार क्यो नही किये । इसके दो कारण हैं । पहला यह कि सभी मजहब समान रूपसे सकीर्ण नही है । जिस मज़हबमे जितनी अधिक संकीर्णता है उसमे निर्दयता भी उतनी ही अधिक है । दूसरा वाह्य कारण यह है कि सभी मजहबोको अत्याचार करनेका समान अवसर प्राप्त नहीं हुआ है । कुछ वाह्य कारणोसे उन्हे अपनी तीव्र रक्तपिपासाको दवाना पड़ा है । परन्तु सभी मजहबोने अत्याचार निस्सन्देह किये है और *सभीमें अत्याचार करनेकी बलवती इच्छा सदा मौजूद रही है ।*

प्रोटेस्टेण्ट सम्प्रदायोके अत्याचारोके उदाहरण देनेके लिए पर्याप्त स्थान नही है । कैल्विनके हाथो दार्शनिक सार्वेटस (यह एक प्रकारसे वेदान्ती था) का जीता जलाया जाना, डेस्कार्टिज़के समान दार्शनिक पर अत्याचार होना आदि वाते यथेष्ट रूपसे विख्यात है । वक्क कहते हैं कि "प्रोटेस्टेण्टोके अत्याचार कैथोलिक सम्प्रदायोके अत्याचारोंसे किसी अशमे भी कम वभित्स नही है और प्रोटेस्टेण्टोकी सख्या

और बलके लिहाज़से तो उनके अत्याचारोकी सख्या कैथोलिकोके अत्याचारोसे किसी तरह कम नहीं हो सकती *।"

जब एक मजहबका यह हाल है तब इस बातका अनुमान कौन कर सकता है कि भिन्न भिन्न मजहबोकी लड़ाइयो—ससारकी सभी मज़हबी लडाइयो और ससारके सभी मज़हबोके द्वारा अब तक कितने आदमियोकी मृत्यु हुई होगी। मज़हबके द्वारा आदमियोको कितनी यन्त्रणा दी गई है, इसका वर्णन शेषनाग भी नही कर सकेगे। गेटीने सच कहा है कि *मनुष्य बकरों, भेड़ों, बैलों और भैंसोंसे भी अधिक संख्यामें बलि चढ़ाये गये हैं।*

और इन सब लडाइयोका कारण क्या था? केवल भ्रम-प्रमाद।

लड़ाइयोंका कारण।

साधारणसे साधारण बातके लिए लड़ाईका नगाडा ठोका गया है। कोई कहता था कि वेद सत्य है, कोई कहता था कि बाइबल या कुरान सत्य है। कोई कहता था कि किसी मन्त्रको एक बार उच्चारण करना चाहिए और कोई कहता अनेक बार। कोई पूजाकी एक विधिको अति उत्तम समझता था और कोई दूसरी विधिको, कोई ईश्वरका एक प्रकारका चित्र खीचता था, और कोई दूसरे प्रकारका। (ऐ ससारके धर्मोन्मत्त भाइयो, क्या तुम ईश्वरको देख आये हो? क्या ईश्वरने आकर सिर्फ तुम्हारे ही कानोमे अपनी सब बाते कह दी है? अज्ञान, अविद्या और घृणाकी बदलीसे सत्य और प्रेमके सूर्य्यको कब तक ढके रक्खोगे?) "ससारका इतिहास धर्मोन्मादका इतिहास है। × × ससारसे उस

---

* History of Civilisation Vol II P. 8, also pp. 36-37, see also Draperes "Conflict between Religion and Science" and Gorham's "Christianity and Civilisation"

भ्रमप्रमादके हटानेकी सबसे अधिक आवश्यकता है जो ईश्वरको अत्याचारी बना कर मनुष्यको अत्याचारकी शिक्षा देता है। जिस मनुष्यने पहले पहल यह कहा कि हमे पापियोसे घृणा करनी चाहिए उसने मानो सभी पुण्यात्माओंके हाथमे खड्ग दे दिया। जिन मनुष्योका विश्वास हमारे समान नही है, उन्हे त्याग करनेकी शिक्षा प्रथम प्रथम जिस आदमीने दी उसने मानो युद्धकी दुन्दुभी बजा दी।××× जिस समयसे मनुष्यने उन वस्तुओके लिए—जो उसकी समझमे नही आ सकती—झगडनेको अपना कर्तव्य समझा तथा कुछ अर्थहीन शब्दोके उच्चारणको धर्मका अतिम सोपान माना, उस समयसे सारा संसार मानवरक्तसे उपप्लावित हो रहा है। ××× भाइयो, तुम क्या यह समझते हो कि ईश्वर तुम्हारा इम्तिहान बाइबल या कुरानमे लेगा या वह तुम्हारा विचार तुम्हारे कार्य्योंके अनुसार करेगा? मूढ विश्वासी मनुष्य अत्युत्तम भोजनमे भी ज़हर मिला देता है। वह अपना और दूसरोका भी शत्रु है। वह समझता है कि यदि मै किसी विशेष दिन मास खा लूँगा तो ईश्वर मुझसे अनन्त बदला लेगा। वह विश्वास करता है कि गेरुआ वस्त्र, जटाजूटयुक्त सिर, त्रिफटाका तिलक या लम्बी दाढी ईश्वरको बहुत पसन्द आती है, और साफ सुथरा चेहरा, चिकनी दाढी तथा त्रिपुण्ड तिलक ईश्वरको नहीं भाता। वह विश्वास करता है कि उसकी मुक्ति सस्कृतके उन शब्दोमे अटकी है जो उसकी समझमे एकदम नहीं आते। तुम उस कुटुम्बको क्या कहोगे जिसमे एक पिताके सभी पुत्र इसलिए लड़ते है कि उन्हे पिताको किस प्रकार प्रणाम करना चाहिए? मित्रो, असल चीज पिताको प्यार करना है, अपनी इच्छाके अनुसार तुम उसे जिस प्रकार चाहो उस प्रकारसे प्रणाम करो। *जो आदमी यह कहता है कि जैसा*

मैं विश्वास करता हूँ वैसा ही तुम भी विश्वास करो, नहीं तो ईश्वर तुम्हें दण्ड देगा, वही मनुष्य शीघ्र ही यह भी कहेगा कि जैसा मैं विश्वास करता हूँ वैसा ही तुम भी विश्वास करो, नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूँगा।*" मज़हबकी नजरमे बडा आदमी वही है जिसमे अधिक घृणा है। इसी कारण चगेज या तैमूरके जैसे हृदयवाले लोगोका—औरगजेव, इग्नेशियस, ग्रीगरी सप्तम, अलेक्जेण्डर षष्टको वह सम्मान हुआ है जिससे कि वे महात्मा, औलिया या सिद्धके पदको प्राप्त हो गये है।

पहले ही कहा जा चुका है कि मज़हब हमारे हृदयको मरुभूमि बना देता है। वह दया और सहानुभूतिके कोमल पौधेको उगने नहीं देता और हमारे हृदयरूपी आकाशको भादोकी अँधेरी रातके समान काला बना देता है। यहाँ प्रेमका इन्द्रधनुष उदय नहीं हो सकता।

मज़हब स्थूल और स्वार्थपूर्ण है। उसमें आध्यात्मिकता नहीं है।

मज़हब इस दृढताके साथ हमारे मन और हृदय पर अपना आधिपत्य जमाता है कि हम सर्वथा मृतक, प्राणहीन यन्त्र—कठपुतली—के समान हो जाते है। निष्पक्ष हो कर देखनेसे मज़हबमे कोई आध्यात्मिकता नहीं नज़र आती। यह सम्पूर्ण रीतिसे स्थूल है। आओ, हम सब अपने छोटे छोटे स्वार्थोंको परित्याग कर ससारके दुःखसे दुखी हो, ससारकी उन्नतिके लिए कमर कस कर तैयार हो जावे, तथा उस गिलहरीके समान जो लङ्का जानके निमित्त पुल बनानेमें श्रीरामचन्द्रको सहायता देती थी, हम सब

---

* Voltaire--Homilyon Superstiti on Translated by Joseph McCabe. लेखकने वाल्टेयरके शब्दोंमे कुछ परिवर्तन कर दिया है।

भी संसारकी उन्नतिमे भाग ले। सत्कर्म करो, जीवनको सुन्दर बनाओ, स्वार्थपरता और हिसाका परित्याग करो। ईश्वर तुमसे तनिक भी नाराज न होगा। वास्तवमे यदि ईश्वर है तो हम उससे तुम्हारे सारे अपराधोके क्षमा करानेका जिम्मा लेते है। अपनी बुद्धि—अपनी ज्योतिके अनुसार चलनेसे, निःस्वार्थ होनेसे, तथा भ्रम-प्रमादों और हठोक्तियोको छोड़कर ससारमे प्रेमके फैलानेसे विश्वास रक्खो कि ईश्वर तुमसे कभी क्रुद्ध न होगा, चाहे तुम उसके अस्तित्व तकमे विश्वास न रक्खो। प्रचलित मजहबसे काम न चलेगा। इसकी अनेक बुराइयोको तुम देख चुके हो। यह मजहब तुम्हारे मनुष्यत्वको कम करता है। इसकी जड़ स्वार्थपरतामे है। मुक्ति पानेके लिए ही तुम मजहबी होते हो। मजहबका सम्बन्ध तुम्हारी नीची स्वार्थी प्रकृतिसे है। यह तुम्हारे उच्च और दिव्य स्वार्थशून्य स्वभावको छूता तक नही है। क्या यह पतित और पगु बनना तुमको शोभा देता है? यह स्वार्थपरता, यह स्वर्ग और मुक्तिकी कामना, तुम्हे शोभा नहीं देती। सत्कर्ममे कोई कामना न होनी चाहिए। इसीलिए मजहब सदाचारके विरुद्ध है। हम इस लोकमे इन्द्रियसयम क्यो करे? क्या परलोकमे इन्द्रियपरता ग्रहण करने, कामी बनने और अप्सराओ या हूरोको प्राप्त करनेके लिए? सच है—

जन्नतपरस्त जाहिद क्या हक़ परस्त है?
हूरोंपै मर रहे है वह शहबतपरस्त हैं॥

अर्थात्—स्वर्गकी कामना रखनेवाले तपस्वी क्या वास्तवमे ईश्वरका पूजन करते है? नही, कदापि नही। अप्सराओ पर आसक्त हो कर वे तो केवल कामदेवकी उपासना कर रहे है *।

---

* बहुतसे हिजड़ोंका जन्म माताके पेटसे ही होता है और कुछ पुरुष कृत्रिम रीतिसे हिजड़े बनाये जाते हैं। लेकिन कुछ अच्छे लोग स्वर्गके आनन्दके लिए [illegible]को हिजड़ा बनाते हैं।—बाइबल। Mathew XIX, 12.

चौदहवाँ अध्याय।

मज़हव और सदाचार।

५—पूर्व अध्यायोंका सिंहावलोकन और कुछ नूतन प्रमाण।

मज़हव परलोककी चीज़ है और सदाचार इस लोककी।

पूर्वके अध्यायोमें मज़हब और सदाचारकी भिन्नताके दिखलानेका जो प्रयत्न किया गया है उससे विदित होता है कि मज़हव और सदाचार दो भिन्न वस्तुये हैं। हम यह दिखला चुके हैं कि मज़हब परलोककी चीज़ है और सदाचार इस लोककी *। *इसी लिए मज़हवमें हर स्थान पर धन और सुखकी निन्दा तथा दारिद्र; दुःख और शोककी प्रशसा की गई है।* इसी लिए क्रिस्तान मज़हव सभी धनी लोगोको विना किसी अपराधके भी जहन्नुममें भेजता है। बाइ-बलका कहना है कि अमीर आदमीने सारी उत्तम वस्तुओको इसी लोकमें प्राप्त कर लिया है, अतएव उसके लिए नरक ही उचित है; परन्तु दरिद्र आदमीने सदा दुःख ही झेला है, इस लिए मरनेके पश्चात् उसको स्वर्गमें स्थान मिलना चाहिए। मज़हव और सदाचारकी भिन्नताको दिखलाते समय हमने यह भी दिखलानेका प्रयत्न किया है कि मनुष्य पूर्ण मजहवी होने पर किस प्रकार परलोकके वनानेमे रत हो

---

* देखो अध्याय दसवाँ।

जाता है तथा संसारसे विरक्त होकर वह किस प्रकार सभी सासारिक सम्बन्धों और नातोंकी उपेक्षा करने लगता है । यह भी वतलाया जा चुका है कि हमारा कौटुम्बिक और पारिवारिक जीवन भी मज़हवके द्वारा किस प्रकार विषमय हो जाता है । मज़हवने स्त्रीको सदा नरकका द्वार अनुमान किया है । क्रिस्तान मज़हवके अनुसार मानव-जातिके समस्त दुःखोका कारण स्त्री ही है । उसीने आदमको मना किये हुए वृक्षसे फल तोड़ कर खानेके लिए प्रलोभित किया और उसके खानेके कारण खुदाकी क्रोधाग्नि भडक उठी । आदम संसारमे फेक दिया गया और उसे वह दारुण शाप दिया गया जिसकी अग्निमे मानव-जाति आज तक जल रही है । यद्यपि इस तरहकी कथा क्रिस्तान और इस्लाम मज़हवके अतिरिक्त अन्य किसी मज़हवमे नहीं पाई जाती, तथापि स्त्रियोके सम्वन्धमे अन्य मज़हवोका दृष्टिकोण भी इसी तरहका है । निष्पक्ष विचारकको अपने ही देश और धर्ममे—सिद्धान्त और व्यवहार दोनोमे—इस तरहके अनेक उदाहरण मिल जायँगे। अतएव यहाँ पर इस विषयको वढानेकी जरूरत नहीं जान पड़ती ।

मजहव और सहृदयता ।

सदाचारके मुख्य स्तम्भ सहृदयताका मज़हवके द्वारा किस प्रकार विनाश होता है तथा हमारे हृदय पर मज़हवका कैसा बुरा प्रभाव पड़ता है यह भी पहले बताया जा चुका है* । हम यह भी देख चुके है कि मजहव जिस परिमाणमे एकता पैदा करता है उससे कहीं अधिक परिमाणमे वह भेदभाव उत्पन्न करता है । मज़हवी आदमीकी सहानुभूति केवल अपने छोटेसे मज़हब, मत, सम्प्रदाय, गिरजे, या मठके साथ होती है—अन्य मज-

---

* देखो अध्याय तेरहवाँ ।

हब या सम्प्रदायके लोगोको वह अपना शत्रु समझता है। वह इस लोकमे तो उनको यंत्रणा पहुँचाता ही है, मरणोपरान्त भी नरककी अग्निमे जलनेके लिए भेजता है। इस सम्बन्धमे क्रिस्तान मजहब अद्वितीय है। सिर्फ प्राचीन रोमन कैथोलिक सम्प्रदायका ही नही, अन्य क्रिस्तान सम्प्रदायोका भी यही विचार है। लूथर, कौल्विन, ज्विगली आदि सुधारक सम्प्रदायोके संस्थापकोने भी यही कहा है कि उनके सम्प्रदायविशेषसे बाहरका मनुष्य कदापि स्वर्गमे नही जा सकता। अतएव अन्य सभी मज़हब, मत या सम्प्रदायके आदमी अनन्त नरकमे जायँगे—क्रिस्तान सम्प्रदायोको इसमे तनिक भी सन्देह नही है। केवल वे ही मनुष्य नही, जो इस ससारमे उपस्थित है, वरन् जो क्रिस्तान मजहबके जन्म ग्रहण करनेके पूर्व भी ससारमे आये थे और जिन्होने क्रिस्तान मजहब या क्राइस्टका नाम भी नही सुना था वे भी—नरककी अनन्त अग्निमे जला करेगे। उनके दु:खोका कभी अन्त नही होगा—एक क्षण, एक मिनटके लिए भी वे इन यातनाओसे मुक्त नही होगे। सारे क्रिस्तान सम्प्रदायोका यही विश्वास है। मजहबके इसी अंगको लेकर एक क्रिस्तान पादरीने एक बार चदेके लिए इस तरह अपील की थी—"पचास हजार आदमी प्रति दिन सदाके लिए उस अग्निमे जलनेके लिए चले जा रहे है जो कभी बुझाई नही जा सकती। ६० करोड़ मनुष्य इस अग्निमे जानेवाले है। क्या आपको दिनमे एकाध बार भी इन अभागे पचास हजार मनुष्योके बारेमे नही सोचना चाहिए? इन लोगोमे क्राइस्टके शुद्ध मतका प्रचार होना अत्यन्त आवश्यक है+।"

नरकका सिद्धान्त।

+ See The Christian Hell by Hypatia Bradlaugh Bonner. P. 12-13, also P. 70 इस समस्त पुस्तकका पढ़ना भी कम उपयोगी न होगा।

केवल वय:प्राप्त अविश्वासी पुरुषोहीके भाग्यमे नरक नहीं बदा है, वरन् जरा जरासे बच्चे भी नरकसे नहीं बच सकते । प्यूरिटन सम्प्रदायका एक पादरी क्राइस्टोफर लव्ह (Cristopher Love) लिखता है कि "छोटे बच्चोको भी—जो संसारमे केवल एक दिनके लिए आये है—नरकका उतना ही भय है जितना कि उस मनुष्यको जो इस संसारमे सौ वर्ष तक जिया हो । लोग मूर्खतावश बच्चोको निष्पाप अनुमान करते है, परन्तु यह बडी भूल है । बच्चे संसारमे चाहे एक मिनट मात्रके ही लिए ही जीवित रहे हो, तौ भी उनके नैसर्गिक दोषके लिए ईश्वर उन्हे दण्ड दे सकता है । ईश्वर अन्यायी कदापि नहीं कहा जा सकता ।" अठारहवीं शताब्दिके मध्य भागमे टौरण्टोके प्रधान पादरीने एक विज्ञप्ति निकाली थी । उसमे लिखा था कि "गर्भधारणके समयसे ही प्रत्येक बच्चेको क्रोधका (?) बच्चा अनुमान करना चाहिए जिससे ईश्वर अत्यन्त घृणा करता है । प्रत्येक नवप्रसूत बच्चेको शैतानका साथी और नरकका पथिक समझना चाहिए ×" अक्सर क्रिस्तान संतोको नरकके दृश्योके देखनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है और जिन संतोने इस अनुपम दृश्यका रसास्वादन किया है उन्होने लिखा है कि "नरकमे केवल वय:प्राप्त मनुष्य ही नही, वरन् बच्चे भी पाये जाते है ।" अलबेरिको (Alberico) नामक साधुने नरकमे एक वर्षके बच्चेको उबाले जाते हुए देखा था । इसपर सेंट पीटरने उसको यह उपदेश दिया था कि एक दिनका बच्चा भी निर्दोष नही माना जा सकता । क्योकि यदि वह और कोई दोष नही करता तो कमसे कम माताको देख कर हाथ फैलाते समय अज्ञानत: उसके गालोमे तमाचा लगा सकता है ।†

× Ib P. 43

† Ib. P. 40-41. अधिक उदाहरणोंके लिए पाठक इस पुस्तकको देखें ।

क्रिस्तान मजहबकी पाशविकताका शेष यहीपर नही हो जाता। दुखियोके दुःख और आर्त रोदनसे क्रिस्तानोको आनन्द भी असीम होता है। यद्यपि पूर्वके एक अध्यायमे ‡ इस विषयपर बहुत कुछ लिखा जा चुका है तथापि यहाँ भी दो एक उदाहरण देना अनुचित न होगा। टॉमस अक्वाइनस लिखते है कि "स्वर्गमे सन्तोके आनन्दको पूर्ण करनेके लिए उन्हे नरककी यातनाओका दृश्य भी दिखलाया जाता है।" आठवी शताब्दिका प्रसिद्ध अँगरेज कवि सिन्यूल्फ लिखता है कि "अच्छे लोग स्वर्गमे अपनी अवस्थाको नरकके लोगोंकी अवस्थासे मिलाकर आल्हादसे फूले न समायँगे और वे ईश्वरको धन्य-वाद देगे।" प्यूरिटन-आचार्य्य क्राईस्टोफर लव्ह कहता है कि "जिस समय तुम अग्निमे जलते होगे—जब तुम यंत्रणाओंसे शृगालकी तरह कोलाहल मचाते होगे, उस समय ईश्वर हँसेगा और उसके पारिषद आनन्द मनायँगे तथा हर्षसे गान करेगे।" एक दूसरा क्रिस्तान धर्मात्मा कहता है कि "यदि ईश्वर नरकको हटा दे तो इससे स्वर्ग-वासी मनुष्योके आनन्दमे बहुत कमी हो जायगी। स्वर्ग-वासियोके आनन्दके लिए नरककी यातनाओका देखते रहना परमावश्यक है।" अधिक उदाहरण कहाँ तक दिये जायँ। नमूनेके लिए इतने ही काफी होगे। खोजनेसे इस तरहके असख्यो उदाहरण प्राप्त हो सकते है *।

---

‡ अध्याय तेरहवाँ।

*देखो—Christian Hell by Hypatia Bradlaugh Bonner esp. pp. 37-39

हिन्दू-साहित्यमें नरक ।

यहाँ पर यह आपत्ति की जा सकती है कि ये सब दृष्टान्त क्रिस्तान मज़हबके है; हमारे भारतीय धर्मोंके नही। इस लिए इनसे कोई व्यापक निष्कर्ष नही निकाला जा सकता। यह ठीक है। हम पहले भी* मजहबोके तुलनात्मक अध्ययनकी कठिनता और अपने धर्म तथा अन्य मजहबोकी भिन्नताकी ओर पाठकोका ध्यान आकर्षित कर चुके है। आगे चल कर यह और भी स्पष्ट किया जायगा ×। परन्तु हमारे यहाँ भी नरकका अभाव नहीं है। यद्यपि हमारा नरक इतना भीषण और हृदय-हीन नही है, तथापि हमारे धार्मिक साहित्यमें भी स्थल स्थल पर नरकके चित्र अंकित किये गये है। उदाहरणके लिए श्रीमद्भागवत पुराणके नरकोका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है।

श्रीमद्भागवतके अनुसार अट्ठाईस नरक है +। ये त्रिलोकमे दक्षिणकी ओर भूमिके ऊपर और जलके नीचे अवस्थित है।

महारौरव नरकमे महा हिंस्र सर्पसे भी अतिशय क्रूर रुरु नामके दैत्य मास खानेके लिए जीवोको विविध प्रकारकी यातनाये देते है। जो मनुष्य ब्राह्मण जातिके प्रति द्रोहका आचरण करते है वे *कालसूत्र* नामक नरकमे निक्षिप्त होते है। *ब्राह्मण*हिंसक भी इसी नरकमे फेंके जाते है। ऊपरसे सूर्य्यकी प्रखर किरणे और नीचेसे तप्त भूमि उन्हे संतापित करती है। उनकी देह भीतर और

---

* देखो अध्याय पहला, पृष्ठ ४ और पृष्ठ १३–१४।

× देखो अध्याय पन्द्रहवॉं और सोलहवॉं।

+ यहॉं सारे नरकोंका वर्णन नहीं दिया जा सकता। केवल दो चार नरकोंका वृत्तान्त ही दिया जाता है। इनका स्वरूप पूर्णताके साथ जाननेके लिए उक्त ग्रन्थके पंचम स्कन्धके छव्वीसवे अध्यायको देखना चाहिए।

बाहरसे सदा दग्ध हुआ रहती है। पशुकी देहमे जितने रोम हैं उतने सहस्र वर्षतक उन्हे यह यातना भुगतनी पड़ती है। *असिपत्रवन* नरकमे यमदूत जीवोंके ऊपर दण्डप्रहार किया करते है। उनके दारुण प्रहारकी यातनासे पापी इधर उधर दौड़ता फिरता है। उसी समय वृक्षोके पत्ते दोहरी धारकी तलवारकी तरह पडकर उनके शरीरको छिन्न भिन्न कर देते है। उस समय वह दुरात्मा "हाय मरा, हाय मरा" कहकर पद पद पर तीव्र वेदनासे मूर्च्छित हो पड़ता है। जिस प्रकार ऊखको पेलकर रस निकाला जाता है उसी प्रकार *शूकरमुखनरकमे* बलशाली यमदूत पापियोके शरीरको पेलते है। पशु, पक्षी, मक्खी, चीलर प्रभृति जीव, जो इस ससारमे मनुष्यो द्वारा मारे जाते हैं अन्धकूप नामक नरकमे मनुष्योकी प्रतिहिंसा किया करते है। इनके उत्पातके कारण मनुष्यको नीद नही आती। *कृमिभोजन* नरकमे लक्ष्य योजनका एक कृमिकुण्ड है। इस नरकमे पड़कर मनुष्य कृमियोको खाता है और कृमि मनुष्यको। चोरी या बल द्वारा *ब्राह्मण*का सुवर्णरत्नादि हरण करनेके कारण लोग *सन्दंश* नरकमे डाले जाते है। वहा यमदूत अग्निमे लाल किये हुए लोहेके द्वारा उनके शरीरको छिन्न भिन्न करते है। अगम्यागमनके दोपीको *तप्त-शूर्मि* नरकमे जाना पड़ता है। वहॉ पुरुषोको लोहेकी बनी हुई एवं अग्निमे लाल की गई स्त्रीकी प्रतिमासे और स्त्रियोको इसी प्रकारकी पुरुषप्रतिमासे आलिंगन कराया जाता है और वज्रतुल्य कॉटेदार वृक्षोपर चढा कर खीचा जाता है। *वैतरणी* नरकमें मगर आदि हिंसक जलजन्तु मनुष्योको भक्षण करते है तथापि उनके प्राण नहीं निकलते। कुछ नरकोमे मनुष्योको विष्ठा, मूत्र, पीब, लहू, नख, केश, अस्थि, मेद इत्यादिका भोजन कराया जाता है।

सारमेयादन नरकमे सातसौ सत्ताईस कुत्ते वज्र जैसे कराल दाँतो द्वारा जीवोको चबाते है। *अवीचि* नरकमे यमदूत जीवोके शरीरको ज़रा जरा कतरते है तौ भी उनकी मृत्यु नही होती। कहीं कही यमदूत लोहेको आगमे लाल करके उससे जीवोके शरीरको निरन्तर सेका करते है। जो लोग अपनेको महत् समझ कर अहंकारवश तपस्या, विद्या, सदाचार, वर्ण और आश्रममे श्रेष्ठ मनुष्यका अनादर करते हैं, वे *क्षारकर्दममय* नरकमे निपतित होते है। कही कहीं तीक्ष्ण चोचवाले शिकारी पक्षी जीवोके शरीरको नोचते रहते है। किसी किसी नरकमे पंच-मुख और सप्त-मुख सर्प जीवोंको पकड़ पकड़कर चूहेके समान निगलते रहते है। सूचि-मुख नरकमे यमदूत मनुष्यके शरीरको छिन्न भिन्न करके उससे जुलाहोके सदृश सूत बुनते है।

यह वर्णन कितना भीषण है, तथा क्रिस्तान-नरकसे इसका कितना सादृश्य है, इसका निर्णय पाठको पर ही छोड़ा जाता है।

जो मनुष्य अन्य मनुष्योका, परलोकमे भी इतना अहित सोच सकता है, जो दूसरोको अनन्त समयके लिए—इतने सहस्र वर्षोंके लिए कि जितने रोये किसी पशुके बदन पर है—नरकाग्निमे भेज सकता है, वह इस लोकमे भी मनुष्यकी हत्या या हिसा कर सकता है। इसमे कोई आश्चर्य्य नही है। इसी लिए धर्मोन्मत्त मनुष्योंने मनुष्य जातिका बहुत बड़ा अपकार किया है। पूर्वके अध्यायोमे इसका सविस्तर वर्णन किया चुका है*। लेकीने लिखा है (Rise and influence of Rationalism in Europe) कि जर्मनीके सिर्फ एक गिरजेमे एक वर्षके अन्दर नौ सौ आदमी जीते जलाये गये थे। मनुष्य अपने शरीरको कहाँ तक कष्ट देता है

* देखो अध्याय तेरहवाँ।

यह भी किसी अध्यायमें वर्णन किया जा चुका है*। हमारे देशमे अब भी अनेक साधु कॉटोकी शय्या पर सोते है और गर्मीके दिनोमे लहकते हुए आकाशके नीचे दो पहरके समय अग्निका सेवन करते हैं। इँग्लैण्डमे हाल तक कार्डिनल वोग्हन एक पहुँची पहिने रहते थे, जिसके अन्दर अनेक सूईयाँ टकी होती थीं और जो सदा उनकी कलाईमे चुभती रहती थीं। मजहबके इस अग पर अधिक टीका करनेकी ज़रूरत नहीं है। हम पूर्वके किसी अध्यायमे दिखला चुके है कि जो मनुष्य अपने सुख और आनन्दकी परवाह नही करता—जिसे सुख और आनन्दसे शत्रुता है—जो इन्हे बुरा समझता है—वह दूसरोंके कल्याणकी भी कदापि परवाह नहीं करेगा ×।

ईश्वरका न्याय।

अतएव मजहबकी मूल भित्ति, प्रेम, दया, सहृदयता और क्षमा नहीं, वरन् प्रतिहिंसा, प्रत्यपकार, घृणा, और निष्ठुरता है। क्रिस्तान और इस्लाम मज़हबके सम्बन्धमे तो कुछ कहना ही वृथा है। क्योकि एक सामान्य अपराध पर—एक वृक्षसे एक छोटासा फल तोड़कर खा लेनेके कारण—क्रिस्तान ईश्वरने अभी तक ससारको श्मशान बना रक्खा है और इससे भी सन्तुष्ट न हो कर भयकर नरक निर्माण करके रख छोड़ा है जिसमे मनुष्योंको डाल कर वह उनसे अनन्त समय तक बदला वसूल करेगा—असंख्यो पीढ़ी दूरके एक पूर्वजके अपराधके कारण समस्त मानव जातिको निरन्तर ही अग्निमे भस्म करता रहेगा। अन्य मज़हबोंकी अवस्था भी कुछ कुछ इसी तरहकी है। *प्रतिकार या प्रतिहिंसाका भाव सभी मजहबोंके ईश्वरोंमें विद्यमान है।* सैद्धान्तिक रूपसे

---

* देखो अध्याय दसवॉ। × देखो अध्याय तीसरा।

चाहे जो हो; परन्तु व्यावहारिक रूपसे सभी मजहबोका ईश्वर ज़िद्दी, जालिम और अस्थिर-चित्त है। उसके दण्डविधानमे कोई नियमितता नहीं है। सामान्यसे सामान्य अपराधपर भी वह बहुत बड़ा और कडा दण्ड देता है। एक अँगरेजी काव्य-लेखिकाका यह लिखना बहुत ही स्वाभाविक है कि—

> The earthquake whelms
> Its undistinguished thousands, making grves
> Of peopled cities in its path, and this
> Is Heaven's dread justice. Aye it is well.

Mrs Heman's Vespers of Palermo.

भावार्थ—भूकम्प बसे हुए नगरोको उजाड़कर उसके खण्डहरोमे हजारोको गाड़ देता है। ईश्वरका भीषण न्याय ऐसा ही है और यह सत्य और यथार्थ न्याय है। अतएव यह अच्छा ही है !

अतएव जब ईश्वरहीका न्याय इस प्रकारका है, तब यदि मनुष्य ईश्वरका अनुकरण करना चाहे तो इसमे उसकी भूल ही क्या हो सकती है? जब स्वयं ईश्वर ही दोषियो और पापियोसे इस तरहका व्यवहार करता है तब यदि मनुष्य मनुष्यको यातना दे तो इसमे कोई अनौचित्य नहीं दीख पड़ता। इसी कारण ससारमे इतनी लड़ाइयाँ हुई है और देशविदेश विजय किये गये है। पहलेके एक अध्यायमे ही वर्तमान युद्धका जिकर करते हुए हमने कहा था कि यह युद्ध भी वास्तवमे धार्मिक लोगोका ही भड़काया हुआ है। युद्ध-भावकी पुष्टि धार्मिक साहित्यसे ही हुई है। यहाँ पर एक अँगरेज पादरी महोदयकी बनाई हुई कविताके निम्न भाग पर विचार कीजिए।—

मजहबके द्वारा युद्ध-भावकी पुष्टि इसके कुछ प्रमाण।

We will not cease from battle, we will not
sheathe the sword
St. George St George for England, and
England for the Lord!

(Refrain of a hymn, specially written for a commemoration service on St. George's day 1906, held at St. Margeret's church, Lothbury)

भावार्थ—हम लोग युद्ध बन्द नहीं करेंगे—हम लोग तलवारको कदापि म्यानमें नहीं डालेंगे। सेण्ट जॉर्ज इंग्लैण्डकी रक्षा करे। इंग्लैण्ड सदा ईश्वरकी सेवा किया करेगा।

एक दूसरा प्रमाण लीजिए:—

"For some wise but inscrutable reason it has pleased the Almighty to constitute all life in this world on a war and not on a peace basis, and is it wise of the creature to dispute the wisdom of the creator ?"

Lt. Gen. Sir Reginald Hart in Nineteenth century and After Aug. 1911 *

भावार्थ—किसी उत्तम परन्तु बुद्धिमे न अटनेवाले कारणवश ईश्वरने इस संसारके जीवोकी रचना शातिकी नीव पर नही, वरन् युद्धकी नीव पर, की है। क्या ईश्वरद्वारा पैदा कियेगये तुच्छ जीवोके लिए ईश्वरकी बुद्धिमानी पर कटाक्ष करना उचित है ?

यो तो लोग वर्तमान समयके युद्धोके लिए विज्ञानको दोषी ठहराते है; परन्तु हमे यह स्पष्ट रूपसे जान लेना चाहिए कि योरोपके युद्धो-

* Quoted in Christianity and Conduct-by Hypatia Bradlaugh Bonner P. 44

का—वर्तमान महायुद्धका भी—पुष्टीकरण क्रिस्तान मजहबहीके द्वारा हुआ है । पाश्चात्य जगत्का मुख्य मजहब—क्रिस्तान, युद्धके ही हाथो पाला और पोसा गया है। रण-राक्षसीका दुग्ध पान करके ही वह सयाना हुआ है । युद्धकी ही संरक्षकतामे वह बढा है और बलसपन्न हुआ है । युद्धमे विजय प्राप्त करनेके लिए ही रोमका बादशाह कॉन्स्टण्टाइन क्रिस्तान हुआ था । युद्ध और मज़हब सदा साथ चलते है । मज़हब ही आदमीको युद्ध करनेके लिए प्रेरित करता है । मज़हब मनुष्यकी युद्ध-कामनाको बराबर प्रबल करता रहा है । योरोपका सबसे बड़ा मज़हबी युग युद्ध और दासताका ही युग था। अब तक शायद योरोपका ऐसा कोई युद्ध न हुआ होगा जिसका लड़ाकू जातियोके गिरजोने समर्थन न किया हो । चीनसे जो अफ्यून-युद्ध हुआ था उसके समाप्त होने पर लण्डनके पादरी-संघ (London Missionary Society) ने एक सभा की थी और इस युद्धके द्वारा चीनमे क्रिस्तानधर्मप्रचारमे सुगमता प्राप्त होनेके कारण ईश्वरके प्रति कृतज्ञता प्रकट की थी । तल-एल-कबीरके युद्धके पश्चात् यॉर्कके प्रधान पादरीने प्रत्येक गिरजेको ईश्वरके प्रति कृत-ज्ञता-प्रकाशनका हुक्म दिया था—क्यो कि इस युद्धमे ईश्वर इँग्लैण्डके पक्षमे होकर लड़ा था ! बाक्सर-युद्धके पश्चात् पादरियोने इॅग्लैण्ड द्वारा उजाड़े गये खण्डहरो और प्रदेशोमे ईश्वरको धन्यवाद दिया था ! इग्लैण्डके प्रायः प्रत्येक गिरजेने दक्षिण आफ्रिकाकी लडाईका समर्थन किया था । एक बहुत बड़े पादरीने सन् १८९९ मे लिखा था कि "शातिके सम्बन्धमे बहुतसी मीठी मीठी, परन्तु झूठी और मूर्खता-परिपूर्ण बाते कही गई है । मुझे उनमे सदा सन्देह होता रहा है। युद्धसे भी बुरी वस्तुये इस ससारमे पाई जाती है । ईश्वरने अपनी विश्व—

व्यवस्थामे आँधी तूफान, भूकम्प, दुर्भिक्ष आदि बहुतसी वस्तुओको स्थान दिया है। अतएव यह क्यो कर कहा जा सकता है कि ईश्वर युद्धके विरुद्ध है ?"* इसी लेखककी एक कविता टाइम्समे छपी थी जिसका एक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है:—

They say that "war is hell," "The great accursed,"
The sin impossible to be forgiven,
Yet I can look beyond it at its worst,
And still find peace in heaven.
And as I note how nobly natures form
Under the wars red rain, I deem it true
That he who made the earthquake and the storm
Perchance makes battles, too!

... ...

Thus, as the heaven's many coloured flames
At sunset are but dust in rich disguise
The ascending earthquake dust of battle frames
God's picture in the skies*

कैनन कार्माइकलने लिखा है—"युद्धमे कोई बुराई नही है। बाइबलका नूतन खण्ड (New Testament) भी यही कहता है। भगवान ईसाने लड़ाईके विरुद्ध कही एक भी वचन नहीं कहा है। जॉन दी बैप्टिष्ट सिपाहियोको उपदेश अवश्य देते है; किन्तु उनके पेशेके विरुद्ध कुछ भी नही कहते। सेण्ट पॉलको लडाइयोके वर्णनमे असीम आनन्द प्राप्त होता है। संसारका इतिहास युद्धोंसे परिपूर्ण है। निष्कर्ष यही है कि युद्ध ईश्वरको भाता है। ईश्वरको दुःख और मृत्युकी क्या परवाह

---

* Ib. P. 48.

है!"* वर्तमान युद्धको लण्डनके प्रधान पादरी (Bishop of London) ने सर्वोत्कृष्ट और महोज्ज्वल युद्ध कहा था। मिसेज बॉनर लाका कहना बिल्कुल सत्य है कि "कुछ समय पूर्व जिन गिरजोसे शान्ति और मनुष्यके भ्रातृत्वकी झूठी गूँजे निकल रही थी अगस्त १९१४ के बाद उन ही गिरजोसे युद्धके निनाद प्रतिध्वनित होने लगे। लोग इस युद्धको ईश्वर द्वारा भेजा हुआ युद्ध अनुमान करने लगे और युद्ध करना प्रत्येक ईसाई जातिका कर्तव्य हो गया।+"

मज़हब सदा बलवानों तथा अधिकार-प्राप्त लोगोंहीके पक्षमें रहता हुआ और जनसाधारणके राजनीतिक तथा सामाजिक बन्धनोंसे मुक्त होनेके प्रयत्नोंका विरोध करता हुआ पाया गया है। उसने मुक्तकण्ठसे कहा है कि—

ढोल गँवार शूद्र पशु नारी,
ये सब ताड़नके अधिकारी।

मज़हब और स्वतंत्रता।

मजहब विश्व-बन्धुत्व और मनुष्यके भ्रातृत्वकी डींग भले ही मारा करे; परन्तु आज तक वह इन बातोको व्यवहारमे लाता हुआ नहीं देखा गया है। अधिक प्रमाणो और उदाहरणोकी जरूरत नही है। इसके लिए हमे अपने ही समाज पर एक बार दृष्टिपात कर लेना चाहिए। क्या आपको अन्य कोई ऐसा समाज मिलेगा जिसमे एक समूहक मनुष्य दूसरे समूहके मनुष्योको छूना पाप समझे? क्या आपको और कोई समाज ऐसा मिलेगा

* The Christian Jan 11, 1900, Quoted in Ib P. 49

+यहाँ अधिक अवतरण नही दिये जा सके। उक्त पुस्तकमे बहुतसे उदाहरण है जिन्हे पाठक स्वय देख सकते है।

जिसमे बहुतसे मनुष्योंके ऊपर ‘ अछूत ’ का लेबिल लगा हो ? क्या आपको ऐसा और कोई समाज मिलेगा जिसका एक छोटा भाग समाजके और एक बड़े भागको मूर्खता और दासतामे फँसाये रखकर उसका खून चूसना, और उसे अपने सुख-साधनका यंत्र समझना, अपना जन्म-सिद्ध और ईश्वर-प्रदत्त अधिकार समझता हो ?

अन्य देशो और मजहबोकी अवस्था भी प्रायः इसी तरहकी है। योरोपने भी अन्यदेशीय जातियोके साथ वैसा ही व्यवहार किया है जो हम अभीतक अपने यहाँकी नीची जातियोंके साथ कर रहे है। पाश्चात्य जातियोंकी पशुता, स्वार्थान्धता और अत्याचार-प्रियताके कारण बीऔथिक, टसमेनियन, ऑस्ट्रेलियन आदि जातियोका ससारसे प्रायः नामशेष हो गया है। अमेरिकाकी डीलावेयर्स, स्यूक्स, चेअनीज आदि जातियाँ लोप हो चुकी हैं। सभ्य योरोपके सभ्य अधिवासियोने असभ्य जंगली जातिकी स्त्रियोका कोड़ोकी मारसे प्राण हरण किया है, पुरुषोके पीठकी खालको चिमटोसे पकड़ पकड़ कर खींचा है, मनुष्यको बलात्कार गुलाम बनाकर रक्खा है और इस कार्यमें लाखोकी मृत्यु हुई है। क्या क्रिस्तान मजहबके पास इसका कोई उत्तर है ? विजित देशोकी कितनी स्त्रियोका इन्होने सतीत्व हरण किया है क्या इसकी कोई गिनती कर सकता है ? गिल्बर्ट मुरे महोदय लिखते है—“मुझे स्वय एक ऐसे मनुष्यसे भेट हुई है, जिसने मुझसे कहा था कि मैं काले मनुष्योको देखते ही गोली चलाकर उन्हे मार डालता था। एक दूसरा मनुष्य मुझसे कहता था कि मैने काले मनुष्योको मारनेके लिए भोजनमे जहर मिलाकर उनके निवासस्थानके चारो ओर छींट दिया था और इससे बहुतसे काले आदमी चूहेके समान मर गये थे। मेरे भाई क्वीन्सलैण्डमे एक मनुष्यके मेहमान थे, जिसने नदीके एक

स्थानको दिखलाकर उनसे कहा था कि 'मैने एक दिन यो ही विनोदार्थ, सिर्फ नदीमे रहनेवाले घडियालेका तमाशा देखनेके हेतु—काले मनुष्यके एक परिवार—पति पत्नी और बच्चे—को नदीमे डाल दिया था।' न्यू सौथ वेल्समे काले लोगोको निमन्त्रित करके विष मिला हुआ भोजन दिया जाता था।" क्या क्रिस्तान मजहब इन सब बातोके जवाब देनेका सहस कर सकता है? श्वेताङ्ग ईसाइयोने अमेरिकाके रेड इण्डियन बच्चोको निशाना बना बना कर बन्दूक चलानेका अभ्यास किया है, स्त्रियोकी अँतड़ियाँ निकाली है, मनुष्योके सिरोकी खाल खींची है। क्या इसके उत्तरमे कोई भी बात कही जा सकती है?

ज्यादह दूर जानेकी क्या जरूरत है? भारतमे ही पूर्वकालीन योरोपियनोने जो करतूते की है उनका स्मरण कीजिए। इम्पीरियल गजेटियरके लेखानुसार पोर्तगीज लोग हिन्दुस्तानमे तिजारतके निमित्त नहीं, वरन् क्रिस्तान मजहबके संरक्षक और योद्धाके स्वरूपमे आये थे। अनेक प्रतिष्ठित लेखकोने लिखा है कि उनके उस समयके इतिहासमे सिवाय लूटपाट, कत्ल और खूनके और कुछ नही है। वे मित्रताका उत्तर विश्वासघातसे और स्नेहका उत्तर छलसे देते थे। हिन्दू मन्दिरोका लूटना उनके लिए साधारण बात थी। सोलहवी शताब्दीके मध्य भागमे पोर्त्तगीज़ोका शासन क्रिस्तान पादरियोके हाथोमे आगया और तब सन् १५६० मे भारतमे भी पवित्र इन्क्वीजीशन (Inquisition) की स्थापना हो गई। 'गोआ' प्रभृति स्थानोके हिन्दू बलात्कार क्रिस्तान बनाये गये, उन्हें कैद किया गया और नाना प्रकारकी यन्त्रणायें पहुँचाई गईं। मन्दिर और मस्जिदें तोड़ी गई और अत्याचारसे तग आकर बहुतसे लोग अपने बापदादाओकी भूमिको छोड़ कर भाग गये। क्या क्रिस्तान मजहब इसके उत्तरमे होठ तक हिला सकता है? पुर्त-

गालियोके सिवा अन्य योरोपियनोके कृत्य भी लगभग इसी तरहके थे। इसे कई लेखकोने स्वीकार किया है कि अठारहवीं शताब्दीके मध्य भागमे मुसल्मान-शासित बगालके कृपकोकी दशा फ्रास और जर्मनीके कृपको-से कहीं अच्छी थी। क्या भारतके क्रिस्तान शासक यह बात इस वीसवीं शताब्दीमे भी कहनेका साहस कर सकते है? पाठकोने डिगवी आदि लेखकोकी पुस्तकोमे ये सब बाते अनेक स्थानोपर पढी होगी। देशकी दरिद्रता और दुरवस्था उनसे छिपी हुई नही है। इस लिए यहाँ पर अधिक विस्तारकी ज़रूरत नही जान पड़ती।

साराश यह है कि मज़हवने अत्याचार और अन्यायका कभी विरोध नही किया है। उसने अत्याचार-पीडितो और अवलोको कभी कोई मदद नहीं दी है। उसकी सहानुभूति सदा बलवानो और अधिकार-प्राप्त लोगोके साथ रही है। उसकी उन्नति भी उत्पीडन और अत्याचारके द्वारा ही हुई है। मजहवने सदा शासको और अत्याचारियोका हाथ पकड़ा है और राजाओ और शासकोने सदा मजहवको अवलम्ब दिया है। पुरोहित और राजा लोग सदा ही साथ रहे है। मजहवका सारा इतिहास इसी प्रकारका है। सब देशोकी अवस्था इसी तरहकी रही है। हमारे देशमे भी जब भगवान बुद्धके आघातोसे पुरोहितशक्ति और एक तरहसे राज-शक्ति भी छिन्न भिन्न हो रही थी, तब पुरोहितोने अपना जाल फैला दिया था और उसी समयसे भारतमे अनेको उत्तरदायित्वशून्य, उच्छृं-खल राज-शक्तियोका जन्म होना शुरू हुआ था। *मज़हव सदा अत्याचार-का पृष्ठ-पोषक रहा है।*

वर्तमान योरोपको स्वतंत्र बनानेमें वहाँके मज़हबने कोई भाग नहीं लिया है, यह इतिहासके सभी विद्यार्थियों पर विदित है। स्वतत्रता देवीके सारे ही योरोपीय उपासक अविश्वासी है। फ्रेंच-विप्लवके सारे प्रवर्तक अविश्वासी और नास्तिक थे। अमेरिकन-विप्लवका आध्यात्मिक पिता टॉमस पेन कट्टर क्रिस्तान नहीं था। डैण्टन, डेसमूलिन्स, कल्ट्ट्ज, मैरट, हेवर्ट, चौमटे, वार्नेन्ह, मैडेम रोलैण्ड आदि सभी लोग निरीश्वरवादी थे। इटली, स्पेन, पोर्तुगाल, जर्मनी और रशिया प्रभृति देशोमे जितने लोगोने स्वतत्रताके सन्देशका घोपण किया है वे सबके सब अविश्वासी थे। मैक्सिनी भी (यद्यपि वह एक धार्मिक पुरुष था) क्रिस्तान न था। स्वतत्रताके सारे युद्धोमे लोगोको केवल बादशाहो और राजाओसे ही नहीं वरन् पुरोहितों और पुजारियोंसे भी लडना पड़ा है। रशियाके प्राय: सभी स्वातत्र्योपासक वीर—हर्टजेन, बैकिन, स्टेपनियैक, कुरोपाटकिन और लेनिन—निरीश्वरवादी या स्वतन्त्र-विचारक हुए हैं। ससारके प्राय: सबके सब साम्यवादी नेता अविश्वासी हैं। इटलीका प्रधान साम्यवादी नेता एनरिको फेरी कहता है कि इटलीके मजदूरोको किसी मजहबकी आवश्यकता नही है। फ्रासके लोक-मान्य नेता मजहबको फजूल समझते हैं। जर्मनी, बेल्जियम, स्कैण्डिनेविया प्रभृति देशोके साम्यवादी नेता भी अविश्वासी हैं। इसी तरह प्राय. सभी देशोके सभी मजदूरसघ स्थापित-मजहबके विरोधी हैं।

योरोपीय स्वतंत्रतामें मज़हबका कोई हाथ नही है।

इॅग्लैण्डकी अवस्था भी ऐसी ही है। पेन और शेली ही इॅग्लैण्डमें फ्रेंच-विप्लवके आदर्शको पहले पहल लाये थे और ये दोनो पुरुष अविश्वासियोंमे अग्रगण्य थे। पेन वोलटॅयरका शिष्य था और शेली कट्टर निरीश्वर-

वादी और वेदान्ती था। विलियम गौडविन, मेरी वुलस्टेन्क्रौफ्ट, टौमस हौल्क्राफ्ट, हौर्न ट्रूक, आदि सभी लोग स्वतंत्र विचारक थे। उन्नीसवीं शताब्दीके साम्यवादका जन्मदाता रॉवर्ट ओवेन निरीश्वरवादी था। मज़दूर-सघका जन्मदाता फ्रैंसिस प्लेस अज्ञेयवादी था। जरीमी बेन्थम, जेन्स मिल, सर फ्रॉसिस वरटेड, जान स्टुअर्ट मिल, विलियम मोल्सवर्थ, ली हण्ट, जार्ज वर्कवेक, विलियम एलिस प्रभृति सभी लोग निरीश्वरवादी या अज्ञेयवादी थे। कौवेट, हेनरी विन्सेण्ट, ओव्रायेन, ओकोनर, लैवेट, जोन्स होलियोक इत्यादि लोग अज्ञेयवादी थे। चार्ल्स ब्राडला मशहूर निरीश्वरवादी है। निरीश्वरवादी शेलीने ही राजसिंहासनो, पूजाकी वेदियों, न्यायालयो और कैदखानोको तोड़ डालनेका सन्देश इंग्लैण्डको दिया था। अधिक नामोके लिए अत्र स्थान नहीं है। अन्तमे मार्क्स, एंजेल्स, फ़ूरियर, विक्टर ह्यूगो इत्यादिके नामको लेकर ही सन्तोप करना पड़ता है।

क्रिस्तान मज़हब और गुलामीकी प्रथा।

गुलामीकी प्रथाके सम्वन्धमे एक समय क्रिस्तान मज़हबके क्या विचार थे, इसपर पहले ही वहुत कुछ लिखा जा चुका है*। यहाँ एक प्रोटेस्टेण्ट मतके प्रचारक मेलाकथनका कथन और प्रकट किया जाता है। उसने कहा था कि "क्रिस्तान इतने दुरात्मा, अभद्र और रक्तपिपासु है कि इनका अनुशासन अव पहलेकी अपेक्षा भी अधिक कड़ेपनके साथ करना चाहिए।"

सेण्ट ऑगस्टाइन आदि क्रिस्तान साधुओने गुलामीकी प्रथाका अच्छी तरह प्रतिपादन किया है। कैनन लॉ अर्थात् मज़हवी कानून

* देखो अध्याय चौदह, पृष्ठ ५७।

गुलामीकी प्रथाको पूर्णतया स्वीकार करता था। चर्च अर्थात् धार्मिक मठ भी बहुतसे गुलामोके स्वामी हुआ करते थे और इन मठके गुलामोको स्वतंत्र करना सर्वथा वर्जित था। अधिकतर गुलामोके स्वामी साधु लोग ही थे। सन् १०५१ मे रोममे एक 'धर्मपरिषद्' बैठी थी और उसमें यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था कि जिन पादरियोने शादी कर ली हो उनकी पत्नियॉ दासियाँ बनाई जायँ और वे देशभरके गिरजोमे बॉट दी जायँ। पोप द्वितीय अर्बनने सन् १०८९ मे इस तरहका एक एलान भी कर दिया था कि विवाहित पादरियोकी पत्नियॉ वास्तवमे दासियॉ है। देशको अविश्वाससे मुक्त करनेके लिए तथा धर्मको शुद्ध रखनेके हेतु ये हतभागिनी स्त्रियॉ उस समयके व्यभिचार और पशुताग्रस्त सरदारोके हवाले कर दी जाती थी और ये सरदार लोग इस लोभसे गिरजेके आदेशोका पालन करनेमे बड़ी तत्परता दिखलाते थे। खैर इसे तो छोड़िए; क्रिस्तान योरोपकी आधुनिक दास-प्रथाको तो पाठकगण जानते ही होगे। हमारा तात्पर्य्य योरोपके दास-वाणिज्यसे है। किस निर्दयताके साथ हब्शी लोग पकड़े जाते थे और पकड़ कर गुलाम बनाये जाते थे एव गुलामोका व्यापार कितना लाभदायक होता था, यह योरोपीय इतिहाससे परिचित सभी पाठक जानते है। इन गुलामोकी मददसे ही अमेरिका आबाद किया गया था। यह इतिहासकी बहुत साधारण बात है। उस समय गुलामोको पकड़ कर बेचना ही बहुतसे लोगोका व्यवसाय हो गया था। इसके लिए कई बड़ी बडी कम्पनियॉ खुल गई थीं। आफ्रिकाके पश्चिमी किनारे पर योरोपके प्रायः सभी देशोके व्यापारियोके किले बने हुए थे। दलके दल गुलाम पकड़ कर इन किलोमे लाये जाते और जहाजो पर लाद लाद कर वहाँसे अमेरिका या वेस्ट इण्डिया द्वीपपुजमें पहुँचाये जाते थे। पकड़े जानेके समयसे लेकर इच्छित

स्थानमे पहुँचने तक उन बेचारोमेसे कितनोकी मृत्यु हो जाती थी, इसका हिसाव लगाना असम्भव है। जहाज पर सवार किये गये लोगोमेसे यदि दो गुलाम भी जीते जागते अमेरिका या वेस्ट इण्डीजके टापुओमे पहुँच जाते तो व्यवसाय लाभदायक समझा जाता था!

इस हृदयविदारक रोजगारके विषयमे विनउड रीडने अपनी विख्यात पुस्तक (Martyrdom of Man) मे लिखा है कि "जहाजके निचले हिस्से पर अभागे गुलाम इस तरह ठूँस ठूँस कर भर दिये जाते थे कि जिस तरह किसी वर्तनमे छोटी छोटी मछलियाँ भर दी जाती है। गुलाम लोग समझते थे कि सभी श्वेताङ्ग पुरुष नरमासभक्षक है, उनकी लाल टोपियाँ हब्शियोके रक्तसे रँगी जाती है और वे जिस साबुनका व्यवहार करते है वह हब्शियोका भेजा निकाल कर बनाई जाती है। पकड़े जाने पर गुलामलोग अकसर खाना पीना छोड़ देते थे। ऐसी दशामे एक यंत्रके द्वारा—जिसे डाक्टर लोग व्यवहार करते है—उनका मुँह जबर्दस्ती खोला जाता और उनकी इच्छाके विरुद्ध उन्हें भोजन कराया जाता था। चूँकि स्वास्थ्यके लिए कुछ व्यायाम भी आवश्यक है, इसलिए उन्हे हथकडियाँ और बेड़ियाँ पहने पहने ही जहाज पर उछलने कूदनेकी आज्ञा दी जाती थी। यदि वे इस आज्ञाके पालनमे जरा भी आगा पीछा करते थे तो कैटो-नाईन—टेल्स (Cat-o-nine-tails) से उनकी खबर ली जाती थी। यह एक प्रकारका चाबुक होता था जिसमे नव लड़ियाँ होती थी और प्रत्येक लड़ीमे तीन चारसे कम गिरह न होते थे। इससे केवल उनके शरीरका ही नहीं फेफड़ोका भी व्यायाम हो जाता था। क्योकि चोट लगने पर चिल्लाना स्वाभाविक है। परिश्रमसे शरीरमे रक्तसचालन होता है और रक्त-सचालनके द्वारा पाचनशक्ति तेज होती है। इस प्रकार उनका मास

और सेमका भोजन पच जाता था! तौ भी गुलाम इतने हठी होते थे कि उनमेसे अधिकाश प्राण त्याग कर देते थे। कोई कोई तो जहाजसे समुद्रमे कूदकर ही इस दुःखसे छुटकारा पा लेते थे। वस्ट इण्डिया द्वीपपुजमे इन गुलामोको काम करना सिखलाया जाता था और तव उन्हे क्रिस्तान भूमिमे रहनेका सौभाग्य प्राप्त होता था! परन्तु फिर भी उनके दुःखोका अन्त नहीं होता था। भोजनको जला देनेके कारण यदि किसी गुलाम रसोइएको कोई मालकिन चूल्हेमे डाल देती, यदि कोई चीनीका व्यवसायी किसी गुलामको खौलते हुए चीनीके कड़ाहमे डाल देता, यदि कोई भागा हुआ गुलाम शिकारी कुत्तोके द्वारा नोचवाया जाता और तत्पश्चात् उसका शरीर क्षत विक्षत किया जाता अथवा जजीरो द्वारा जीवित ही लटका दिया जाता, यदि कोई बूढा बलहीन गुलाम मरनेके लिए निराश्रय छोड दिया जाता—तो इन सब अत्याचारोको वेस्ट इण्डियन कानून चुपचाप देखता रहता था। गुलाम, बाटिकेश्वरो (Planters)का रुपया था और उनको उस पर पूरा अधिकार प्राप्त था। सिर्फ दूसरे मालिकके गुलामको मारनेके अपराधमें लोगोको सजा होती थी। और सजा भी कितनी? केवल जुर्माना—अर्थात् गुलामका आर्थिक मूल्य! बिना किसी तरहकी अतिशयोक्तिके यह निःसङ्कोच कहा जा सकता है कि गत शताब्दिमे हब्शियोंके साथ जैसा व्यवहार किया जाता था आज ब्रिटिश साम्राज्यमे कुत्तो और घोड़ोके साथ उससे कहीं अच्छा व्यवहार किया जाता है!"

मनुष्यके रक्त और मासका यह व्यवसाय यो तो इंग्लैण्डमे सन् १८०१ ई० मे बन्द कर दिया गया, परन्तु इसका मूलोच्छेद १९ वीं शताब्दीके मध्य भागमे ही हो सका। क्रिस्तान अमेरिकासे तो इस प्रथाका लोप हुए अभी ६० वर्ष भी पूरे नहीं हुए है। परन्तु इस प्रथाको रोकनेका

श्रेय क्रिस्तान मजहब या और किसी मजहबको नही, वरन् ससारके अविश्वासी और प्रचलित मजहबके विरोधी लोगोको ही प्राप्त है । सबसे पहले स्वतंत्रता देवीके पुजारी फ्रेंच विप्लववादियोने ही इसका मुँह काला किया था । यह सन् १७९४ की बात है । इसके बाद अमेरिकामे भी इसका आन्दोलन शुरू हुआ और वहॉ इसकी नीव अविश्वासी टौम पेनने डाली । यह वही टौम पेन है जिसकी रची हुई किताबो तकको बेचनेके लिए अनेक मनुष्योकी जायदादे जब्त की गई थी और बहुतोको कारावासका दण्ड दिया गया था।*
उत्तर और दक्षिण अमेरिकामे जिस समय गुलाम-प्रथाको उठानेके निमित्त युद्ध छिड़ा हुआ था—उस समय साधारण लोग 'अविश्वासी' और 'दासप्रथा-विरोधी' इन दोनो शब्दोको पर्य्यार्यवाची शब्द समझते थे।

यह तो हुई कुछ समय पहलेकी बाते, अब जरा हालकी प्रतिज्ञाबद्ध कुलीप्रथा पर भी विचार कीजिए। ऐसा कौन भारतवासी है जो इस पापपूर्ण प्रथासे परिचित न हो । श्रीमती हाइपेशिया ब्राडलौ बोनर अपनी पुस्तक (Christianity and Conduct)मे लिखती है—"प्रतिज्ञा-बद्ध-कुली प्रथाको गुलामीकी छोटी बहन ही समझना चाहिए । क्योकि यह भी गुलामीकी प्रथासे कम भीषण नहीं है । परन्तु सबसे पहले इसका विरोध एक अविश्वासीने ही किया था जिसका नाम सर हेनरी कॉटन है।"+ उक्त लेखिकाका ही कथन है कि "हम क्रिस्तान मजहबके विश्वबन्धुत्वके स्थापन करनेके सम्बन्धमे बहुत कुछ सुना करते है। परन्तु वास्तवमे यह विश्वबन्धुत्व कितना थोथा और खोखला है इसका पता

---

* See Penalties upon Opinion—by Hypatia Bradlaugh Bonner

\+ P. 33.

इस घटनाके द्वारा अच्छी तरह लग जाता है कि सन् १९१० मे जो अन्तर्देशीय-रविवार-स्कूल-परिषद् (world's Sunday School convention) हुई थी उसमे काले या अन्य वर्णवाले लोगोको श्वेताङ्ग लोगोके साथ सम्मिलित होनेकी मनाही थी ! ”

इन्हीं कारणोंसे मजहबने सदा ज्ञान और शिक्षाका विरोध किया है, क्योंकि ज्ञान-सम्पन्न और शिक्षा-युक्त होनेसे ही समाजकी निम्न श्रेणियोंमे असन्तोषका जन्म होता है । शिक्षाके द्वारा हीं लोगोंको अपनी हीनावस्थाका ज्ञान होता है—उनके दिमागका मज़हबी आवरण हटता है—वे सोचने लग जाते हैं कि हम भी मनुष्य हैं और हमारे साथ भी मनुष्यका सा व्यवहार किया जाना चाहिए । शिक्षा-युक्त होकर ही लोग अपने अधिकारोंकी प्राप्तिके लिए चेष्टा करने लगते हैं । अतएव ज्ञान और शिक्षा मज़हबके बहुत वड़े शत्रु है और इसी लिए मज़हब उनका विरोध करता है । अँगरेज़ी इतिहाससे इसका एक बहुत अच्छा प्रमाण प्राप्त होता है । सन् १८०७ मे प्राथमिक शिक्षाके प्रचारके लिए अंगरेज़ी व्यवस्थापिका सभामे एक बिल उपस्थित किया गया था; परन्तु हौस ऑफ लार्ड्स (House of Lords) ने उसे अस्वीकार कर दिया था। क्योकि देशके प्रधान पादरी इसके बहुत बड़े विरोधी थे । उनका कथन था कि शिक्षाके द्वारा ग़रीब लोगोके सदाचार और सुखको बहुत बड़ा धक्का पहुँचेगा । शिक्षित होनेसे वे क्रिस्तान मज़हबके विरुद्ध तर्कों और दलीलोको पढ़ेगे । इससे उनमे बड़ोके प्रति आज्ञाधीनताका जो भाव है वह शिथिल हो जायगा । सन् १८२० मे ब्रूहमने प्राथमिक शिक्षाके सवालको फिर उठाया और उसका बिल दो बार

लोगोंको दासतामें जकड़े रखनेके अभिप्रायसे मज़हब ज्ञान और शिक्षा का विरोध करता है ।

पढा भी जा चुका; परन्तु सारे क्रिस्तान सम्प्रदायोने इतना बड़ा विरोध किया कि उसे अपना बिन वापस ले लेना पड़ा। उस समय विरोधी दलके लोग यहाँ तक माननेको तो तैयार हो गये थे कि लोगोको बाइबल पढाना चाहिए; परन्तु इससे अधिक शिक्षा देनेको—लिखना पढना सिखलानेको—वे एकदम बेज़रूरी समझते थे।

गरज यह कि मज़हब मनुष्यकी उन्नतिके पथका काँटा है। यद्यपि मनुष्यकी आदि अवस्थामे मज़हबके द्वारा मनुष्यका बहुत कुछ उपकार हुआ है; परन्तु मनुष्य अब उस अवस्थाको अतिक्रम कर चुका है। मनुष्यकी आदि अवस्थामे लड़ाई और समाजिक अस्तव्यस्तताका युग था, इसलिए मज़हब उस अवस्थाके लिए उपयुक्त और लाभजनक हो सकता था *। परन्तु अब वह विकासके उस दर्जे पर आपहुँचा है जहाँ कि उसे अपने विचारोके बदलनेकी ज़रूरत है। जिस समय मनुष्य पशुओके तुल्य और असमाजिक था—जब उसने आज्ञाधीनताको नहीं सीखा था—जिस समय उसे नादिर और तैमूरके समान शासकोकी ज़रूरत थी—उस समय अपने धार्मिक जीवनमे भी उसे एक पूर्ण-बल-सम्पन्न, अनन्त दण्ड देनेवाले यथेच्छाचारी ईश्वरकी आवश्यकता थी। जिस समय मनुष्यकी सामाजिक प्रवृत्तिका दृढीकरण नहीं हुआ था—जिस समय वह स्त्रियो, दुर्बलो और निस्सहायो पर अत्याचार करता था—जिस समय वह निरन्तर लूट पाट और रक्तपातमे लगा रहता था—उसी समय उसने रक्त-पिपासु देवताओ या ईश्वरोका आविष्कार किया था। प्राचीन समयमे मनुष्यका जीवन शायद ही पशुओसे कुछ ऊँचा था। अतएव जीवन-सग्राममे भी युद्धके ही द्वारा निपटारा होता था। इस लिए उक्त पुराने समयके विचारो द्वारा इस

---

* देखो अध्याय पहला, पृष्ठ २०–२२।

समयके मनुष्योका उपकार नही हो सकता। युद्ध और मज़हवमे सदा घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। अतएव यदि मनुष्यकी वर्तमान अवस्थाके लिए युद्ध हानिकर है—और पूर्वके एक अध्यायमे× इसे प्रमाणित करनेकी चेष्टा भी की गई है—तो प्राचीन मज़हवो और मजहवी विचारोंके द्वारा भी इस समय मनुष्यका कोई उपकार नहीं हो सकता।

मज़हब और सदाचारका विरोध स्पष्ट करनेके लिए इतना ही कहना पर्य्याप्त है कि मजहबका उद्देश ईश्वरको प्रसन्न करना है और सदाचारका उद्देश्य मनुष्योकी सेवा करना है। मज़हबी आदमीका ईश्वर सत्कर्मोंसे उतना प्रसन्न नही होता जितना कि पूजा या स्तुति, व्रत या उपवास, तपस्या या संन्यास तथा शरीरको नाना प्रकारके कष्ट देनेसे होता है। हम यह भी बतला चुके है कि ईश्वर-विश्वासके द्वारा हमे सत्य पथके अवलम्बनमे सहायता नहीं मिलती *। जव संसारमे सब कुछ एक अनन्त सर्वशक्तिमान ईश्वरकी इच्छासे होता है—जब सारे दुःखो क्लेशो और यातनाओंके द्वारा ईश्वर ससारका भला करता है, तब हम क्षुद्र मनुष्योको ईश्वरके कार्योंमे हस्तक्षेप करनेकी क्या जरूरत है? यहाँ पर हम एक लेखिकाकी कविताके कुछ अशको उद्धृत किये बिना नहीं रह सकते—

The earthquake whelms
Its undistinguished thousands, making graves
Of peopled cities in its path—and this
Is Heaven's dread justice—ay, and it is well!
Why then should we be tender, when the skies
Deal thus with man?

× देखो छठा अध्याय, द्वितीय खण्ड–'युद्ध, जीवनसग्राम और सदाचार।'
* देखो अध्याय बारहवाँ।

मज़हबके लिए सबसे अधिक आवश्यक वस्तु विश्वास है और शायद इसी लिए क्रिस्तान मज़हबने आठ, नौ, और दस दस वर्षके बच्चोको भी अविश्वासके लिए दण्ड दिया है—परन्तु सदाचारके लिए कर्म आवश्यक है। विश्वास करने या मज़हबी कामोके करनेसे ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है, सदाचारके द्वारा नहीं। मज़हबका सम्बन्ध विश्वाससे है आचरणसे नहीं। और यदि मजहबका लगाव हमारे आचरणोंके साथ कुछ होता भी है, तो भी हम उसे नैतिक बातो पर पूरा ज़ोर देते हुए नहीं पाते। बल्कि मज़हब अनैतिक बातो पर ही अधिक ज़ोर देता है *। उदाहरणार्थ—क्या पहरना चाहिए और क्या नही, क्या खाना चाहिए और क्या नहीं, किस दिन खाना चाहिए और किस दिन उपवास करना चाहिए; × किस दिन काम करना चाहिए और किस दिन आराम करना चाहिए, ** इत्यादि।

मज़हब विश्वास-प्रधान है और सदाचार कर्म-प्रधान। नैतिक और मजहबी कामोंकी भिन्नता।

---

* इस विषयमें पृष्ठ २११-१२ की टिप्पणी पढ़िए।

× एक मर्तबा कुछ मुसल्मान जहाजियोंको उत्तरध्रुवके क्षेत्रोंमें जाना पड़ा। उत्तरी प्रदेशके दिन रातकी अपेक्षा बहुत बड़े होते हैं। यह रमजानका महीना था और मुसल्मान इस महीनेमें रोज़ा रखनेके लिए बाध्य हैं। अत. वे दिनको भोजन नहीं कर सकते थे और कम्बख्त दिन किसी तरह खत्म ही नहीं होता था। आखिर कुछ लोगोंने तो इस नियमको तोड़ दिया किन्तु सत्तरह आदमी दृढ रहे और किसी प्रकार अन्न या जल न ग्रहण करनेके कारण उनकी मृत्यु हो गई।

—See Christianity and Conduct—by H. P. Bonner P. 22

**प्रोटेस्टैण्ट इंग्लैण्डमें रविवारके दिन कानून द्वारा लोगोंको काम करनेसे या किसी प्रकारके विनोद इत्यादिमें भाग लेनेसे वर्जित किया जाता था। स्काटलैण्डमें बहुत दिनों तक रविवारके दिन अपने दरवाजे पर बैठना, स्नान करना, या हजामत

इतना ही नही, मजहब कभी कभी सदाचारविरुद्ध काम भी करवाता है। हम क्रिस्तान इतिहासमे देखते है कि इब्राहीमने ईश्वरको प्रसन्न करनेके लिए अपने पुत्रका बध किया था। मजहबके सभी विद्यार्थी जानते है कि मजहबका रक्त और नर-बलिदानसे कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है +। हमारे भारतमे ये बाते अभीतक देखनेमे आती है। इस विषयमे शाक्त, वाममार्गी या कौलिक सम्प्रदायोका नाम ले देना ही पर्य्याप्त है। हमारे देशके जनसाधारणका अबतक यह विश्वास है कि किसी पुल या मकानकी नीवमे बच्चेको जीवित पूर देनेसे देवता प्रसन्न होता है और काम निर्विघ्न समाप्त हो जाता है।

मजहबका अस्तित्व स्वार्थ पर है और सदाचारका परार्थ पर।

मजहबका लक्ष्य स्वार्थ और सदाचारका लक्ष्य परार्थ है।

बल्कि मजहब तो साफ तौरसे मनुष्यकी उपेक्षा करनेकी आज्ञा देता है। यद्यपि इन बातोका सविस्तर वर्णन पूर्वके अध्यायोमे किया जा चुका है, तथापि यहाँ पर देश-सेवा या मनुष्य-सेवाके विषयमे एक हिन्दू सम्प्रदायके मतको उद्धृत करनेके लोभको हम सवरण नहीं कर सकते। राधास्वामी सम्प्रदायकी एक पुस्तकसे एक अवतरण यहाँ पर दिया जाता है—

"अक्सर लोग बहुत कुछ जोर इस बात पर देते है कि सबसे आला परमार्थ तो परोपकार और देशकी उन्नति करना है—मनुष्योकी सेवा

बनाना अक्षम्य अपराध अनुमान किया जाता था। हम कई जगहों पर कह चुके हैं कि इस सम्बन्धमे हमारे देशकी अवस्था प्राचीन स्काटलैण्डसे अधिक भिन्न नहीं है। उदाहरणार्थ हम भी इतवार या मगलवारके दिन तेल लगाना, सनीचर या मंगलको हजामत बनाना, इतवारके दिन सत्तू भूँजा या तिल खाना बुरा समझते है। उपवासोंकी कमी हमारे यहाँ भी नही है।

+पहले भी एक अध्यायमें इस बात पर कुछ प्रकाश डाला गया है।

मालिक ही की सेवा है—अभ्यासके लिये आज कल मौका नहीं है क्योंकि शरीरमें बल ही नही है और इतनी फुरसत कहा है कि परमार्थके निमित्त खोज व तलाश की जावे—लोग भूखो मर रहे है—अविद्या और बीमारियोने भाईओको दबा रक्खा है—दूसरे मुल्कके लोग अन्धाधुन्ध तरक्की कर रहे है और हमारे देशकी तिजारत बिल्कुल गायब हो रही है, इस लिये देशकी सेवा—कौमकी सेवा और परोपकार यही असल सच्चा परमार्थ आज कलके लिये है—इसको छोड़कर अपने उद्धार या मुक्तिके लिये चुपचाप कोशिश करना नेहायत खुदगर्जीकी बात है वगैरह वगैरह*" इस 'गलत समझौती' के उत्तरमे इस सम्प्रदायके गुरुने—जो इस सम्प्रदायके अनुयायियोके विश्वासके अनुसार स्वय ईश्वर ही हैं और जिनका स्थान पृथ्वीके सभी अवतारो, राम, कृष्ण इत्यादिसे भी ऊँचा है—अपने मजहबी दृष्टिकोणका परिचय पूर्णताके साथ दिया है। उन्होने इस तर्कका—जिसको वे 'गलत समझौती' कहते है—विश्लेपण करके यह नतीजा निकाला है कि वस्तुतःइस तर्कके पीछे सासारिक सुखोपभोगकी चाह है। अतएव सासारिक सुखको ध्येय मान कर मनुष्यसेवा या देशसेवा करना सर्वथा हेय है।×"जरा गौर करनेसे मालूम होगा कि इन ख्यालातकी तहमे दर असल खुदगर्जी और भोगविलासकी जबरदस्त चाह धरी हुई है—अंतरके अंतरमे मन चाहता है कि मुझको दूसरे मुल्कके बासियोकी

देशसेवा और मनुष्य सेवा पर एक हिन्दू सम्प्रदायका मत।

---

* जिज्ञासा नम्बर १ हिन्दी (प्रकाशक—बाबू ब्रिजवासीलाल बी० ए० एल०एल० बी० वकील, अम्बाला शहर) पृष्ठ १५–१६ (प्रथम सस्करण १९१६)।

× उक्त पुस्तकका पृ० १६।

तरह धन हुकूमत और आदर मिले ताकि जिस तरहसे और लोग दुनियांके मजे ले रहे हैं मै भी लेने लगू और मेरी औलाद मेरे रिश्ते-दार और मेरे संगी सबके सब दूसरे कौमोकी तरह फूले और फले।" आगे चल कर आपने कहा है कि नेता स्वार्थी होते है और देशसेवामे उनका वास्तविक उद्देश उनका निजी सम्मान और बड़ाई होती है। यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि आपका यह कहना किसी हद तक सत्य हो सकता है; पर पशुप्राय और उच्छृंखल राजशक्तिके कठोर आघातो और अत्याचारोके सहनेवाले सभी त्यागमूर्ति नेताओ पर यह अभियोग नही लगाया जा सकता। और यदि थोड़ी देरके लिए यह भी मान लिया जाय कि इन त्याग-वीर नेताओके कार्य्य और आचरणका यथार्थ लक्ष्य सम्मान और बड़ाईकी लालसा ही है—यथार्थमे स्वार्थसे ही प्रेरित होकर वे दुःख और यातनाये सहन करते है, तौभी क्या उनका यह स्वार्थ मजहबी लोगोके स्वार्थ—स्वर्गकी अभिलाषा, मुक्तिकी कामना—से उच्चतर नही है? कुछ और आगे बढ कर उन्होने लिखा है कि "देश-प्रेमहीके द्वारा अक्सर लड़ाईओका जन्म होता है।" किसी हद तक उनका यह कथन भी सत्य हो सकता है; परन्तु तौभी सरसे पैर तक बन्धनमे जकड़े हुए एक पराधीन देशकी सन्तानोको इस तरहकी शिक्षा देना—अपने दुःख और शोकके निराकरण और प्रतिकार न चाहनेकी सलाह देना—कितनी कायरता, कापुरुपता और अकर्मण्यताकी बात है! अन्तमे ससारके दु.खो और यातनाओको आप एक शब्दमे "तन वो मन सम्बन्धी" कह कर खत्म कर देते है और फर्माते है—"इसी तरह गौर करना चाहिए कि हर इन्सानमे अलावा तन व मनके निज जौहर सुरत यानी आत्माकी शक्ति मौजूद है—ससारमे अनेक प्रकारके दु.ख

चो क्लेश तन वो मन सम्बन्धी फैल रहे है—आत्मबलके सामने तन वो मनकी शक्तियाँ निहायत तुच्छ व कमजोर है—आत्मानंदके मुकाबलेमें तन वो मनके भोगविलासके रस वा आनन्द झूठे व फीके है—आत्मिक दशाकी आजादगी व ज्ञानके सामने देह व मनका सग सख्त कैद वो तिमिरखण्डमे वासकी हैसियत रखता है—आत्माका परमात्मा यानी कुल्ल मालिकसे अगर योग हो जावे तो परम आनद परम ज्ञान और परम गति जो इन्सानकी आत्माको प्राप्त होंगे उनका वार पार नहीं है—फिर इस किस्मका मौका और काबलियत रखता हुआ अगर इन्सान अपने तुच्छ तन व मनहीकी सेवाको काफी समझेगा और सेवा करके दूसरे लोगोको तन व मनहीके छिनभगी और तुच्छ सुख वा आनन्दके सामान पहुँचा कर मगन हो जावे तो सच्चे सेवकोके मुकाबलेमे क्या हैसियत इसकी हो सकती है—अगर किसी वक्त *इसको सुमत आवे और दूसरोंकी फिक्रको तज कर यह तवज्जहके साथ खुद करनी करे* और आत्मशक्तिको जगावे, क्या उस वक्त ऑख खुलने पर खुद इसको *अपनी पिछली परोपकार व उन्नतिकी काररवाई* वैसी ही न दरसेगी जैसा कि हम लोगोको नादान बच्चोकी कमाईके ख्यालसे पल्लेमे रेत व कंकर भर भरके लाना व बड़े हर्ष व फखरके साथ पेश करना और इस मूर्खतामे नाहक अपने बेशकीमती कपड़ो व बदनका मटियामेल करना मालूम होता है"

पन्द्रहवाँ अध्याय।

मज़हव और सदाचार।

६. मज़हव और सदाचारका ऐतिहासिक सम्बन्ध।

मज़हव और सदाचारका सम्बन्ध।

व्याप्तिवादकी रूसे भी यहीं निष्कर्प निकलता है कि मजहव और सदाचारके मध्य कोई कारणकार्यात्मक सम्बन्ध नहीं है तथा मज़हव और सदाचार दो पृथक् वस्तुये है। निष्पक्ष विचारसे और सारे प्रमाणोंको ध्यानपूर्वक देखनेसे यह कहना ही पड़ता है कि मजहव किसी प्रकार सदाचारका कारण नही हो सकता।

मज़हव-शून्य जातियोंमे सदाचार।

ऐसी अनेक असभ्य और जंगली जातियॉ हैं जो मज़हवसे सर्वथा शून्य हैं। यदि उनके मध्य कोई मजहव है भी, तो वहुत ही साधारण तौरका। उनमेसे वहुतोमे एकेश्वरवादका तो क्या देवताओका भी जन्म नही हुआ है। परन्तु इन जातियोके शुद्ध आचरणके सामने सभ्यसे सभ्य मनुष्योको भी शर्मसे गर्दन झुकानी पडती है। यदि मज़हव ही सदाचारका कारण होता, तो ये मजहव-शून्य जातियॉ क्योंकर सच्चरित्र हो सकती और 'मज़हवाच्छन्न' देशोके लोग नीतिमें इतने कच्चे क्योंकर नज़र आते? सीलोनके प्राचीन वेदा लोगोंके वारेमे,— जो अभी तक योरोपियनोंके संसर्गमे नहीं आये है— लिखा है कि उनमे मज़हवका एकदम अभाव है। डाइनोमे विश्वास

करनेको यदि मज़हब कहा जाय तो बात दूसरी है। नहीं तो उनके यहाँ और किसी तरहका मज़हब नहीं पाया जाता। फिर भी अपने सत्यभाषणके लिए वेदा लोग जगत्-प्रसिद्ध है। वे विश्वास तक नहीं कर सकते कि कोई आदमी झूठ क्योंकर बोल सकता है। वे शान्त और निरुपद्रवी स्वभावके होते हैं और अपरिचितोंका यथेष्ट आगत-स्वागत करते है। उनके यहाँ जातिविभेद या श्रेणीविभेद नहीं है। दासप्रथाका भी उनके यहाँ अभाव है। उनके यहाँ लडाई भी नहीं होती। वे पशुओंके साथ भी दयाका व्यवहार करते हैं और उनके निरर्थक सतानेको बुरा समझते हैं। परस्परकी सम्पत्तिका उनके यहाँ इतना सम्मान है कि स्वामीकी आज्ञा लिये बिना वे किसी दूसरेके पेड़से केलेका पत्ता भी नहीं काटते। एस्किमो लोगोंमें जब कभी कोई सोस मारा जाता है तो वह उस छोटे समाजके सारे मनुष्योंमें बराबर बराबर बाँटा जाता है और उनमेंसे कोई आदमी अपने हिस्सेसे अधिक लेना नहीं चाहता।

उनके यहाँ शासनप्रथाका प्रायः अभाव ही है, तौभी वे शांत और धीर ही होते हैं। उनके सम्बन्धमें एक लेखक कहता है कि—“उनका स्वभाव बच्चोंका सा है और बच्चोंहीके सदृश वे मामूली और छोटी छोटी वस्तुओंसे प्रसन्न होते है। उनकी सहनशक्ति सभ्य मनुष्योंसे कम नहीं है और उनमेसे बाज़ लोग तो मृत्युपर्य्यन्त भी अधीर नहीं होते। उनके यहाँ ईश्वरविश्वासका फीकासा भी प्रतिबिम्ब दृष्टि-गोचर नहीं होता। फिर भी वे अपने अन्तिम भोजनको दूसरोको दे-कर खाते हैं और अबलों, बूढ़ों और निस्सहायोंकी रक्षामें निरन्तर तत्पर रहते हैं। उनमें मादक वस्तुओंका प्रचार एकदम नहीं दीख पड़ता। वे सादे और स्वच्छ स्वभावके होते है।” मध्य आस्ट्रेलियामे

बसनेवाली जंगली जातियोका भी यही हाल है । वे देवता, ईश्वर या स्वर्ग नरक इत्यादिमे जरा भी विश्वास नहीं करते, फिर भी नैतिक नियमोका पालन करते है । ब्रिटिश नार्थ अमेरिका तथा अमेरिकाके अन्य भागोमे बसनेवाली कुछ जगली जातियोके बारेमे भी—जिनमेसे कुछ तो सदाके लिए ससारसे अन्तर्धान हो गई है—ऐसी ही बातें लिखी गई है । उनकी ईमानदारी, अतिथिसत्कार और पवित्रताकी बहुत प्रशसा की गई है । हडसन बे कम्पनीने उनके साथ चालीस वर्ष तक तिजारत की; किन्तु इतने दिनोमे कम्पनीकी तुच्छसे तुच्छ वस्तु भी कभी चोरी नही गई और आश्चर्यकी बात यह है कि कभी कभी कम्पनीका एजेट लगातार कई महीनोतक अपने स्टोरको किसी रेड इण्डियन मनुष्यहीकी अध्यक्षतामे छोड़ देता था और कभी कभी तो कम्पनीका गोदाम बिना किसी अध्यक्ष या निरीक्षकके छोड़ दिया जाता था । ये लोग चोरी करनेको, झूठ बोलनेको, आलस्यको, व्यभिचार और आत्मश्लाघाको, लड़ने झगडने और भीरुताको, बुरा और निन्दनीय समझते है और सफाई, स्वच्छता, सत्य, ईमानदारी, बहादुरी, शुद्धाचरण, इत्यादिको उत्तम समझते है । उनके यहाँ कोई ईश्वर या देवता नहीं पाया जाता । वे ऐसे भूतप्रेतोमे भी विश्वास नहीं करते कि जिनकी पूजासे रक्षा और सहायता प्राप्त हो सके ।

सदाचारका जन्म । सदाचार और सामाजिकता ।

इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि मज़हब और सदाचार दो भिन्न वस्तुये है । सदाचार मंजहबसे स्वतत्र है और मज़हब सदाचारका पिता नहीं हो सकता । सदाचारका जन्म समाजके द्वारा हुआ है । यह हमारे संचित अनुभवोका फल है । सदाचार हमारी उन्नतिका कारण और हमारे भाग्यका निर्माता है । सदाचार जीवनका नियम है ।

सदाचारके द्वारा ही मनुष्य मनुष्य हुआ है। वैयक्तिक जीवन तथा सामाजिक जीवनको कायम रखना ही सदाचारका उद्देश है। हमारी जीवित रहनेकी इच्छासे ही सदाचारका जन्म हुआ है। इसी लिए असभ्यसे असभ्य मनुष्योंमें भी—जिनके यहां किसी तरहका कोई मज़हब दृष्टिगोचर नहीं होता—हम एक प्रकारके धर्मशास्त्रको—सामाजिक जीवनके कुछ नियमोंको—विद्यमान पाते हैं।

सदाचार मज़हबके बनाये नहीं बनता। यह स्वयं प्रकृतिकी व्यवस्था है। जिस प्रकार स्वार्थपरता मनुष्यस्वभावका एक अंग है, उसी प्रकार निस्स्वार्थता भी मनुष्य-स्वभाव-संगत है।

जनन-प्रवृत्ति और सदाचार।

सातवें अध्यायमें सदाचारकी उत्पत्तिके विषयमें जो कुछ लिखा गया है उससे विदित होता है कि सदाचारकी नींव कितनी गहरी और मज़बूत है। उस अध्यायमें बतलाया गया है कि प्रकृतिने जातीय जीवनको कायम रखनेके लिए प्रत्येक व्यक्तिको किस प्रकार अपना क्रीत-दास बनाया है—उसने प्रत्येक व्यक्तिके मध्य अपनी संख्याके बढ़ानेकी किस प्रकार अदमनीय इच्छा उत्पन्न कर दी है। और वहाँ यह भी बतलाया गया है कि सदाचारकी जड़ यहीं है।

जनन-प्रवृत्ति ही सदाचारकी जननी है। वस्तुतः एच०जी० वेल्सके शब्दोंमें समयके करघे पर जनन-कार्यके ताने भरनेहीका नाम जीवन है *। इस नज़रसे देखने पर मनुष्यका जीवन अत्यन्त ही सरल और सीधा देख पड़ता है—वह स्वभावतः तीन खण्डोंमें विभक्त पाया जाता है। आरम्भकाल—जिसमें जीवनकी वृद्धि और पुष्टि होती है, माध्यमिक काल—जिसमें मनुष्य इस सर्वोपरि कार्यके सम्पादनके

* See "Mankind in Making, Ch. I

लिए उन्मत्त होता है, उसमे धीरता, वीरता, उत्साह, महत्त्वाकांक्षाका समावेश होता है और वह किसी रमणीके प्रेमपाशमे आवद्ध होता है। अन्तमे, सतान और परिवारका पालन-पोपण ही मानव-जीवनका लक्ष्य हो जाता है। पोते पोतियोकी तोतली और अर्थ-शून्य भाषाही-मे अन्तको मनुष्यका जीवन विलीन हो जाता है। संक्षेपमे यही जीवनका इतिहास है। प्रेम, गृह, और पुत्र पुत्री ये जीवनके हृदय-कोर-से उच्चरित शब्द प्रतीत होते है। अप्रत्यक्ष रीतिसे भी मनुष्यके सारे कार्यों और चेष्टाओका उद्देश यही नज़र आता है। मनुष्य कठिन परि-श्रम करके केवल अपने ही लिए नही, वरन् अपने पुत्र पुत्रियो और परिवारके लिए भी जीविकोपार्जन करता है। मनुष्य केवल दूसरोहींके लिए घर बनाता है, बगीचे लगाता है। उसके सामाजिक और राजनैतिक प्रयासोका उद्देश भी भावी मनुष्योका कल्याण होता है। मनुष्य स्वयं कुछ नही है, वह कालस्रोतके दोनो किनारो—भूत और भविष्य—को मिलानेवाला पुल मात्र है। प्रकृति जातीय जीवन—बड़े जीवन—के सामने वैयक्तिक जीवनके महत्त्वको सदा गौण समझती है।

इस प्रवृत्तिकी दृढताका पता और बातोसे भी लगता है। साधारण मनुष्य जिन पुस्तकोको पढता है उनका विषय प्रेमी और प्रेमिकाका प्रणय ही होता है। उसके नाटकोका विपय भी भिन्न नही होता। उसके सगीतसे भी प्रेमकी ही ध्वनि निकलती है। मनुष्यके पाप और पुण्यके विचारोमे भी इसी भावको प्रधानता प्राप्त है। प्रायः प्रत्येक देश और जातिके व्यावहारिक आचारोका और नीतिबुद्धिका मुख्यतः पुरुष स्त्रीके ससर्गसे ही सम्बन्ध है।

सिर्फ मानव-जीवन ही नही, वरन् समस्त जीवनका मूल मत्र यही है। एक महान् जन्मस्थानके सिवाय—जिसमे सदा ताजे और नूतन

प्राणका संचार और नूतन जीवनका विकास होता रहता है—ससार और कुछ नही है। यदि ससारसे इस एक वस्तु जननकार्यको निकाल दिया जाय, तो ससारमे और क्या शेप रह जायगा ? सारा विश्व निस्सार और निष्प्रभ प्रतीत होने लगेगा। समस्त ससार सौन्दर्य्यहीन श्मशान मालूम होने लगेगा। फूलोंसे सुगन्ध विदा होते दिखेगी, निर्झरोका झरझरनाद प्रस्थान करता हुआ नजर आयगा, पक्षियो-के गानमेसे मधुरता पयान करती हुई दिखेगी, पृथ्वीकी उर्वराशक्ति गायव होती नज़र आयगी। सर्वत्र उजाड, फीकापन, उच्छ्वासहीनता और मृत्यु नज़र आयगी।

जीवन-संग्राम।

विकाससम्बन्धी जीवन-संग्राम तथा प्राकृतिक चुनावके नियमोकी व्याख्या करते समय हम यह दिखला चुके हैं कि मानवजातिके लिए उसकी आदि अवस्थामे, तथा पशुससार या वनस्पति-जगतके लिए वे नियम कितने ही ठीक क्यो न रहे हों; परन्तु मानव-संसारकी उन्नति दूसरे नियमोके द्वारा हुई है। मनुष्य अव जिस अवस्थामे पहुंच चुका है उसमे उसको व्याघ्रकी सी हिसकता और भेड़ियेकीसी रक्त-पिपासाकी आवश्यकता नहीं है। हम युद्ध-मय जीवनको सर्वथा हेय भी प्रमाणित कर चुके है। मानव-जगतको छोड़कर अन्य सभी स्थानोमे हम निरन्तर लूट-खसोट, मार-काट, अवलोके मुखका कौर छीनना और उदरस्थ कर जाना ही देखते हैं; परन्तु मानवोमे हमे यह जीवन-संग्राम इतने नग्न और भीपण स्वरूपमे नहीं दिखलाई देता।

कारण स्पष्ट ही है। हम यह प्रमाणित कर चुके है कि मनुष्यकी उन्नति सदाचार या सामाजिकताके द्वारा हुई है और युद्ध-मय अवस्था सामाजिकताके लिए प्रतिकूल है। उसकी सामाजिकताहीके कारण मनुष्यको अपनेसे अधिक बलवान् शेर और चीतो, भेड़ियो और

जीवन-संग्राम और सामाजिकता ।

बारहसिंघो, हाथी और गेड़ो, भैसो और घोड़ों पर विजय प्राप्त हुई है । अतएव मनुष्यका कल्याण इस सामाजिक प्रवृत्तिको दृढतम करनेमे ही है । यद्यपि सर्वसाधारणके सम्बन्धमे यह बात नहीं कही जा सकती; पर मानवजातिके हितैषियोने इस तत्त्वको अवश्य हृदयंगम कर लिया है । इसी लिए हिंसकता, निर्दयता, बलाभिमान, परपीड़न, छल, स्वार्थपरता इत्यादि भाव जो पशुसंसारके लिए और शायद मानवजातिकी आदि अवस्थाके लिए भी अत्यन्त आवश्यक और उपयोगी गुण थे—मानवसमाजमे दुष्कर्म और पाप—दोष और अपराध—कहे जाते हैं और इनके लिए कारावास और मृत्युकी सजा दी जाती है ।*

अतएव मानव-जीवनकी उन्नतिका नियम केवल घोर जीवन-सग्राम—अन्धाधुन्ध लड़ाई नही है । सामाजिकता या सदाचार ही—विकासका नियम है—जोकि समस्त प्रकृतिमे पाये जानेवाले भीषण युद्ध, सग्राम, या नोच खसोटसे एकदम भिन्न है । बल्कि सामाजिकताका उद्देश इस भीषण युद्धको कम करना है । जीवन-संग्रामका नियम स्वार्थ है, इसमे विजयके लिए आवश्यक वस्तु बलाभिमान और हृदय-हीनता है, परन्तु समाज और नीतिकी आज्ञा आत्मदमन, आत्मसयम और परार्थवाद है । जीवनसंग्रामके नियमकी आज्ञा है—"खबरदार कभी किसीके प्रति दया न दिखलाना, सदा अपना हित साधन करना, प्रतिस्पर्द्धियोको सदा अपने पैरोसे कुचलते रहना, अन्यथा इस

* See Huxley's Lecture on Evolution and Ethics (Romanes Lecture 1893), collected Essays by T. H. Huxley Vol. IX, P. 52.

संसारमे तुम्हारे लिए कोई स्थान नहीं है, " परन्तु नीतिकी आज्ञा दूसरी है। सदाचार हमे दूसरोको पैरोसे कुचलनेकी नहीं, वरन् उनकी सहायता करनेकी, उनके प्रति सहृदयता दिखलानेकी, आज्ञा देता है। सदाचार आज्ञा देता है कि दूसरोके प्रति ऐसा कोई काम न करो जिसे तुम अपने प्रति किया जाना नापसन्द करते हो; परन्तु युद्ध-वादमे इस विवेकशक्तिको कोई स्थान नहीं है। जीवन-सग्रामका उद्देश *योग्यतम**की रक्षा करना, वचाना और शेप अकृतकार्य्य जीवोको निर्दयताके साथ निर्मूल करना है; परन्तु सदाचार सग्राममे असफल हुए जीवोको निर्मूल करनेकी अपेक्षा उनको जीनेके योग्य वनानेकी भरसक चेष्टा करता है।

'योग्यतम'का अर्थ ।

* स्मरण रखना चाहिए कि 'योग्यतम'का अर्थ 'सर्वोत्तम' या 'उच्चतम' नहीं है। जीवन-सग्रामकी दृष्टिसे 'योग्यतम' नैतिक दृष्टिसे भी 'योग्यतम' कदापि नहीं कहे जा सकते। एक उदाहरण लीजिए। अनुमान कीजिए कि हम लोगोंका गोलार्ध फिर ठंडा हो गया है (कुछ वैज्ञानिकोंकी भविष्यद्वाणी भी यही है कि सूर्य्यका ताप दिन पर दिन कम हो रहा है और इस लिए एक दिन पृथ्वीका एकदम ताप-हीन और ठंडा हो जाना अवश्यम्भावी है) और इस कारण सारे उष्ण-रक्त तथा अन्य प्रकारके जीव भी नष्ट हो गये हैं; केवल 'योग्यतम' जीव ही इस पृथ्वीपर वच रहे हैं। अव आप अनुमान कीजिए कि 'योग्यतम' जीव कहाँ तक सर्वोत्तम और उच्चतम कहे जा सकते है। इस अवस्थामे मनुष्यको तो छोड़िए क्या एक पशु भी जीता नजर आयगा? क्या वनस्पति-जगतका भी कोई अश आपको शेप वचता हुआ दृष्टिगोचर होगा? आपको इनके स्थान पर अणुवीक्षण यत्रसे नजर आनेवाले कुछ कीड़ों (या शायद वहुत साधारण तरहके कुछ जोंकों) और समुद्रके तृणों आदिके अतिरिक्त और कुछ न दीख पड़ेगा। क्या इस साधारण तरहके जीवनको—जो निस्सन्देह इस अवस्थाके लिए 'योग्यतम' है—उच्चतम या सर्वोत्तम कह सकते हैं? लड़ाई-भिड़ाईके समर्थनमे निरन्तर जीवन-सग्रामकी दुहाई देनेवालोकी भूल इससे अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है।

मजहबसे सदाचारकी भिन्नताको दिखलानेके लिए ही हमने यह सदाचारकी उत्पत्ति दोबारा लिखी है । इस विषयमे कोई भी शक बाकी नही रह सकता कि सदाचारकी उत्पत्ति दूसरे कारणोसे हुई है और मजहबकी दूसरे कारणोसे । अतएव यदि दोनोके उद्देश और साधनमे भिन्नता-पाई जाती है, तो इसमे आश्चर्य्यकी कोई बात नहीं है । सिद्धान्तोको अच्छी तरह स्पष्ट करके अब हम इस विषयमे कुछ ऐतिहासिक प्रमाण देना चाहते है ।*

मज़हब जितना ही घटता है सदाचार उतना ही बढ़ता है ।

मजहब और सदाचारके मध्य कोई कारणकार्यात्मक सम्बन्ध नही है। यदि इन दोनोके बीच कोई नाता है भी, तो वह दूसरे प्रकारका है । यानी मजहब सदाचारका बड़ा भारी शत्रु है, और मजहबकी जितनी अवनति हुई है उतनी ही सदाचारकी उन्नति हुई है । मजहबका आधिपत्य जितना ही घटता गया है उतना ही सदाचार बढता गया है । यह नहीं कहा जा सकता कि मजहब ही दुराचारका कारण है, परन्तु यह निश्चय है कि मजहब सदाचारका कारण नहीं हो सकता । यहाँ इसके पूरे प्रमाण नहीं दिये जा सकते। अन्वेषणशील पाठकोको इसके लिए गिबन, हैलम, बक्ल (Buckle) इत्यादिके ग्रन्थ पढना चाहिए ।

मज़हबी लोगोका कथन है कि मज़हब ही सदाचारका सरक्षक है । मजहबके बिना सदाचारकी सम्भावना नही और जितनी ही अधिक मजहबकी उन्नति हो उतना ही अच्छा है। क्योकि इसीमे हमारा कल्याण है । यदि यह कथन सत्य है तो इसके अनुसार हम योरोपके इतिहासके भीतर जितना ही

* यहाँ पर यदि पाठकगण एक वार चौथे, छठे और सातवें अध्यायों पर फिरसे नजर डाल जायँ तो बहुत अच्छा हो ।

अधिक प्रवेश करें उतना ही हमें लोगोका सदाचार दृढ देख पड़ना चाहिए। इसमें किसीको सन्देह न होगा कि इस समय योरोपसे मजहबका पैर उखड चुका है। भारतमें भी यह मशहूर है कि योरोप नास्तिकोंसे परिपूर्ण है। विज्ञान और समाजशास्त्र तथा व्याप्तिवाद और इतिहासके ज्ञानकी वृद्धि होनेसे अव वहुत कम शिक्षित लोगोका विश्वास मजहबमे रह गया है। योरोपमे कट्टर क्रिस्तान अव वहुत ही कम मिलते है। यदि कुछ लोगोमे आस्तिकता है भी, तो वह एक नये ढगकी है जिसका शुद्ध क्रिश्चियानिटीसे कोई लगाव ही नही है। अवसे कोई पचास साठ ही वर्ष पूर्व वहॉ मज़हबका अवाध्य साम्राज्य था। यदि इससे कुछ और आगे वढते है तो राजराजेश्वरों पर भी पोपको हुकूमत करते हुए पाते हैं और देखते हैं कि मज़हवी कचहरियो (Ecclesiastical Courts) सर्वत्र विद्यमान हैं। यह क्रूसेड, इन्क्वीजशिन, फिउडालिजिम, शिवलरी इत्यादिका जमाना था। इतिहास साक्षी है कि मज़हबका जैसा वल योरोपमे उस समय था वैसा और कभी नहीं रहा। शायद अन्यत्र भी कहीं नहीं रहा होगा। ऐसी अवस्थामे यदि मजहवी लोगोका उपयुक्त कथन सत्य हो तो हम जितने ही प्राचीन समयको ले, लोगोके आचरण उतने ही शुद्ध और पवित्र होने चाहिए। परन्तु इतिहास इससे विल्कुल उलटी बात कहता है। हम जितने ही प्राचीन युगमे प्रवेश करते है सदाचारको उतना ही कमजोर और मजहबको दृढ पाते है और जितना ही प्राचीन समयसे वर्त्तमान युगकी ओर पग वढाते है उतना ही मजहबको घटता हुआ और सदाचारको वढता हुआ पाते हैं। यदि मजहब ही सदाचारका मूल कारण है, तो मज़हबके रहते भी लोगोके चरित्र ऐसे घृणित क्यो थे, और मजहबके न रहने पर—किसी मजहबमे विश्वास न करने पर भी—लोग सच्चरित्र क्यो होते है ?

अच्छा अब योरोपके नैतिक इतिहासकी सैर कीजिए। देखिए प्रसिद्ध कवि जान्सन (१७०९—१७८४)—जिसके चरित्र या उद्देशमे किसीको कोई शंका नही हो सकती—कहता है कि "परस्त्रीगामी मनुष्य निःसन्देह ईश्वरकी आखोमे दोषी है, परन्तु उसके इस आचरणसे स्त्रीको कोई हानि नहीं पहुँचती। अपने पतिमे इस दोषके रहनेके कारण यदि मेरी कोई लड़की मेरे घर भाग कर चली आवे तो मैं उसे कदापि नही रख सकता। स्त्रियोको इस साधारण बातकी परवा न करनी चाहिए*।"

जब उस समय इतने बडे आदमीकी यह धारण थी तब जनसाधारणके कैसे विचार और आचरण होगे, यह पाठक स्वय अनुमान कर सकते है। इतिहासके जाननेवाले किसी भी मनुष्यसे यह छिपा नही है कि वह असभ्यता, सामाजिक अस्तव्यस्तता, लड़ाई हगामा, अश्लीलता और पशुताका जमाना था। इँग्लैडके इतिहाससे डुयेल×अपेक्षाकृत आधुनिक समयमे ही निकाला गया है। उस समय मरना या मारा

---

*Quoted by Morison in 'Service of Man'

× योरोपका यह कायदा था कि यदि दो मनुष्योमे कुछ चखचख या अनबन हो जाती थी तो उनमेसे एक दूसरेको लड़ाईके लिए निमन्त्रित करता था और नियत समय पर उनका दंगल होता था। जिसकी हार होती थी या जो मारा जाता था वही दोषी माना जाता था। केवल साधारण मनुष्य ही इसमें नही पड़ते थे बल्कि ड्यूक आफ वेलिङ्गटन, पिट, शेरिडन, फॉक्स और कैनिंगके समान लोग भी डुएलमे लड़ा करते थे।

" अठारहवी शताब्दिमें डुयेल भद्र पुरुषोंके मनोविनोदकी सामग्री मानी जाती थी। जिरहमे यदि कोई बैरिस्टर किसी गवाहको तग करता—या किसी मवक्किलका मुकद्दमा हार जाता—तो डुयेलमे उसे इन बातोंका उतर देना पड़ता था।"—(Spencer Social Statics P.55)

जाना दैनिक जीवनकी एक साधारण घटना मानी जाती थी। देखिए लण्डनके बारेमे स्वय जानसन क्या कहता है—"यदि तुम्हे रातके समय घरसे बाहर जानेकी आवश्यकता हो तो अपनी मौतकी तैयारी पहले ही कर लो और यदि रात्रिके समय तुम्हे किसी मित्र या नातेदारके यहां भोजन करना हो तो जानेके पूर्व वसीयतनामा (Will) लिख कर जाओ। नशेबाज लोग कौतुकके लिए भी लोगोकी हत्या किया करते है।" †

प्रायः एक शताब्दि बीती होगी कि लण्डनके एक पुलीस अफसरने उस समयके लण्डनकी नैतिक अवस्थाका वर्णन किया है। लण्डनमें उस समय पचास हजार वेश्याये थी (असख्य रखेलियाँ और कुलटाये इसके सिवाय थीं), जब कि वहाँकी आबादी ६ लाख थी। परन्तु इस समय (१९०८) वहाँ वीस हजार वेश्याये है और जनसंख्या ६० लाख है। जुएके क्लब अमीरोके लिए हर स्थानपर खुले थे और ग़रीब सरे बाजार सड़कपर ही जुआ खेलते थे। शराब आजकलके बड़े शहरोमे सोडा और लेमेनेडके समान हाथगाड़ीमे सड़कोपर बिका करता थी। शराबमे यहां तक कम बुराई समझी जाती थी कि शराबखानोकी खिड़कियोमें यह नोटिस आम तौरसे रहता था—

"काफी नशा एक आनेमें। बेहोश दो आने में।
बैठने वगैरहका सामान मुफ्त।"

---

† Prepare for death if here at night you roam,
And sign your will before you sup from home,
Some fiery fop, with new commission vain,
Who sleeps on brambles till he kills his man.
Some frolick drunkard, reeling from a feast,
Provokes a broil and stales you for a jest.

शराब पीना और शराब पीकर बेहोश होना अमीरोंके दैनिक कर्त्तव्यका एक अङ्ग था। कार्डिनल न्यूमैन कहता है कि "पादरी लोग भी कई अंशोंमे विभक्त थे—एक बोतलवाले, दो बोतलवाले, तीन बोतलवाले इत्यादि। लड़कोंके प्रति बड़ी निर्दयता की जाती थी और हज़ारो ही लड़के मदिरालयोंमे जाया करते थे *।" तब क्या वह नास्तिकता और अज्ञेयतावादका समय था ? नही नही, वह धर्मोन्माद और विश्वासका जमाना था !

आओ, अब हम इङ्गलिश चैनलसे पार हो कर देखे कि फ्रान्सकी क्या दशा थी। चौदहवे लुई (Luis XIV १६३८-१७१५) के समयकी हालत प्रायः सभी जानते है। बादशाहको छोड़ कर देखा जाय तो उस समयके पादरियो तथा गिरजाके प्रधान अधिकारियोकी नैतिक अवस्था भी अत्यन्त हीन थी। नन-गिरजा (Convents) या स्त्रियोंके मठ अपनी जघन्यता और अपवित्रताके लिए प्रसिद्ध थे। एक धर्माधिकारी—जिसका नाम अबी डी चोआयसी (Abbs po cdoise) था—जनाना वस्त्रोंको बहुत पसन्द करता था और प्रायः स्त्री ही बना रहता था। इस वेशके द्वारा उसे स्त्रियोंके फॅसानेमे बड़ी सुगमता होती थी। इस प्रकार अपने कुछ शिकारोंके फॅसानेका वृत्तान्त उसने स्वयं ही लिखा है जिसे उत्सुक पाठक देख सकते है। परन्तु वह अविश्वास और नास्तिकताका समय नही था। केवल धर्मके नामपर ही उस समय करोड़ो तलवारे मियानसे निकल पड़ती थीं। स्कॉटलैण्ड अपनी पशुता और जङ्गलीपनके लिए विख्यात था। और यह कौन स्कॉटलैण्ड था ? वही स्काटलैण्ड जो अपने मजहबी जोशमे स्पेनसे किसी प्रकार कम न था—वही स्कॉटलैण्ड जिसे नौक्सके धर्मोन्मादने श्मशान बना रक्खा था।

* देखो Maccabe ' Secular Education' P. 50—51

चलो अब ज़रा स्पेनकी सैर करें। स्पेन ही उस समय धर्मका केन्द्र था। स्कॉटलैण्डके अतिरिक्त अन्य कोई देश धर्म और विश्वासकी ढकूनामें इसका सामना नहीं कर सकता था। इस देशका धर्मोन्माद जगत्प्रसिद्ध है। वहाँ साधारणसे साधारण बातके लिए एक आदमी दूसरेका खून कर डालता था। एक फ्रेंच स्त्रीने अपने पत्रोंमें उस समयके स्पेनका अच्छा चित्र खींचा है जिसका एक छोटासा अंश आगे उद्धृत किया जाता है—"स्पेननिवासी प्रेमके सम्बन्धमें ऐसे उदार और कल्पनाप्रिय हैं कि यदि किसी मनुष्यको अपनी प्यारीसे ऐसे स्थानमें भेंट हो जाय जहाँ वह उससे गुप्त बात न कर सकता हो, तो वे तुरन्त ही उन्हे अपने घरमे बुला लेंगे। बल्कि ऐसी अवस्थामें उस युगल जोड़ीको किसी भी घरमें प्रवेश कर जाना चाहिए और मकानके स्वामीसे—चाहे उससे जान पहचान हो या नहीं—यह प्रार्थना करनी चाहिए कि उन्हें थोड़ी देरके लिए गुप्त भेंट करनेकी आवश्यकता है। बस, उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली जायगी"।*

अच्छा अब हमलोग उक्त समयको छोड़ कर इतिहासके समुद्रमें ज़रा और गहरी डुबकी लगावें और कुछ इससे भी प्राचीन समय—मध्य युग (Middle Ages) की खबर लें। उस समय वेश्याओंकी भरमार थी। बकहाईट कहता है कि "सन् १४९० ई०में केवल रोममें ही ६८०० रंडियाँ थीं—रखेलियों और कुलटाओंकी तो गणना ही कैसे हो सकती है। जर्मन शहरोंमें अन्य देशके राजाओंका स्वागत करनेके निमित्त वेश्याओंके झुंडके झुंड उपस्थित किये जाते थे +। ××× गरमी सुजाक आदि

*देखो Morison—Service of Man छठा अध्याय।

+ "जब कोलम्बसके साथी अपने साथ गरमीकी बीमारी ले आये, तब योरोपकी नैतिक अवस्थाका पता अपूर्व रूपसे चल गया। आश्चर्यजनक वेगसे

वीमारियॉ पोपसे लेकर साधारण कृपको तकमे—प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक श्रेणीके लोगोमे—कसरतसे फैली हुई थी।×××प्रत्येक नव-विवाहिता-वधू-पर एक या एकसे अधिक दिनोतक जमींदारो और खासकर मजहवके उच्चपदाधिकारियोका अधिकार रहता था।" लेकीके कथनानुसार स्त्रियोके मठ वेश्यालयोके समान थे और उनमे नवप्रसूत वच्चोकी कसरतसे हत्याये की जाती थीं। उस समयके निकौलस निकेल नामक लेखकने लिखा है कि " किसी कुमारीको मठमे भेजना या उसे वेश्या वनाना दोनो कार्य एक समान है।" एक और लेखकने लिखा है कि "स्वतत्रता प्राप्त करनेके लिए ही—एक पुरुपके साथ वद्ध न रहनेके लिए ही—विधवाये अकसर मठोमे प्रवेश करती थीं। पादरी लोग सदाचारके विपयमे इतने श्रेष्ठ होते थे कि वार वार इस कड़े नियमके पास करनेकी आवश्यकता होती थी कि उन्हे अपनी माताओ और वहनोके साथ भी न रहना चाहिए। ××× वे केवल इतना ही न करते थे वल्कि स्त्रियोके अभावमे अन्य जघन्य पाशविक रीतियोसे भी अपनी कामाग्निको शान्त करते किया थे।" पुरुषोके साथ कामाग्नि शान्त करनेकी वीमारी पादरियोमे इस जोरसे फैली थी कि ग्यारहवीं शताव्दिके लेखक पीटर डैमियनको सारी वाते स्पष्ट रीतिसे उदाहरण देकर लिखनी पडी थी। तेईसवॉ लियो नामका पोप अन्य अपराधोके अलावा अगम्यागमन और व्यभिचार भी करता था। मिलनका आर्च विशप इतना व्यभिचारी था कि अपनी भतीजीके साथ भी अपवित्र ससर्ग रखता था। व्रेस्सियाका एक पादरी स्त्रियोको उपदेश देता था कि तुम्हे

यह वीमारी फैली और शीघ्र ही सभी वर्गोंके मनुष्य—पवित्र पिता पोप दशवे लियोसे लेकर सड़कके फकीर तक—इस व्याधिके शिकार हुए।" (Draper —conflict between Religion and Science. Kegan Paul 1910 P. 269)

पादरियोंको केवल अपनी आमदनीहीका नहीं, अपने दाम्पत्य स्नेहका भी दशमांश प्रदान करना चाहिए।

इन लोगोंके गंभीर कार्योंका वर्णन करनेके लिए सभ्य भाषामें शब्द नहीं मिलते। ×× यहाँ तक नौबत पहुँच गई थी कि लोग अपनी पारिवारिक सतीत्व-रक्षाके लिए पादरियोंको रखेलियाँ रखनेके लिए मजबूर करते थे और पादरियोंके जुर्मानेके लिए ज़मींदार और राजालोग इस कार्यके लिए एक टैक्सतक वसूल करते थे। वहाँकी जनता अच्छी तरह समझती थी कि पादरी लोग ब्रह्मचर्य्यका पालन नहीं कर सकते। अतएव वे जब कभी देखते थे कि किसी पादरीने कोई वेश्या या रखेलिन नहीं रख छोड़ी है तो उन्हें अपनी स्त्रियोंके सतीत्वकी चिन्ता हो जाती थी। सन् ११७२ में स्कैन्डेनेवियाकी प्रजाने प्रार्थना की थी कि पादरियोंके अविवाहित रहनेका नियम उठा दिया जाय; परन्तु राजाने इसे अस्वीकार किया और तब इनके विरोधमें प्रजा बिगड़ खड़ी हुई।

उच्च श्रेणीके पादरी बड़ी बड़ी मज़हबी सभाओंको भी (जिनमें अविवाहितोंके नरकमें जानेका हुक्म पास होता था) अपनी रंडियोंको साथमें लेकर सुशोभित करते थे *। कैंटरबरी गिरजाके एक प्रधान पदाधिकारीको सिर्फ एक ही गाँवमें १७ विजात सन्तान थे। पादरी लोग शस्त्र बाँधते थे और शराबखानोंमें तथा इससे भी बुरे स्थानोंमें जाया करते थे। उनकी इन्द्रियपरताका कोई ठिकाना न था। स्पेनके एक प्रधान पादरीकी सत्तर रखेलियाँ थीं। लीजके बिशपके पैंसठ विजात सन्तान थे। लेकी कहते हैं—"इसमें कोई सन्देह नहीं कि पादरियोंके इन आदर्श चरित्रका समाज पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता था। नीति-निपुण पादरी

* देखो Haeckel—Riddle of the Universe p. 292

चौदहवी शताब्दिकी भोली भाली स्त्रियोको समझाते थे कि पतिकी अनुपस्थितिमे पादरियोके साथ प्रेम करनेमे कोई हर्ज नही है और भोली भाली मूर्खा स्त्रियॉ इस निष्पाप प्रेमके सिद्धान्तको हर्षपूर्वक ग्रहण कर लेती थी और तदनुसार ही आचरण करती थी।"

ऐसी ऐसी कथाओ और बातोंसे पन्नेके पन्ने भरे जा सकते है, परन्तु यह कोई आनन्दप्रद काम नही है। विवश होकर, सब प्रकारसे अत्याज्य समझकर ही, यहॉ इन बातोका जिकर करना पडा है। ॲगरेजीकी किताबे इस प्रकारके उदाहरणोसे परिप्लावित हो रही है।

मजहब और सत्यका क्या सम्बन्ध है, यह भी योरोपके इतिहाससे अच्छी तरह स्पष्ट हो जाता है*। क्रिस्तान आदि मजहब धर्मका प्रचार और उसकी उन्नति करनेके लिए असत्य व्यवहारकी भी शिक्षा देते है। एक मजहबका आदमी अन्य मजहबके मनुष्यके साथ सद्व्यवहार करनेके लिए अपनेको बाध्य नहीं समझता। नीसियॉके क्रिस्तान कौन्सिलने सन् ७८७मे यह घोषित किया था कि 'सत्यभाषणकी अपेक्षा मूर्तिपूजा करना अधिक जरूरी है। और यह तो अनेक क्रिस्तान सतोंने कहा है कि ईश्वरके गौरवकी तथा धर्मकी रक्षा करनेके लिए झूठ बोलनेमे कोई हानि नहीं है'। क्रिस्तानोके धार्मिक कानूनके अनुसार मनुष्यको उन प्रतिज्ञाओंका कदापि पालन नहीं करना चाहिए कि जिनसे मजहबको धक्का पहुँचता हो। पोप अर्वन (चतुर्थ)ने चौदहवीं शताब्दीमे यह घोषित किया था कि अविश्वासियोके साथ की गई प्रतिज्ञाओका पालन कदापि नही करना चाहिए। कौन्सटैन्सके धार्मिकपरिषदने भी पन्द्र-

---

* See 'Influence of Religion upon Truthfulness' by F. H. Perrycoste P. 243.

९वीं शताब्दिमे यही मत प्रकट किया था और कैथालिक देशोमे तो अब तक भी इस शिक्षाके अनुसार व्यवहार किया जाता है। बाइबलके अनुसार स्वय ईश्वर भी छल और झूठसे काम लेता है (1 Kings 22-23)। क्रिस्तान मजहब मनुष्योको सच्चा बनानेमे कहॉ तक समर्थ हुआ है, इसका पता अदालतोमे दी गई झूठी गवाहियोके द्वारा भी चलता है। एक जजने लिखा है कि "लण्डन शहरकी कचहरीमे हर हफ्ते कमसे कम सौ झूठी गवाहियॉ अवश्य दी जाती है। बाज दफा तो एक शिलिंग छः पैन्स अर्थात् एक रुपयेसे कुछ ही अधिकके लिए लोग झूठी गवाहियॉ देते हुए पाये गये है।" इस अवसर पर पाठकोको कलकत्ता यूनिवर्सिटीमे दिये गये लार्ड कर्जनके भाषणको याद करना चाहिए। सिर्फ भारतहीने झूठका इजारा नही ले लिया है, सर्वत्र यही दशा है। सिर्फ भारतीय कचहरियोमे ही झूठी गवाहियॉ नहीं दी जातीं है। (Christianity and Endrict P 63)

सक्षेपमे मजहबी योरोपका इतिहास पशुताका इतिहास है, लोगोके दुःख, दारिद्र्य और मूर्खताकी कहानी है, युद्ध और अस्तव्यस्तताकी कथा है। सर्वत्र ही भीषण दारिद्र्य और हृदयहीनता दृष्टिगोचर होती है। हम देखते हैं कि गिरजोमे मरे हुए बच्चे पाये जाते है, अक्सर माताये अपने बच्चोको सड़को पर फेक आती है। कभी कभी वे नदी तालाबोमे भी डाल दिये जाते है। माता–पिता अपने बच्चोको खुले बाजार दूसरोके हाथ बेचा करते है। बहुतसे लोग बच्चोको उनके पिता माताके यहॉसे चुराकर भी बेच डाला करते है। सत्रहवी शताब्दि तक कुछ ऐसे धूर्त होते थे जो बच्चोंको अपहरण करके उनका अगच्छेद कर देते थे या अन्य प्रकारसे उनकी शकल बिगाड देते थे और तब उन्हे भीख मॉगनेके काममे लगा देते थे।

योरोपमे मज़हबका अबाध्य साम्राज्य था और सदाचारकी मात्रा बहुत ही न्यून थी, इसके पश्चात् मज़हबका प्राबल्य कुछ कम हुआ और सदाचारने कुछ बल प्राप्त किया। धीरे धीरे आधुनिक समयमें मज़हब एक तरहसे निष्प्राण ही हो गया है, परन्तु सदाचारकी बेहद उन्नति हुई है जिससे मनुष्य-सेवारूप धर्म (The religion of humanity) ने जन्म ग्रहण किया है और अनेकानेक लोकहितकर सस्थाओंकी स्थापना की गई है। इसके विपरीत भारतमे प्राचीन समयमे कोई मज़हब विद्यमान न था (इसके प्रमाण ज़रा आगे चलकर दिये जायँगे) और हमलोगोंकी नीति चरम सीमा पर पहुँची हुई थी। तत्पश्चात् माध्यमिक समयमें हमलोग मज़हबी हुए और हमारा सदाचार नष्ट हुआ, यहाँ तक कि हम एक प्रकारसे नैतिक हिजडे (moral eunuchs) हो गये। इधर हालमे पाश्चात्योंके सवर्गसे हमारे धार्मिक विचारोमें अनेक प्रकारके विप्लव उपस्थित हुए हैं। हम पूरे अज्ञेयवादी (Agnostics) और निरीश्वरवादी (Atheists) तो निःसन्देह नहीं हुए हैं, परन्तु फिर भी पहले जैसे अन्धविश्वासी नहीं रहे है। तर्कका बल बहुत बढ गया है। अब हम प्रत्येक वस्तुको और प्रत्येक कार्य्यको, तर्क द्वारा प्रतिपादन करना चाहते हैं—शिखा और यज्ञोपवीतकी उपयोगिताको भी वैज्ञानिक रीतिसे सिद्ध करना चाहते है। तरह तरहके विचार जन्म ग्रहण कर रहे हैं, अनेक नूतन समाज और धर्मसम्प्रदाय स्थापित हुए हैं। यह किसी भी निरीक्षकसे छिपा नही कि इस समय सर्वथा अन्धविश्वास रखनेवाले लोग बहुत कम हो गये हैं। अब विचार कीजिए कि इस विप्लवका हमारे नैतिक आचरण पर क्या प्रभाव पड़ा है? क्या आपको इस विषयमें सन्देह है कि हमारी नीति हमारे पूर्वजोंसे—निःसन्देह वैदिक और पौराणिक इत्यादिक प्राचीन पूर्वजोंसे

नही, वरन् हालके मजहबी पूर्वजोकी नीतिसे—उच्चतर नही है ? यदि आपका यही खयाल है तो एकबार आप हमारे समाजसुधार और लोकसेवाके उत्साह पर नजर डाल जाइए। एकबार उन सभाओका अवलोकन कीजिए जिनका उद्देश्य केवल उन अछूत जातियोको उन्नत करनेका है जिनके प्रति इतना अत्याचार किया गया है कि उसका वर्णन असम्भव है, और जिनके सम्बन्धमे यह मुक्तकण्ठसे कहा जाता था कि:—

शूद्र गँवार ढोल पशु नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥

अधिक उदाहरण नही दिये जा सकते। यह बात अनुभवकी है। यदि आप जरा डूब कर विचार करेगे तो हमारा कथन यथार्थ प्रतीत होगा। भूमिका बहुत बढ गई है। अतएव आइए, अब भारतीय इतिहासकी भी सैर कर डाले।

प्राचीन भारतमें कोई मज़हब न था।

प्राचीन भारतमे कोई मजहब न था। उस समय सदाचारधर्मका साम्राज्य था, न कि मजहबका। *मजहबका प्रधान लक्षण है किसी सिद्धान्त विशेषमें विश्वास**। परन्तु प्राचीन भारतमे विश्वास (Faith), हठ (dogmatism) और मजहबका प्राबल्य जरा भी न था। उस समयका सा विचार-स्वातन्त्र्य उन्नत और अज्ञेयवादी यारोपको भी अबतक प्राप्त नही हुआ है। पाठक! चौंकिए नही, जरा विचार कीजिए।

हिन्दू धर्म कोई मज़हब नही है।

क्या आपका हिन्दूधर्म कोई मजहब है ? क्या आप इसकी परिभाषा बतला सकते है ? क्या आप इसके सारे विश्वासोकी सूची तैयार कर सकते हैं ? हिन्दूधर्मके अन्दर सभी मत, सभी मजहब, सभी भाव

* मजहबके अन्य लक्षण गत अध्यायोंमे दिये जा चुके हैं। मजहब और धर्मके अन्तर पर अगले अध्यायमे और भी कुछ विचार किया जायगा।

और सभी विचार सम्मिश्रित है। तब आप किसे हिन्दू कहेगे और किसे अहिन्दू ? षट्दर्शनोमे भी एक दूसरेसे कितनी भिन्नता है ? हम आस्तिक दर्शनोको हिन्दू माने या नास्तिकोको ? मर्य्यादा पुरुषोत्तम रामका अवतार सत्य है या रीति-परम्पराको न माननेवाले श्री कृष्णका ? क्या मत्स्य, कच्छ, वाराह, नरसिह इत्यादि अवतार ही सत्य है और अन्य सब मिथ्या ? निराकारवाद सत्य है या साकारवाद ? हिन्दूधर्मका लक्षण ऐकेश्वरवाद है या बहुदेववाद ? भूत प्रेत शीतला विशूचिकाकी पूजा हिन्दू मतके अनुसार है या गणेश, इन्द्र, वरुण, मरुतकी पूजा ? ज्ञानमार्ग ठीक है या कर्ममार्ग ? क्या हिन्दू धर्म्म केवल भक्तिमार्गके ही अवलम्बनका आदेश देता है ? और प्रारब्धवाद ठीक है या कर्मवाद ? मोरमुकुटधारी वृन्दावन-विहारी, गोपिका-प्राण-वल्लभ, वनमाली घनश्यामका आराधना ठीक है या जटाजूटधारी, सर्प-मुण्डमाला धारण करनेवाले, श्मशाननिवासी, ताण्डवनृत्यकारी, महाकाल शङ्करकी ? सुन्दरी लक्ष्मीकी आराधना करनी चाहिए या कराला कालीकी ? वैष्णव सिद्धान्त, आचार, पूजाविधि, और रीतियो ही यथार्थ हिन्दूधर्म है या शैव और शाक्त पूजाविधि और शाक्त आचार ?

हिन्दू धर्ममें अज्ञेयवाद।

धर्मके सम्बन्धमे हिन्दू सिद्धान्त था—"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति" (सत्य एक है, परतु बुद्धिवाले लोग इसे बहुतसे नामोसे पुकारते है।) हिन्दू किसी मतमे नही वरन् सत्य और ज्ञानमे विश्वास करता था। *ज्ञान प्राप्त करना ही हिन्दू-जीवनका उद्देश था, क्योंकि सारे दुःखोंकी जड अविद्या है।* इसी कारण वेदका अर्थ ज्ञान है। इसी कारण हमारा धर्म सनातनधर्म है, क्योकि सत्य और ज्ञान ही सनातन है। मत या मजहब कभी सनातन नही हो सकता। इसी लिए हिन्दू किसी मत और मजहबकी उपेक्षा नहीं करता है।

इसे किसीसे भी द्वेष नहीं है। और हो भी क्यो ? अनेकमें एकको देखना ही तो हिन्दूका लक्ष्य है। इसी लिए अन्यमतवादियोके समान हिन्दूने न तो अपने धर्मप्रचारके लिए यत्न किया, और न अपने धर्मप्रचारकोको ही कहीं भेजा। और आखिर हिन्दू मानता ही किस मजहबको है कि जिसका वह प्रचार करे ? वह यह नहीं कहता कि मुझे ईश्वरका या ईश्वर तथा विश्वके सारे रहस्योका ज्ञान प्राप्त है। अन्य मजहबवालोके समान वह दावेके साथ यह कदापि नहीं कहता है कि मुझे सब भेद मालूम है, वरन् वह अपनी अनभिज्ञता प्रकाश करता है और कहता है कि 'नेति नेति', अर्थात् यह भेद नहीं जाना जा सकता। उसके धर्मके अन्दर तो सभी मजहब विद्यमान है, तब उसे द्वेष हो तो किस मत और मजहबसे ? इसी लिए प्राचीन भारतमे मजहबी लड़ाइयोका कभी नाम तक भी नहीं सुना गया। प्राचीन हिन्दूके लिए कोई भी मत और कोई भी विचार अग्राह्य नहीं था। उसके यहाँ आस्तिक और नास्तिक—ईश्वरवादी और निरीश्वरवादी—सभी प्रकारके दर्शन मौजूद हैं। प्राचीन हिन्दू सभी प्रकारके विचारोका स्वागत करता था। चार्वाक जैसे नास्तिक भी मुनि कहलाते थे और उन्हे भी पूरा अवसर दिया जाता था कि वे अपने विचारोको प्रकाशित कर सके। बल्कि प्राचीन विद्वान् हिन्दू मजहबके सम्बन्धमे एक प्रकारके अज्ञेयवादी थे। सामवेदके केनोपनिषद्के इस अद्भुत अंश पर विचार कीजिए—

> "यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपं।
> यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मंन्ये विदितम्।
> नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च।
> यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च।

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातम् विजानताम्"

—द्वितीय खण्ड १—३।

भावार्थ—"यदि तू यह सोचता है कि तूने ब्रह्मणको पूरे तौरसे जान लिया, तो निःसन्देह तूने उसके बारेमे कुछ भी ज्ञान प्राप्त नही किया है।" (इसे सुन कर शिष्य बोला—) "मैं नही समझता हूँ कि मैंने ब्रह्मणको पूर्ण रीतिसे जाना है। मैं यह भी नहीं कह सकता कि मै उसे एकदम नही जानता।" (इस पर गुरुने उत्तर दिया—) "यह कहना कि मै ब्रह्मणको नहीं जानता और यह कहना कि मै उसे जानता हूँ, दोनों असत् है। हम लोगोमेसे जो कोई इस सूत्रके गूढ अर्थको समझता है वही ब्रह्मणको जानता है।"

"जो मनुष्य सोचता है कि मैं ब्रह्मणको जानता हूँ वह उसे वास्तवमे नहीं जानता और जो मनुष्य यह सोचता है कि मै उसे नहीं जानता वह ही यथार्थमें ब्रह्मणका ज्ञान रखता है।"

उक्त उपनिषद्का ही एक मंत्र यह है—

"न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो
न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात्।
अन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि
इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्त द्व्याचचक्षिरे" ॥ ३ ॥

—प्रथम खण्ड।

अर्थात् "वहाँ न तो आँख पहुँच सकती है, न वाणी और न मन। हम उसे नहीं जानते। उसकी शिक्षा किस प्रकार दी जा सकती है, हम यह भी नहीं जानते। वह सभी जानी हुई वस्तुओसे भिन्न है और वह अनजान वस्तुओंसे भी परे है। प्राचीन मनुष्योसे हमने इसी प्रकार सुना है।"

अब पाठक, आप ही सोचिए कि क्या हिन्दू धर्ममे हठोक्तिके लिए कोई स्थान शेप है ? हिन्दूके लिए धर्म हठ या विश्वास करनेकी चीज नहीं है । यह अनुभव करनेकी वस्तु है । क्योकि यही उपनिषद कुछ मन्त्रोंके बाद कहता है—"प्रतिबोध विदितं।" (-द्वितीय खण्ड, मत्र १२ ।)

हठोक्ति हिन्दूधर्मसे उतनी ही दूर है जितना पृथ्वीसे सूर्य्य। उपनिपत्कार तो वेदो और धर्मग्रन्थोको भी बहुत नीचा स्थान देते हैं। वे यज्ञो और वेदोक्त क्रियाओके महत्त्वको बहुत गौण अनुमान करते है। यहाँ तक कि उन्हे 'मूर्खता' पर्य्यन्त कहनेमे भी नहीं हिचकते। देखो—मुण्डकोपनिपद—१,१,४; १,१,५; १,२,७; १,२,८ ।

वेदान्तसूत्र शङ्कर-भाष्यमे कहा है—

"जब वाष्कलिने वाहुसे पूछा—हे महाराज, मुझे कृपा कर बतलाइए कि ब्रह्म किसे कहते है ? तब वाहु कुछ भी नहीं बोले। वाष्कलिने फिर भी वही प्रश्न किया, परन्तु वाहु तब भी चुप रहे। जब ऐसा चार पॉच बार हो चुका, तब वाहुने वाष्कलिसे कहा, "अरे मै तेरे प्रश्नोका उत्तर तभीसे दे रहा हूँ, परन्तु तेरी समझमे नहीं आया, मै क्या करूँ ? ब्रह्मस्वरूप किसी प्रकार बतलाया नहीं जा सकता। इसलिए शान्त होना अर्थात् चुप रहना ही सच्चा ब्रह्मलक्षण है। समझा ?" *

प्राचीन हिन्दूधर्मने शका और सन्देहको बलात्कारसे दबा देनेका कभी कोई प्रयत्न नहीं किया। स्वय वेदमे भी जगह जगह अविश्वास और सन्देह स्पष्ट रूपसे दृष्टिगोचर होते है। इन्द्रके सम्बन्धमे एक स्थान

* Quoted in L. Tilaks' Gita Rahasya.

पर लिखा है कि "यदि तुम्हे लूटके धनकी कामना हो तो इन्द्रकी पूजा करो। कुछ लोग कहते है कि इन्द्र है ही नहीं, उसे किसने देखा है ? हम किसकी स्तुति करें ? *" ऋग्वेदमे ही एक स्थान पर लिखा है-" कौन कह सकता है कि सृष्टिकी रचना किसने की है और कौन कह सकता है कि सृष्टि क्या है ? +

निरुक्तमे कौत्सके मतका वर्णन करते समय यास्कमुनि कहते है कि वेदके मन्त्रोका कोई अर्थ नही है। (-अ० १, ख० १५।) पाणिनिके समयमे वेदका आदर निस्सन्देह बहुत घट गया था। उन्होने अविश्वासी और नास्तिवादी मतावलम्बियोका जिकर किया है। (-४, ४, ६०।) लोकायत और बार्हस्पत्य मतोका भी उल्लेख किया है (-४,२,६० और ५,१,१२१।) बुद्धदेवके कहीं पहले बृहस्पति वेदोको अस्वीकार कर चुके थे। बृहस्पतिका शिष्य चार्वाक आत्मा परमात्मा इत्यादि किसी-मे भी विश्वास न करता था। वेद, यज्ञ, और श्राद्धको वह केवल ढोंग और धूर्तता अनुमान करता था। वह इनको बुद्धिमानोंके लिए जीविकोपार्जनका ज़रिया मात्र समझता था[1]। चार्वाकके समीप वेद मूर्खोंकी वाणी और अधम तथा पुरुषार्थविहीन लोगोके धन कमानेका मंत्र है। यज्ञके सम्बन्धमे बृहस्पति कहते हैं कि यदि यज्ञमे वध

---

* ऋग् ८-१००-३। Quoted by Max Muller—See Collected Works of Max Muller Vol IX, Hiblert Lectures on the Origin and Growth of Religion P. 309.

+ Quoted in Bulletin of the Indian Rationalistic Society, June 1920, P. 15

१ अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविकेति बृहस्पतिः॥
—चार्वाकदर्शन—११,२१

किया गया पशु स्वर्गको जाता है, तो यज्ञ करनेवाला अपने पिताको क्यो नही वध कर डालता[2] यदि श्राद्धके द्वारा मृत पुरुषोकी तृप्ति होती है तो पर्यटनकारियो या दूर जानेवाले मुसाफिरोके सफरका सामान देना वृथा है[3]। पिण्डदानसे यदि स्वर्गस्थित लोगोकी तृप्ति हो सकती है, तो महलके ऊपर रहनेवालोको नीचेसे ही क्यो भोजन नही दे दिया जाता[4] ब्राह्मणोने केवल अपने जीवननिर्वाहके लिए तमाम यज्ञो और पूजाओका अविष्कार किया है। इनसे कोई नफा नहीं होता[5]। वेदोके रचयिता धूर्त भाड और निशाचर थे[6]। मास भक्षण करनेका उपदेश निशिचरोने दिया है। कालान्तरमे वौद्ध लोग भी ठीक इसी तरहका तर्क करते थे जिससे यह स्पष्ट होता है कि वे कहाँ तक इन पुराने नास्तिकोके उपकृत थे।*

इन उदाहरणोसे साफ विदित होता है कि अति प्राचीन समयसे ही भारतमे कैसे स्वतत्र विचारक—नास्तिक पर्य्यन्त भी—जन्म ग्रहण करते आ रहे है। परन्तु क्या उस समयमे कभी कोई मजहवी लड़ा-

---

२ पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ॥ २२ ॥

३ मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम् ॥ २३ ॥

४ स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः।
प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते ॥ २४ ॥

५ ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह।
मृतानां प्रेतकार्य्याणि न त्वन्यद्विद्यते क्वचित् ॥ २७ ॥

६ त्रयो वेदस्य कर्त्तारः धूर्तभाण्डनिशाचराः।

* See Max Muller—Lectures on the Origin & Growth of Religion P. 142–46

ईका नाम सुना गया है ? क्या उस समयमे अविश्वासियोके जलाये जानेका एक भी उदाहरण आपको भारतीय इतिहासमे मिलता है? इसका कारण क्या है ? यही कि प्राचीन हिन्दू किसी भी मत या मजहबमे नहीं वरन् धर्ममे विश्वास करता था।

प्राचीन हिन्दू सत्यको सभी मज़हबोसे बड़ा मानता था। भीष्म पितामह युधिष्ठिरको शिक्षा देते है—"संदिग्ध ज्ञानसे किसी ज्ञानका न रखना ही अच्छा है। (केवल सत्य ज्ञान उपार्जन करो।) ऐसे अधूरे और सन्देह युक्त ज्ञानको (अपने हृदयसे पूर्णतः) उखाड़ फेको। (—महाभारत शा०, अध्याय १४२, श्लोक २३ *)

हिन्दूधर्मको सत्य और ज्ञानसे शत्रुता नही है।

बहुत प्राचीन समयमे उशनाने दैत्योको सत्य ज्ञानकी एक कुजी दी थी जिसके द्वारा सारा भ्रम पूरे तौरसे हट जाता है। (उन्होने कहा था कि) धर्मग्रन्थोको धर्मग्रन्थ कभी न समझना चाहिए, यदि वे बुद्धि और तर्ककी ऑचमे न खडे हो सके। (—महाभारत, शा० प०, १४२–२२×) कुछ लोग कहते है कि धर्म श्रुतिकी आज्ञा है (अर्थात् श्रुतिसे धर्मकी उत्पत्ति हुई है); परन्तु कुछ लोग इससे सहमत नही होते। मै इन (पिछले) लोगोको दोपी नहीं कह सकता, क्योंकि सभी बाते श्रुतिमे वर्णन नहीं की गई है। (—महा० शा० प० १०९—१३+) सत्य ही ब्रह्म है, सत्य ही तपस्या

---

* ज्ञानमप्यपादिश्यं हि यथा नास्ति तथैव तत्।
तं तथा छिन्नमूलेन सन्नोदयितुमर्हसि॥ १४२, २३॥

× अनयाहतमेवेदमिति शास्त्रमपार्थकम्।
दैतेयानुशना प्राह संशयच्छेदनं पुरा॥ १४२, २२॥

+ श्रुतिधर्म इति ह्येके नेत्याहुरपरे जनाः।
न चैतत्प्रत्यसूयामो न हि सर्वं विधीयते॥ १०९, १३॥

है, सत्यने ही सृष्टिकी रचना की है। सत्य ही समूचे विश्वको धारण किये हुए है और सत्यहीके द्वारा मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है। असत्य अन्धकारका दूसरा स्वरूप है और अन्धकार मनुष्यको नीचेकी ओर गिराता है। जो लोग अन्धकाराच्छन्न है वे स्वर्गकी प्रखर ज्योतिको नही देख सकते। कहा गया है कि स्वर्ग ज्योति (का दूसरा नाम) हैं और नरक अन्धकार (का दूसरा नाम) है। (अतएव) ससारी जीव (इसी ससारमे) स्वर्ग और नरक दोनो प्राप्त कर सकते हैं। इस संसारमे भी सत्य और असत्यका यथोचित परिणाम (मनुष्यको) प्राप्त होता है जैसे कि (सत्यसे) धर्म और (असत्यसे) अधर्म, (सत्यसे) ज्योति और (असत्यसे) अन्धकार, (सत्यसे) सुख और (असत्यसे)दुख, सत्यसे धर्म (प्राप्त होता है)और धर्मसे ज्योति और ज्योतिसे आनन्द। इसी प्रकार असत्यसे अधर्म, अधर्मसे अन्धकार और अन्धकारसे शोक और दुःख।(-महाभारत शा०प०१९०-१-५*)तुलाधार जाजलीसे कहते है कि "हे जाजलि, जो आदमी श्रुतियोमे विश्वास करता है और श्रुति-प्रदर्शित पथ पर चलता है वह निसन्देह महान् पुरुष

---

*सत्यं ब्रह्म तपः सत्यं सत्यं विसृजते प्रजा।
सत्येन धार्यते लोक· स्वर्गं सत्येन गच्छति॥ १॥
अनृतं तमसो रूपं तमसा नीयते ह्यधः।
तमोग्रस्ता न पश्यन्ति प्रकाशं तमसावृता॥ २॥
स्वर्गः प्रकाश इत्याहुर्नरकं तम एव च।
सत्यानृतं तदुभयं प्राप्यते जगतीचरैः॥ ३॥
तत्राप्येवं विधा लोके वृत्तिः सत्यानृते भवेत्।
धर्माधर्मौ प्रकाशश्च तमो दुःखं सुखं तथा॥ ४॥
तत्र यत्सत्यं स धर्मो यो धर्मः स प्रकाशो यः प्रकाशस्तत्सुखमिति।
तत्र यदनृतं सोऽधर्मो योऽधर्मस्तत्तमो यत्तमस्तद्दुःखमिति॥

है; (परन्तु) जो आदमी स्वपथ पर (स्व-बुद्धिके अनुसार) चलता है वह श्रेष्टतर है" । (—शा० प० २६४—१९ ।*) भीष्म कहते है—" हे युधिष्टिर, मै तुम्हे केवल वेदसे ही कर्तव्यकी शिक्षा नही देता हूँ वरन् मै जो कह रहा हूँ वह अनुभव और ज्ञानका फल है। यह विद्वानोके द्वारा सचित मधु है। ...राजधर्म केवल सदाचारके एक अगकी ओर देखने से निश्चित नही किया जा सकता। (—शा० प०१४२—३,७ –) इसलिए हे कौन्तेय! धर्म और अधर्म (कर्तव्य और अकर्तव्य) के पता लगानेमे स्वच्छ-हृदय और बुद्धिमान आदमीको अपने ज्ञान और विवेकका आश्रय ग्रहण करना चाहिए। (—शा० प० १४९-१०२×)

अग्निपुराणमे कहा है कि यदि न्यायकार्यमे तर्कशास्त्र और स्मृतिमे विरोध पडता हो तो तर्कको ही अधिक बलवान् समझना चाहिए। (—२५३,४९।)

योगवाशिष्टमे लिखा है कि "न्याय-युक्त पदार्थके अगीकार करनेवाले पुरुषको युक्ति या न्याय-युक्त सामान्य-मनुष्य-रचित शास्त्र भी ग्रहण करना चाहिए और युक्ति या न्यायविरुद्ध वेदोक्ति भी त्यागनी चाहिए। क्योकि मनुष्यको मुख्यतः न्याय पर ही चलना चाहिए। युक्ति-युक्त वचन

---

* श्रद्धावान् श्रद्दधानश्च धर्मश्चैव हि जाजले ।
स्ववर्त्मनि स्थितश्चैव गरीयानेव जाजले । २६४,१९ ॥

– नैतच्छ्रुत्वागमादेव तव धर्मानुशासनम् ।
प्रज्ञासमवहारोऽयं कविभि संभृत मधु ॥ ३ ॥
....
नैकशाखेन धर्मेण राज्ञो धर्मो विधीयते ॥ ७ ॥

× तस्मात्कौन्तेय विदुपा धर्माधर्मविनिश्चये ।
बुद्धिमास्थाय लोकेऽस्मिन् वर्तितव्यं कृतात्मना ॥ १०२ ॥

बालकका भी ग्रहण करना उचित है; और युक्ति-विरुद्ध वचन ब्रह्माका भी तृणके समान त्यागने योग्य है । हमारे पिताका खुदाया हुआ कूप है, ऐसा समझकर गंगाजलको त्याग जो उस कूपके खारी जलको पीता है उस मूर्ख आदमीको कौन शिक्षा दे सकता है ? " *

यहाँ विचारस्वातंत्र्यकी सीमा कहाँ तक पहुँची हुई थी यह उक्त ग्रन्थके ही नीच लिखे अवतरणसे विदित होता है—

अन्यस्त्वां चेतयति चेत्तं चेतयाति कोऽपरः ।
क इमं चेत्तयेत्तस्मादनवस्था न वास्तवी ॥

—मुमुक्षुव्यवहार प्रकरण, सर्ग, २९ ।

अर्थात् यदि तुम्हारा प्रकाशक कोई दूसरा चेतन है तो फिर उसका प्रकाशक कौन है और उसका प्रकाशक कोई तीसरा माना जाय तो उसका प्रकाशक कौन होगा ? इस प्रकार अनवस्था चली जायगी जिससे किसी पदार्थकी सिद्धि नहीं होगी । हिन्दूके लिए ईश्वरमे विश्वास भी जरूरी चीज नहीं है । हम समस्त वेदान्त दर्शनको निरीश्वरवादी (ईश्वरवाद शव्दका अर्थ यहॉ पर वही किया गया है जिस अर्थमे वह साधारणतः व्यवहृत होता है) कह सकते है । संसार या सृष्टिके बाहर निवास करनेवाले तथा कुम्हार या मूर्तिकारके सदृश शरीरोके गढ़नेवाले ईश्वरमे वेदान्त विश्वास नहीं करता ।

---

* अपि पौरुषमादेयं शास्त्रं चेद्युक्तिवोधकम् ।
अन्यत्त्वार्षमपि त्याज्यं भाव्यं न्याय्यैकसेविना ॥ २ ॥
युक्तियुक्तिमुपादेयं वचनं बालकादपि ।
अन्यत्तृणमिव त्याज्यमप्युक्तं पद्मजन्मना ॥ ३ ॥
योऽस्मत्तातस्य कूपोऽयमिति कौपं पिवत्यपः ।
त्यक्त्वा गांगं पुरस्थं तं कोऽनुशास्त्यतिरागिणम् ॥ ४ ॥
—यो० वा०, मुमुक्षव्यवहार, सर्ग १८ ।

हिन्दू अच्छीतरह समझता था कि सदाचार एक सीधी वस्तु नहीं है और केवल धर्मग्रन्थोंसे ही कर्तव्याकर्तव्य निश्चित नही किया जा सकता। बुद्धिके द्वारा ही कर्तव्याकर्तव्यका फैसला हो सकता है। "बुद्धिके द्वारा और अच्छे लोगोंके आचरणसे ही कर्तव्य स्थिर किया जा सकता है। हे युधिष्ठिर, तुम हमारी बातो पर व्यवहार करो। बाज दफा धर्म अधर्मके समान और अधर्म धर्मके समान देख पड़ता है। इस तत्त्वको न जाननेके कारण अवसर आ पड़ने पर मनुष्य घबडा जाता है। जहाँ धर्म और अधर्म पूरे तौरसे निश्चित नहीं किया जा सकता वहाँ हे भारत ! मनुष्यको चाहिए कि वह ऐसे अवसरोंको पहलेसे जान ले।" *

(—महाभारत, शा० प० १४२—५,८)

वह पूरे तौरसे जानता था कि देश और कालके अनुसार धर्म भिन्न भिन्न हुआ करता है।

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परेऽपरे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः॥

अर्थात्—कृतयुगमें मनुष्यका एक धर्म है, त्रेता और द्वापरमें कुछ और ही है और कलियुगमें तो मनुष्यके धर्ममे एकदम रूपान्तर है। युगोंके परिवर्तनके साथ धर्ममे भी परिवर्तन उपस्थित होता है।

अतएव हिन्दूधर्म कोई मत विशेष नहीं है। हिन्दूधर्म यह कभी नहीं कहता कि तुम्हे अमुक बातोमे विश्वास करना ही पड़ेगा—अमुक

---

*बुद्धिसंजननो धर्म आचारश्च सतां सदा।
ज्ञेयो भवति कौरव्यसदतद्विद्धिमेव च॥ ५॥
अद्वैधज्ञः पथि द्वैधे संशयं प्राप्तुमर्हति।
बुद्धिद्वैधं वेदितव्यं पुरस्तादेव भारत॥ ८॥

विचारोको मानना ही पड़ेगा—अमुक पथ पर चलना ही पड़ेगा। यहाँ स्वतंत्रताका साम्राज्य है; तुम्हारी रुचि जिस प्रकारकी हो उसी तरह विचार करो। हिन्दूधर्म किसी मत या मजहबका नही बल्कि एक प्रकारके जीवन-पालन (Culture)का नाम है।

पाठक कहेगे कि हिन्दूधर्ममे भी तो देव देवियॉ विद्यमान हैं।

हिन्दुओंके देवता और देवाराधना।

प्राचीन हिन्दूधर्ममे भी तो पूजाकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म विधियॉ है। यह सत्य है। प्राचीन अदार्शनिक हिन्दू नि:सन्देह बहुतसे देव देवियोको मानता था और उनकी पूजा करता था। पर उसकी पूजा अन्य मजहबवालोकी पूजासे भिन्न होती थी। वह भयसे पूजा नहीं करता था, वरन् प्रीतिसे, प्रेमसे। पूजन उसके स्वभावका एक अंग था और विना पूजनके वह किसी प्रकार रह नहीं सकता था। उसकी पूजा कविता थी। उसका सौन्दर्य्यप्रेम उसे विना किसी प्रकारके अर्चनके चैन नहीं लेने देता था। उसकी प्रीति, कविता और सहृदयताका समुद्र उमड़ कर जब अपनी सीमामे नही ॲटता था तब वह फूट कर नाना प्रकारकी पूजाविधिरूपी नहरो द्वारा बह निकलता था। अहा, और पूजा भी कैसी सरल, कितनी मृदुल; कितनी सुन्दर और हृदय-स्पर्शी होती थी! हिन्दूका देवता या ईश्वर मनुष्योसे परे, ससारसे बाहर, मनुष्योसे एकदम भिन्न नहीं होता था, बल्कि वह सर्वथा मानवीय होता था। हिन्दूकी पूजाका उद्देश्य किसी क्रुद्ध देवताके प्रसन्न करनेका नही होता था, वरन् वह सर्वतः उद्देश्यविहीन होती थी। पूजन प्राचीन हिन्दूके स्वभावका एक अग था। *उसके देवता और देवियॉ प्रायः किसी न किसी प्रत्यय, किसी न किसी आदर्श, किसी न किसी प्राकृतिक* [illegible] *व्यक्तीकरण* (Personification) *होतीं थीं।* वह

प्रतिमाका नहीं बल्कि आदर्शका पूजक था । (उसके आधुनिक देवताओ और ईश्वरके नाम यद्यपि पुराने ही है, परन्तु वे बहुत ही भिन्न है ।) व्यक्तीकरणकी यह शक्ति सभी प्राचीन हिन्दुओमे बड़ी दृढताके साथ विद्यमान थी। वे अपने देवताओको अपनेसे विलग नहीं समझते थे । इस अपूर्व शक्तिके द्वारा वे उन्हे अपने सामने ही खडा अनुभव करते थे। अहा ! और वे किस प्रकार उन्हे अर्घ्य देते, पुष्पाजली प्रदान करते और उनकी आरती उतारते थे ! उनके देवताओके निवासस्थान प्रकृतिके सुन्दर सुन्दर स्थान होते थे, उनके मन्दिर पहाडोके शिखरो पर होते थे, उनके महादेव हिमालय पर निवास करते थे, गङ्गा उन्हे प्राणोसे भी प्यारी लगती थी। जगल ही उनकी तपस्याका स्थान होता था । एक शब्दमे उनकी पूजा अवाक्यविस्मय (his worship was speechless wonder) होती थी। प्राचीन भारतके ईश्वर तथा देवताओ और अन्य देशके ईश्वर तथा देवताओमे कोई सम्बन्ध नहीं है । वे एकदम भिन्न है । *भारतवर्षमें अन्य मज़हबोंके ऐसे एकेश्वरवादका कभी साम्राज्य नहीं हुआ था ।*

साराश यह है कि प्राचीन हिन्दू किसी मत या मजहबमें नहीं वरन् धर्ममे विश्वास करता था और वह हिन्दूधर्म क्षुद्र और सीमाबद्ध नहीं वरन् विराट् और अनन्त है। वह अक्षरशः सनातन है।

सोलहवाँ अध्याय ।

महज़ब और सदाचार ।

७-मज़हब और धर्म ।

हिन्दूधर्म किसी विश्वास विशेषका नाम नही है, बल्कि मन और हृदयको विस्तृत करनेवाली एक आचरणात्मक वस्तु है। भारतमे सत्कर्म करनेको ही धर्म कहा जाता था। कर्त्तव्यका पर्याय शब्द धर्म है। यहॉका बौद्धमत भी धर्मही-के नामसे पुकारा जाता था।

सदाचारका दूसरा नाम धर्म है।

"आचार ही धर्मका लक्षण है और आचार ही सन्तो या अच्छे लोगो-का लक्षण है। सारे आगमो या शास्त्रोमे आचार ही श्रेष्ठ कहा गया है।"—

आचारलक्षणो धर्मः संतस्त्वाचारलक्षणाः ।
आगमानां हि सर्वेषामाचारः श्रेष्ठ उच्यते ॥

—महाभारत, अनु० प० १०४-६-७ ।

"आचारसे धर्मकी उत्पत्ति होती है और धर्मसे आयुकी वृद्धि होती है। आचारसे जीवन प्राप्त होता है और आचारसे श्रीकी प्राप्ति होती है। इस लोक तथा परलोकमे आचारके द्वारा ही मनुष्य कीर्ति प्राप्त करता है।"

आचारप्रभवो धर्मो धर्मादायुर्विवर्द्धते ॥
आचाराल्लभते ह्यायुराचाराल्लभते श्रियम् ।
आचारात्कीर्त्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च ॥

—महाभारत अनु० प० १०४-१५६-५७

सत्यपालनहीका नाम धर्म था। "सत्यान्नास्ति परो धर्मः।" सत्यसे वढ कर और कोई धर्म नही था। धर्मका अर्थ था सदाचारसे प्रेम करना। प्रतिष्ठा तथा आदर्शको इसी जीवनमे प्राप्त करना—इसी जीवनको आदर्श बनाना, मनुष्यके मन और हृदयको फैलाना ही धर्मका प्रधान कर्त्तव्य था। हिन्दू धर्मका उद्देश्य था *अनेकमें एकको देखना।* भारतीय धर्मके द्वारा मनुष्य हर जगह अपनी ही ज्योतिको चमकता हुआ पाता था। उसकी सारी पूजाओ, सारे मार्गों और सारी व्यवस्थाओका उद्देश्य मनुष्यके मन और हृदयको वढना ही था। कर्म, ज्ञान और भक्तिमें कोई अन्तर न था।

हिन्दूधर्मने विचारोकी समानता पर कभी ज़ोर नही दिया। इसलिए हिन्दूमत कोई मजहब नही वल्कि धर्म है और धर्म और मज़हबमे बहुत अन्तर है। *मज़हबका अर्थ है किसी विशेष सिद्धान्तमें विश्वास; परन्तु धर्म उस शक्ति-का नाम है कि जिसके द्वारा संसारकी सभी वस्तुयें स्थिर है।* यह वह अनुल्लंघनीय शक्ति है जिसके द्वारा पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है, जिसके द्वारा सूर्य्य चमकता है, जिसके द्वारा विश्वका समस्त कार्य्य पूर्ण होता है, जिसके द्वारा अणुओ परमा-णुओसे लेकर ग्रह नक्षत्र पर्य्यन्त और कीट पतङ्गसे लेकर मनुष्य तक अपनी कार्य्यवाहीमे लगे रहते है। हमे देखनेमे कोई वस्तु एक प्रकारकी क्यो मालूम होती है—किसी वस्तुके वर्तमान रूप रगका क्या कारण है—असुक वस्तु असुक वस्तु क्यो है और दूसरी क्यो न हुई, इसका कारण धर्म ही है। "स्वलक्षणधारणात् धर्मः।" धर्म ही विश्वको धारण किये हुए है। धर्म शब्द 'धृ' (धारण करना) धातुसे बना है।

मज़हब और धर्ममें अन्तर।

प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ।
यः स्यात्प्रभवसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥
धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः ।
यः स्याद्धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः
अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ।
यः स्यादहिंसया युक्तः स धर्म इति निश्चयः ॥

—महाभारत, शा० प० १०९-१२ ।

अर्थात् *जीवोकी रक्षाहीके लिए* धर्मकी घोपणा की गई थी । धर्म वही है कि जिसके द्वारा जीवोका हित हो । यह निश्चित वात है । धर्म ही समस्त वस्तुओको स्थिर रक्खे हुए है और धारण किये हुए है । धर्मसे ही लोग वॅधे हुए हैं । यह निश्चित है कि जिस वस्तुके द्वारा सबका धारण होता है वही धर्म है । धर्मकी घोपणा इस लिए की गई थी कि जिसमे *जीव एक दूसरेको दुःख न पहुँचा सकें* । अतएव धर्म वही है कि जिसके द्वारा जीव एक दूसरेको दुःख न पहुँचा सके । धर्मके ही द्वारा समाज बँधा हुआ है । एक क्षणके लिए भी यदि धर्मका साम्राज्य उठ जाय तो सृष्टि पर महाप्रलय हो जाय । *यदि संक्षेपमें कहा जाय तो मजहबका अर्थ है विश्वास, और धर्मका अर्थ है—नियम, आईन, सिलसिला । वस्तुके जीवनके नियमको धर्म कहते है ।* धर्मका ॲगरेजी अनुवाद "Law (with Capital 'L') "The Law of Being" हो सकता है । "तत्त्वोका कोई मजहब नहीं है । हम मजहब शब्दका प्रयोग अग्नि, जल, वायु और आकाशके साथ कदापि नही कर सकते । अग्निका, आकाशका, जलका, वायुका कोई मजहब नहीं है, परन्तु धर्म अवश्य है । हम अपनी हिन्दी भाषामे भी इसी अर्थमे धर्म शब्दका प्रयोग किया करते है । यथा—अग्निका धर्म

जीवनके नियमको 'धर्म' कहते हैं ।

उष्णता है, पानीका धर्म ठण्डापन है, आकाशका धर्म ध्वनि है, इत्यादि। किसी वस्तुके जीवनके नियमका नाम धर्म है।" *जड़ चेतन सभी अपने अपने नियमके अधीन है, इसलिए धर्म शब्द सभीके लिए उपयुक्त है। *इसी कारण हिन्दूधर्मने अन्य मतके लोगोंको अपने धर्ममें लानेकी चेष्टा नही की। क्योंकि वह जानता था कि हर आदमीका धर्म भिन्न होना चाहिए। हर आदमीके स्वभाव और शारीरिक मानसिक नियम एक प्रकारके नहीं होते*, इसलिए हर मनुष्य अपने धर्मको सहजमे ही परित्याग नही कर सकता और निःसन्देह ऐसा करना अच्छा भी नहीं है। *हिन्दू स्वभाग्य-निर्णय और विचार-स्वातंत्र्य (* Self-determination *)में विश्वास करता था, मज़हब, हठोक्ति आदिमें नहीं।* इसी कारण श्रीकृष्णने गीतामे स्वधर्मका माहात्म्य वर्णन किया है और परधर्मसे स्वधर्मको उत्तम बतलाकर स्वधर्मपरित्यागका निषेध किया है ×। इसी कारण हिन्दू-धर्म इतना महान् है कि उसकी परिभाषा तक नही दी जा सकती, इसी कारण हिन्दूधर्म इतना विस्तृत है कि संसारके सभी मत और मजहब इसमे समा जा सकते है और इसी कारण हिन्दूके यहाँ एक ईश्वर नहीं बल्कि ३३ करोड देवता है।

---

* See B C Pal Soul of India

× श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषं॥
—भगवद्गीता १८--४७।

अर्थात्—अपने धर्ममे चाहे कोई दोष भी दिखाई दे तो भी वह दूसरेके अच्छे प्रकार किये हुए धर्मसे अच्छा है। अपने स्वभाव-नियत कर्मको करनेसे मनुष्य पापका भागी नही होता।

राजनैतिक क्षेत्रमें धर्म-सिद्धान्त।

राजनीतिके क्षेत्रमे पाश्चात्य लोग जिस स्वतंत्रता—Self-determination—स्वभाग्य-निर्णय—की घोषणा कर रहे है, हिन्दू उससे अनेक समयसे परिचित है। इसी लिए हिन्दुओने अपने धार्मिक जीवनमे ही नही, वरन्, राजनैतिक जीवनमे भी कभी किसी दूसरी जातिकी स्वतंत्रताके अपहरण करनेकी चेष्टा नही की है। इसी लिए उन्होने दूसरोको बलात्कार हिन्दू नही बनाया है—सबको अपनी रुचि और प्रकृत झुकाव—अपने धर्म—के अनुसार पूजा और विश्वास करनेकी स्वतंत्रता दी है और इसी लिए उन्होने देश विदेश विजय नही किये हैं। इसी लिए वह स्वतत्रता—जिसके प्राप्त करनेमे पाश्चात्य जगतको शताब्दियाँ लग गई है, जिसके लिए उसे अनेको विप्लवोका आश्रय लेना पड़ा है, और जिसके लिए उसने खूनकी नदियाँ बहाई हैं—भारतको सहजमे ही प्राप्त हुई थी। पाश्चात्य जगतसे सदियो पहलेसे भारत प्रजातंत्र-वादी है।*

बहुत समय पहले ही भारतने जीवनके नियमोको अच्छी तरह समझ लिया था। उसने जान लिया था कि स्वतंत्रता ही जीवन है। *विना स्वतंत्रताके जीवन जीवन नहीं रहता। क्योंकि जीवनका लक्षण है वृद्धि, प्रसार, विस्तार, बढ़ना या फैलना।* जीवनका लक्षण है अवाध अविश्रान्त फैलाव, और स्वतंत्रताके द्वारा ही जीवन पूर्णरूपसे उन्नत और विकसित हो सकता है।

---

* लेखकको यहाँ पर इस वाक्यके उल्लेख मात्रसे ही सतुष्ट होना पड़ता है। प्रमाणोंके लिए स्थान नही है। देशके अनेक विद्वान् सपूतोने और ज्ञानके उपासक कुछ निष्पक्ष पाश्चात्य पण्डितोंने इसके जो प्रमाण दिये हैं, उनकी अवहेलना करना कठिन ही नही वरन् असम्भव है। थोड़ा भी अध्ययन करनेसे इस विषयके असख्य प्रमाण प्राप्त हो सकते हैं।

मजहब एकता या सादृश्य पर और धर्म स्वतंत्रता, भिन्नता, असादृश्य पर जोर देता है। मजहब सबको एक साँचेमें ढालना चाहता है परन्तु धर्मका सिद्धान्त है—"एक सत्विप्रा बहुधा वदन्ति।" भारत जानता था कि ससारकी उन्नति और पूर्ण विकासके लिए "सभी विभिन्नताओं और विलक्षणताओंकी आवश्यकता है। उनमेंसे किसीके भी नष्ट हो जानेसे मानव जाति दरिद्र हो जायगी। नानात्व—असादृश्यमे ही जीवनका सौन्दर्य्य है। स्वरोंकी भिन्नता, परिवर्तन और उतार चढ़ावमें ही सगीतका आनन्द है। कई रगोंके समागम, कई रंगोंकी मिलावट और उन रंगोंके कहीं पर गहरे और कहीं पर फीके होनेमे ही चित्रोंकी शोभा है। इसी प्रकार जीवनके नानात्व और भिन्नत्वहीमें जीवनका रहस्य और स्वाद केन्द्रीभूत है। अटूट समानता—अविच्छिन्न सादृश्य—कष्टप्रद है *।" इसीलिए भारतने कभी बलप्रदर्शन नहीं किया है। उसने सभीको बढने और विकसित होनेका अवसर दिया है।

धर्मका सिद्धान्त ही भारतका प्राण है—यही उसकी विशेषता है और इसीमें उसका व्यक्तित्व है। जिस दिन भारतके जातीय जीवनका इस सिद्धान्तसे पार्थक्य हुआ, उसी दिनसे भारतकी अवनति भी शुरू हुई।

पाश्चात्य जगतकी जातीयताकी समालोचना करते हुए और वहाँ स्वतंत्रता—प्रजातन्त्रात्मक शासन—के असफल होनेके कारणों पर

---

* जनवरी १९२२ की 'प्रभा'में प्रकाशित लेखकके 'स्वराज्य समस्या पर स्वतंत्र विचार' शीर्षक लेखसे उद्धृत। उक्त लेखमें धर्मके ऊपर राजनैतिक दृष्टिसे विचार किया गया है। यदि पाठक उक्त लेखको पढनेका कष्ट उठावेंगे, तो बहुत लाभ होगा। यहाँ उसके अधिक अवतरण नहीं दिये जा सकते।

विचार करते हुए लेखकने अन्यत्र * लिखा है कि "पाश्चात्योने जातीयताके यथार्थ मर्मको—जो धर्मका ही दूसरा स्वरूप है—नहीं समझा है। योरोप केवल राजनैतिक जीवनमे ही बड़े बड़े स्वेच्छाचारी बादशाहो द्वारा दासताकी जजीरोसे जकड़ा रहा हो, ऐसा नही है, वरन् अपने आध्यात्मिक जीवनमे भी वह परतंत्र रहा है। पोपो, गिरजोके साम्प्रदायिक रीति रस्मो और मज़हबकी योरोपमे वह शक्ति रही है कि उसके सामने बलवान्से बलवान् राजाओकी शक्ति तुच्छ और निःसत्व प्रतीत होती है। साराश यह कि योरोप धर्मके सिद्धान्तसे सदा ही अपरिचित रहा है। इसी लिए उसके यहाँ इतनी राजनैतिक और मजहबी लड़ाइयाँ हुई है और इसी लिए योरोपीय लोगोको इतने दिनो तक प्रत्येक क्षेत्रमे दास होकर रहना पडा है। इसी लिए योरोपकी स्वतंत्र जातियाँ अन्य जातियोकी—चाहे वे योरोपकी हो या और अन्यत्रकी—स्वतंत्रताका अपहरण करना चाहती हैं। उन्होने वास्तविक जातीयताको—धर्मको—बिल्कुल नही समझा है। आजादीके मंत्रने अभी तक उनके कर्ण-कुहरमे प्रवेश नहीं किया है। हममेसे जो कोई सुनना चाहे वह सुन सकता है कि स्वतत्रंताकी देवी पुकार पुकार कर स्पष्ट शब्दोमे कह रही है कि—"मेरे उपासको ! मेरी प्रिय सन्तानो ! तुमने अभी तक मेरी पूजाकी विधि नही जानी। तुमने अभी तक मुझे प्रसन्न करनेका ढग नही सीखा। मै स्वतत्रता या आजादीसे भरे हुए हृदयमे ही वास कर सकती हूँ—सकीर्णता, असहिष्णुता, हिसकतासे भरे हुए हृदयमे नहीं। ऐ मेरी सन्तानो ! जब तुम दूसरोको परतत्र बनाना चाहते हो, दूसरोके विचारो, भावो

---

*देखो—जून १९२३ की 'प्रभा'का 'एक सामाजिक गोरख धंधा' शीर्षक लेख।

और आदर्शोंसे घृणा करते हो, केवल खुद ही सुखसे दिन काटना चाहते हो और दूसरोको इस शस्यश्यामल, धन-रत्न-आनन्द-शोभा-सौन्दर्य्य-सकुल पृथ्वीपर ही नरककी चाशनी चखाना चाहते हो, तव मुझे क्यो कर पा सकते हो? क्या तुम नहीं जानते कि मै घृणा, असहिष्णुता और सकीर्णताकी दुर्गन्धमे क्षणभर भी नही टिक सकती? इस विराट् विश्व, अनन्त प्रकृतिमे सभीकी आवश्यकता है—सभीके रहनेके लिए स्थान है। सभीके निर्वाहके लिए सामग्री है। फिर व्यर्थके झगडोसे क्या लाभ? दूसरोको परतत्र रखकर तुम कदापि स्वतत्र नहीं रह सकते। तुम्हारी निजकी स्वतंत्रताके लिए भी सवकी स्वतत्रताकी आवश्यकता है। मेरे उपदेशको स्मरण रक्खो, तभी तुम मुझे प्राप्त कर सकोगे, अन्यथा नही।"

फ्यूडैलिज्म (मनसवदारी), इन्क्वीजिशन, पोपो और अप्रति-हत-शक्ति-सम्पन्न राजाओ द्वारा वहुकाल तक शासित रहनेवाला योरोप शीघ्र ही पुरानी वातोको नहीं भूल सकता। सुदीर्घ समय तक मानसिक गुलामी करनेवाला—मानसिक और वौद्धिक क्षेत्रमे मजहवके अखण्ड एकाधिपत्यको माननेवाला—योरोप शीघ्र ही अपने राजनैतिक जीवनमे साम्यवादी नही हो सकता—एकदम स्वतंत्रताके सिद्धान्तो पर चलना नही सीख सकता। सस्कार, परम्परा या वशानुक्रमका प्रभाव जल्दी नहीं मिटाया जा सकता। इसी लिए योरोपके स्वतत्रतावादी और साम्यवादी प्रजातत्रोमे भी सच्ची स्वतत्रताका *दर्शन नहीं होता।* *धर्म*सिद्धान्तके अभावके कारण योरोपमे मनुष्यकी पशुता पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। उसने मानवताके हृदय पर जो वड़े वडे घाव कर दिये है वे विना 'धर्म' की सहायताके कदापि नहीं भर सकते। मानव-जाति मात्रके कल्याणके लिए धर्म सबसे अधिक आवश्यक वस्तु है। मनुष्यके जीवनमे यह न जाने कव पूर्णताके साथ अवतार लेगा!

सारांश यह है कि मजहब बेड़ी है, और धर्म स्वतन्त्रता है। मजहब अँधेरा कारागार है, और धर्म सूर्य्यका प्रकाश है जिसके द्वारा रंग विरंगे पौधे लहलहाते हैं, हज़ारो मालती, चम्पक, चमेली और गुलाब खिलखिला उठते हैं और सारे जीवधारी अपना प्राण धारण किये हुए हैं। मज़हब उन्नतिका दुश्मन, स्वतन्त्रताका प्राणघातक विप और ज्योतिसे घबड़ानेवाला तथा अन्धकारको पसन्द करनेवाला, चमगीदड़ है। इसके विरुद्ध धर्म ज्योतिका मित्र और सर्व प्रकारके तापोंको हरण करनेवाला अमृत है। मज़हब मृत्यु है, धर्म जीवन है। मज़हब मनुष्यको गुलाम बनाता है और धर्म अपने सारे कार्य्योंका स्वामी। मजहब भीरु और कायर है। वह अपने उद्देशसाधनके लिए हत्या, अत्याचार, इन्किजिशन आदि किसी भी कार्य्यसे बाज नहीं आता; परन्तु धर्म दयासे काम लेता है, वैर और द्वेषसे नहीं। धर्म कहता है कि हर मनुष्य अपनी ज्योतिके अनुसार अपना जीवननिर्वाह कर सकता है, हर मनुष्यको अपना मज़हब आप बनाना चाहिए, उसे दूसरोंके अनुकरण और आज्ञापालनमे संतुष्ट न रहना चाहिए। उसका उपदेश है कि *अन्ध अनुकरण और आज्ञापालन द्वारा मनुष्यको आत्महत्या नहीं करनी चाहिए, बल्कि अपने व्यक्तित्व (धर्म) को पूरे तौरसे प्रकाश करके अपने जीवनका परिचय देना चाहिए।*

मजहब और धर्म।

यदि हिन्दूधर्म यही है जैसा कि पहले प्रमाणित किया जा चुका है तो इस दृष्टिसे देखने पर यह स्पष्ट हो जायगा कि हम आज कल हिन्दू नहीं, बल्कि मुसलमान और क्रिस्तान है और सो भी कट्टरसे कट्टर। अपने रक्त और धर्मको पवित्र तथा अकलुषित रखनेके लिए अपनी

हम हिन्दू हैं या क्रिस्तान और मुसलमान?

जातिप्रथाको हम भले ही करोडो धन्यवाद दिया करे, परन्तु सत्य इसके सर्वथा प्रतिकूल है। हमारे धर्मकी (बहुतसे विद्वान् कहते हैं कि हमारे रक्तकी भी!) पवित्रता निःसन्देह जाती रही है। विजातियोंने केवल हमारे देशको ही नहीं, धर्मको भी विजय कर लिया है। हमारी पूजा वन्दना निःसन्देह सस्कृतमे होती है, हमारे देवता और देवियोंके नाम निःसन्देह पुराने और हिन्दू ही हैं, हम मुसलमानो और क्रिस्तानोंसे घृणा भी असीम रखते है, तौभी हमारी धार्मिक अन्तरात्मा क्रिस्तानों और मुसलमानोके ही समान बन गई है। साराश यह कि *आज हमारे यहॉ मजहबका साम्राज्य है, धर्मका नहीं।* हमारे आधुनिक मजहबी विचार और आचार मुसलमानो तथा क्रिस्तानोसे कहॉ तक मिलते जुलते है, यह पूर्वके अध्यायोंमे दिखलाया जा चुका है। वास्तवमे हम इस समय मुसलमान और क्रिस्तान ही है। हमारी अन्तःप्रेरणाये—हमारे जोश—क्रिश्चियानिटी और इसलामसे ही आते है। हमने अपने आधुनिक ईश्वरको भी क्रिस्तानों और मुसलमानोके सॉचेमे ढाल दिया है। हम उन्हींके समान उससे डरते और उसका सम्मान करते है। उनके मज़हबके प्रायः सभी सिद्धान्तो पर हम इस समय विश्वास करते है—यथा, ईश्वरसे भय, अतिप्राकृतिक और प्रारब्धमे विश्वास, धर्मोन्माद, अन्धविश्वास इत्यादि इत्यादि। *इस समय धर्मका अर्थ सदाचार नहीं, वरन् यन्त्रवत् कुछ शब्दोंका उच्चारण और कुछ विधियोंका पालन करना है। अब* सच्चरित्र नही किन्तु सबसे अधिक अतिप्राकृतिक शक्ति रखनेका दावा करनेवाले लोग धर्मात्मा कहलाते है। इस समय मदारी फकीर और धूर्त लोग ही संत और महात्मा कहलाते हैं। धर्म इस समय स्वार्थत्याग या परोपकारमे नही वरन् स्वार्थपरतामे रह गया है। हमारे ॲगरेज़ी पढे लिखे विद्वा-

यथावास्थित पथावलम्बी और इतरप थावलम्बी दोनों दल अहिन्दू हैं।

नतक अतिप्राकृतिकमे विश्वास करते हैं। इस समय धर्म हमारे हृदयको छूता तक नहीं है। इस समय यथास्थितपथावलम्बिता (orthodoxy) और इतरपथावलम्बिता (hetrodoxy) में कोई भेद नहीं है। दोनो ही दल अहिन्दू हैं। यदि एक प्रत्यक्ष रीतिसे क्रिश्चियानिटी और इसलामकी नकल करता है तो दूसरा अप्रत्यक्ष रीतिसे—तनिक छिपे हुए तरीकेसे।

कुछ समयसे भारतमे अनेक सुधारक समितियाँ जन्म ग्रहण कर रही है। अनेक सम्प्रदाय भी स्थापित हो रहे हैं। इनमेंसे कुछ सम्प्रदाय तो ऐसे हैं जो एकदम पाश्चात्य भाव, पाश्चात्य विचार और पाश्चात्य आदर्शोंकी नकल है। ये प्राचीनताकी अपेक्षा नवीनताहीको अधिक पसन्द करते है। किसी साधारणसे साधारण निरीक्षकसे भी यह छिपा न होगा कि इनका धर्म एक प्रकारकी क्रिश्चियानिटी है—निःसंदेह प्राचीन क्रिश्चियानिटी नहीं, बल्कि उन्नत और नूतन क्रिश्चियानिटी। अतएव इनके सम्बन्धमे और कुछ कहना व्यर्थ है।

इनके एकदम विपरीत एक दूसरे प्रकारके सम्प्रदाय है। ये प्राचीनताके पक्षपाती और नवीनताके शत्रु है। इन्हे नवीनमे—वर्तमानमे—आधुनिकमे—कोई सौन्दर्य्य, कोई आशा, कोई प्रभा, किसी प्रकारका कल्याण मङ्गल नहीं देख पडता। ये अपने धर्म और उसकी रीति नीतियोंके सम्बन्धमे सोचने विचारनेकी जरा भी ज़रूरत नही समझते है। ये वर्तमान धर्मविचार, रीति-नीति, जातिप्रथा, मूर्तिपूजा, पिण्डदान, दान पुण्य, तीर्थ उपवास, सत्यनारायण और अनन्तकथा इत्यादि सबको निशंक पालन करना चाहते है। पूर्वके अध्यायोमे कुछ लोक-प्रिय ग्रन्थकारोंके जो वचन उद्धृत किये गये है उनसे ऐसे लोगोके हृदयका पता पूरे तौरसे चलता है और यह सिद्ध होता है कि ये कहाँ तक हिन्दू है और

कहाँ तक मुसलमान या क्रिस्तान। इन लोगोके सम्बन्धमे भी हम यहॉ पर कुछ अधिक नही कहना चाहते।

हिन्दुओका एक और दल भी नवीनताका विरोधी है जिसके सम्बन्धमे यहॉ पर कुछ लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। यह दूसरा दल वर्तमानको निःशंक पालन करना नहीं चाहता। यह सोचता है कि वर्तमानमे बडी बुराई, बडी त्रुटि, बड़ा दोप है जिसका सुधार करना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु इस दलका कथन है कि इस सुधारके लिए हमे और किसी ओर दृष्टिपात् करनेकी आवश्यकता नहीं है। हमारा प्राचीन सर्व प्रकारसे उन्नत, महान् और श्रेष्ठ था, अतएव हमे उस प्राचीनका ही अनुकरण करना चाहिए। वह प्राचीन केवल धर्ममे, नैतिक आदर्शोंमे, और कला कौशल्यमे ही नहीं, वरन् विज्ञानमे भी बडा था। अतएव हमे पाश्चात्य ससारसे विज्ञान सीखनेकी भी आवश्यकता नहीं है। क्या वेदमे रेल और तारबर्की नही है? क्या वेदमे तोप और बन्दूक नही है? यदि नही तो देवताओके अग्निवाण चलानेका क्या अर्थ है? क्या वेदमे मोटरकार नही है? यदि नही तो हवासे बात करनेवाले और क्षणमात्रमे कोसो पहुँचानेवाले रथोंका क्या आशय है? क्या वेदमे जेप्लिन और एरोप्लेन (हवाई जहाज) नहीं है? यदि नही, तो देवताओके विमानारोहणका क्या तात्पर्य्य है? साराश यह कि इस दलके लोग सुधारके द्वारा प्राचीनको ही पुनः स्थापित करना चाहते है, वर्तमानको प्राचीनसे वदलना चाहते है। थोड़ासा ही विचार करनेसे विदित हो जाता है कि इस सम्प्रदायके सुधारोत्साहके उद्गम भी क्रिश्चियानिटी और इसलाम ही हैं।

यथार्थमे इस दलकी उत्पत्ति मुसलमानो और क्रिस्तानोके तर्कों और आघातोका उत्तर देनेके निमित्त हुई थी। परन्तु यह उत्तर हिन्दू रीति-

नीतिके मण्डन द्वारा नही बल्कि उन रीतियो, उन विचारो, उन व्यवहारों और उन कार्य्योंके खण्डनके द्वारा दिया गया जिन्हे क्रिस्तान और मुसलमान निन्दित समझते है । अर्थात् पहले तो एक तरहसे हिन्दूधर्मकी निचाई स्वीकार कर ली गई और तब वेद और अन्य ग्रन्थोमे इसके प्रमाण ढूँढे गये कि वर्तमान समयका प्रचलित हिन्दूधर्म यथार्थ वैदिकधर्म नही है और यह सिद्ध किया गया कि शुद्ध वैदिक धर्म इसलाम और क्रिश्रियानिटीसे किसी प्रकार कम नही है । निःसन्देह इनमेसे एक सम्प्रदायने तो 'हिन्दू' शब्दको ही घृणित समझ कर परित्याग कर डाला । वर्तमान जातिप्रथा और मूर्त्तिपूजा इत्यादिके खण्डनमे यह दल पादरियो और मौलवियोसे भी आगे बढ गया है । और अन्य मतवालोको हिदू बनानेमे तो इसके जोशका ठिकाना ही नही है । इस सम्बन्धमे तो इनके सामने पादरी साहवोके भी छक्के छूटते है । शहरोमे ऐसा अक्सर हुआ है कि इनको देखनेके साथ ही पादरी साहव अपनी किताबो आदिको छोड़ तशरीफ ले भागे है । दलीलो और युक्तियोमे ये उनसे भी तेज निकले ! अतएव *मौलिक विचारोंकी दृष्टिसे इस दलमे और क्रिश्चियानिटी तथा इसलाममें कोई भिन्नता नहीं* है । *धर्मोन्माद, विश्वासप्रधानता और हठ दोनोमें विद्यमान है, चाहे वह क्रिस्तान या मुसलमान धर्मोन्माद हो और चाहे हिन्दू धर्मोन्माद*—चाहे हम वेदमे विश्वास करे और चाहे बाइबल और कुरानमे। पहले हम यह देख ही चुके है कि धर्मोन्माद हिन्दूधर्मका अङ्ग नही है और हिन्दूधर्म विश्वास-विशिष्ट नही है ।

अतएव यह कहना पड़ता है कि वास्तवमे यह दल इसलाम और क्रिश्चियानिटीका विरोधी नही वरन् दोनोका अनुकरण है । हिन्दू बहुदेववादी है, इसलिए एक ही अनन्त सर्वशक्तिमान ईश्वरका पूजन

सत्य है। क्रिस्तान और मुसलमान कहते है कि हिन्दू बड़े मूर्ख हैं, क्योंकि वे राम कृष्ण इत्यादि साधारण मनुष्योंको ईश्वरका अवतार समझते है। भला ईश्वर मनुष्य किस प्रकार हो सकता है ? इसी प्रकार अद्वैतवादका सिद्धान्त भी कितनी मूर्खतासे परिपूर्ण है ? 'सोऽहम्' 'तत्वम् असि' किसी सिडी या पागलने कहा होगा, इसलिए उपनिषद् वेदके अग नहीं है। पुराणोमे कैसी कैसी झूठी कथायें लिखी है ! इसलिए पुराण सब मिथ्या हैं ! वर्तमान समयमे विधवा-विवाहकी बड़ी आवश्यकता है, इसलिए विधवाविवाह वेदसंगत है ! मरे हुए पितर पिण्ड ग्रहण नहीं कर सकते, इसलिए श्राद्ध भी वेदविरुद्ध है ! हिन्दुओकी सबसे बडी मूर्खता तो यह है कि वे लकडी और पत्थरकी पूजा करते है ! लकडी और पत्थर भी कहीं खाते है ! वे भी कहीं अर्घ्य ग्रहण करते है !! निःसन्देह प्रतिमापूजा तथा एक ईश्वरके अतिरिक्त और किसी देवता या वस्तुकी पूजा वेदके विरुद्ध है !!

साराश यह कि चाहे हम यथास्थितपथावलम्बी हो या इतरपथावलम्बी—चाहे हम सुधारोके प्रेमी हो या चुप बैठनेके—चाहे हम वर्तमानके पक्षपाती हो या प्राचीनके—चाहे हम आधुनिक योरोपका अनुकरण करना चाहते हो या प्राचीन भारतका—हमारा धर्म वास्तवमे इस समय हिन्दू नहीं, वरन् क्रिस्तान और मुसलमान है। हमारी रगोमे, हमारे समस्त व्यावहारिक जीवनमे, पूर्णतया विजातीय आदर्शों और विजातीय भावोने अपना घर बना डाला है और यही हमारी अवनतिका कारण है। हमारी अधोगति उसी दिनसे आरम्भ हुई जिस दिनसे हम मजहबी हुए।

संसार एक महान् जीवनप्रयास है और इसमे विजय प्राप्त करनेके लिए मनुष्यको अपनी परिस्थितियो या पारिपार्श्विक अवस्थाओ (environment) के अनुकूल बनना ही पड़ेगा । प्राकृतिक नियम बड़े

कड़े है। प्रकृति दीन-हीन या दुर्बलकी परवाह नही करती। स्वदेशबन्धुओ! तुम्हारा काम दीन दुर्बल बननेका नही, वरन् प्रकृतिका सामना करनेका, उस पर विजय प्राप्त करनेका है। उठो, आलस और कायरतासे काम न चलेगा। प्रकृति निर्दय है, देवता बहरे है, ससारमे नियमविरुद्ध कोई कार्य नही होता। ईश्वर भी नियमको नही पलट सकता—उसका भी कोई चारा नही। उठो, मैदानमे आ डटो, वीर बनो। तब प्रकृति भी तुम्हारा सामना नही कर सकेगी। याद रक्खो—"नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः"। वीरता दिखलाओ, सत्कर्ममे रत हो जाओ। देखो तुम्हारे धर्मग्रन्थका बचन है—

अपहाय निजं कर्म कृष्णकृष्णेति वादिनः।
ते हरिद्वेषिणः पापाः धर्मार्थं जन्म यद्धरेः॥
विष्णुपुराण।*

अर्थात् "अपने कर्मोंको छोड़ 'कृष्ण कृष्ण' कहते रहनेवाले लोग हरिके द्वेषी और पापी है, क्योंकि स्वय हरिका जन्म भी तो धर्मकी रक्षा करनेहीके लिए होता है।" सत्यव्रत ग्रहण करो, सदाचारका अवलम्बन करो। केवल यही एक धर्म तुम्हे शोभा देता है। अन्य सब मत बहुत सकुचित, एकदम छोटे, अत्यन्त क्षुद्र है। सत्यको और स्वतन्त्रताको छोड़ कर तुम इनमे कब तक लिप्त रहोगे? याद रक्खो कि सभी मत और मजहब तुम्हारे लिए बनाये गये है, तुम उनके लिए नही बनाये गये। भय और स्वार्थपरता तुम्हे शोभा नही देती। प्रह्लाद और ईसाके समान कष्ट भोगनेके लिए कटिबद्ध हो जाओ। क्या इस भयसे कि देवता तुमसे रूठ जायँगे, ईश्वर तुमसे कुपित होगा, तुम सत्यको परित्याग कर डालोगे? उठो यह भय तुम्हे शोभा नहीं देता और इस कविके साथ कहो कि—

* Quoted in Gita Rahasya

सिजदःसे गर बहिश्त मिले दूर कीजिये।
दोज़ख ही सही सरका झुकाना नही अच्छा॥

तुलाधारने जाजलिको क्या ही उत्तम शिक्षा दी थी—

जाजले तीर्थमात्मैव मास्मदेशातिथिर्भव॥
एतानीदृशकान्धर्मानाचरन्निह जाजले।
कारणैर्धर्ममन्विच्छन्स लोकानाप्नुते शुभान्॥
—महाभारत, शा० प० २६३-४१।

'हे जाजलि! तेरा आत्मा ही एक अति पवित्र मन्दिर है। अतएव इधर उधर पृथ्वी पर तीर्थभ्रमण मत करता फिर। अपने कर्तव्यको पाल कर। अपनी बुद्धिके अनुसार धर्मकी उपासना करनेवाला मनुष निसन्देह स्वर्ग प्राप्त करता है।"

गारतवासियो, तुम इस समय अत्यन्त हृदयहीन हो रहे हो, मृतप्राय हो रहे हो। तुम तो एक बारगी टससे मस भी नहीं होना चाहते; परन्त ऐसा करनेसे काम नही चलेगा। संसार चल रहा है, पृथ्वी चल रही है, ग्रह नक्षत्र सभी चक्करमे हैं। 'जगत्' शब्दका अर्थ ही चलना है। गति ही जीवनका नियम है। तब क्या केवल तुम ही खर्राटे मारते रहोगे? पक्षातका ऐनक उतारो और निष्पक्ष होकर ससार पर दृष्टि डालो। देखं, तुम्हे निद्रा आगई और इतने ही अवसरमे असभ्य पाश्चात्य बढकर कहते कहाँ जा पहुँचे। उठो उठो, अब भी तुम आगे निकल जा सक्ते हो। अपने झुण्डके झुण्ड नवयुवकोको पाश्चात्य देशोमे भेजो। पाात्य ससार इस समय अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, समाजशास्त्रमे बहुत उति कर गया है। वहाँ अनेक विप्लव, अनेक आन्दोलन, अनेक नूतन भाव और विचार जन्म ग्रहण कर रहे हैं। तुम उससे शिक्षा ग्रहण गो। इसमे लज्जाकी कोई बात नहीं है। साथ ही साथ यह याद रक्खो कि तुम हिन्दू हो। अपने आदर्शोंको कदापि न छोडो। तुम कुछ समयसे

नहीं, वरन् शताब्दियोसे, युगोसे हिन्दू हो। तुम्हारी मानसिक बनावट, तुम्हारा शारीरिक सगठन हिन्दू धर्मके ही उपयुक्त है। युगोसे तुम्हारी रगोमे हिन्दूरक्त दौड़ रहा है। अतएव तुम्हारी उन्नति हिन्दू रह कर ही हो सकती है, विजातियोके अन्ध अनुकरणद्वारा नहीं। तुम्हारा 'स्वधर्म' ही तुम्हारे काम आवेगा, दूसरोका 'मजहव' नहीं।

तुममे एक बहुत वडा ऐब है, उसे परित्याग करो। तुम्हारा हृदय बहुत क्षुद्र है, तुम्हे कही भी कोई सौन्दर्य्य नजर नही आता। सङ्कीर्णताको छोड़ो, उदार बनो। अब मैक्समूलर, पॉल ड्यूसन, शौपेनहॉर, गेटी आदि विद्वानोकी पुस्तकोको हाथमे लेकर घूमते फिरनेसे तथा अपने भूतकालकी प्रशसा करते फिरनेसे काम न चलेगा। तुम्हारा भूत निःसन्देह बड़ा उज्ज्वल था, परन्तु इस कारण क्या अन्य देशो और जातियोसे तुम कोई शिक्षा ग्रहण करोहीगे नही? स्मरण रक्खो कि तुम्हारा वेद कोई सीमावद्ध गिने हुए पृष्ठोका ग्रन्थ नहीं है, वरन् वह विद्या है और इसलिए अनन्त है। विद्या किसीके इजारेमे नहीं है, विद्याकी कोई सीमा नहीं है। प्राचीनता-प्रेमके उन्मादमे मूढ विश्वासोका, कुरीतियोका, निरर्थक आचार-नियमोका पालन मत करो और न उन सबके व्य किसी प्रकारके गुह्य आशय ढूँढनेका व्यर्थ यत्न करो। अपनी शक्ति-योको व्यर्थके मजहबी झगड़ोमे—सूत्रोके अर्थ लगानेमें—मत नष्ट करो। अतिप्राकृतिकको छोड़ो, याद रक्खो कि हर जगह प्राकृतिक नियम विद्यमान हैं, नियमविरुद्ध कोई कार्य्य नहीं होता। किसीके सहायकी उम्मीद छोडो, निज बलसे खड़े होओ और स्वपराक्रमसे विजय प्राप्त करो।

तुम्हे प्राचीन या अर्वाचीन किसीके भी अनुकरणकी आवश्यकता नहीं है। केवल सत्यव्रत धारण करो और ज्ञानका अवलम्ब ग्रहण करो। विजातीयताके* जोशमे अपने धर्म, अपने आदर्शों, अपने देवताओ तथा अपने

* हम पहले देख चुके हैं कि इतरपथावलम्बिता तथा प्राचीनप्रेम भी यथार्थमें विजातीय अनुकरण हैं।

पुराणोको गालियाँ मत सुनाओ। हम पहले ही कह चुके है कि पक्षपात ठीक नहीं और हम यह कदापि नही कहते कि तुम प्राचीन यज्ञ और हवनको जारी कर दो। (निःसन्देह हजारों वर्ष पूर्वके देवता इस बीसवीं शताब्दिमे तुम्हारे देवता कदापि नहीं हो सकते।) परन्तु हाँ, यह अवश्य कहना पड़ेगा कि सम्मान करना सीखो। तुम्हारे पुराण कथा-मात्र हो सकते हैं (हम ज़ोर नहीं देते कि वे इतिहास है); परन्तु वे बडे सुन्दर हैं। उनमे हज़ारो रत्न भरे है। उनकी कविता पर हज़ारो होमर वारे जा सकते हैं। ऐयाश या लम्पट समझ कर तुम प्यारे श्रीकृ-ष्णसे घृणा मत करो। श्रीकृष्ण ही भारतकी आत्मा—रूह—है। जिन घटनाओंको तुम अश्लील समझते हो, वे बडी ही सुन्दर है। स्थूल पाप दृष्टिको छोड़ो, पवित्र कविताकी दृष्टिसे देखो। *तुम अपने इतिहासके किसी भी अध्यायसे घृणा मत करो*। क्या तुम भारतके इतिहाससे पौराणिक समयको निकाल सकते हो? यदि तुम रक्त, मास और चम-ड़ेको निकाल फेंकोगे; तो केवल हड्डीरूपी वेदसे क्या उपकार होगा? क्या राम और कृष्ण, अन्नपूर्णा और लक्ष्मी, सीता और सावित्री, सरस्वती और पार्वती, दुर्गा और जगद्धात्रीसे शून्य भारतका इतिहास शोभा देगा? और क्या मुसलमान-समयको भी तुम इतिहाससे निकाल सकते हो? क्या नूरजहाँ या चान्द बीबी, बीरबर या टोड़रमल, अकबर या अबुल-फज़ल, प्रताप या शिवाजी, ताज और तानसेनसे शून्य भार-तका इतिहास शोभा देगा?

प्राचीन या अर्वाचीन किसीसे भी काम न चलेगा। केवल सत्यका आश्रय ग्रहण करो और *प्राचीन, माध्यमिक और अर्वाचीन, इन सबका एक संश्लेषण उपस्थित करो*।

सतरहवाँ अध्याय ।

—•• ••—

नैतिक धर्म ।

१—मनुष्यका स्वभाव ।

गत अध्यायोमे हम देख चुके है कि मजहब और सदाचारके क्षेत्र पृथक् पृथक् है । मजहब सदाचारप्रचारमे यथेष्ट सहायता प्रदान नही कर सकता । *अब हमें इस प्रश्न पर विचार करनेकी आवश्यकता है कि मजहबका स्थान नीति ग्रहण कर सकती या नहीं* और क्या मजहबके अभावमे भी मनुष्य सच्चरित्र हो सकता है ? बहुतसे लोग कहेगे कि मजहबके न रहने पर मनुष्य पशु बन जायगा, स्वार्थपरताका साम्राज्य हो जायगा और निःस्वार्थताका सर्वथा विनाश हो जायगा । लोग चार्वाककी शिक्षाओ पर चलने लग जायँगे । परन्तु उनका यह कथन निराधार है ।

क्या नीति मज़हबका स्थान ग्रहण कर सकती है ?

क्या मनुष्य मजहबके न रहने पर भी सच्चरित्र हो सकता है ? इस प्रश्नका उत्तर एक दूसरे प्रश्नके उत्तर पर निर्भर है और वह यह है कि क्या मनुष्य निःस्वार्थ हो सकता है ? हम देख चुके है कि सदाचारकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई है और वह *प्राचीनसे भी प्राचीन मजहबोंसे कितना प्राचीन* है । बिल्ली भी अपने बच्चोंकी परवाह करती है और उनका लालन पालन करती है । एक साधारण चिड़िया भूख आरामकी कुछ भी परवाह न

पूर्व अध्यायों पर एक नजर ।

कर अहर्निश अपने अण्डोको सेती रहती है, अण्डोमेसे तुरत निकले हुए बच्चोको अपनी छातीके नीचे परोसे छिपाये रखती है, इन नन्हे नन्हे बच्चोंकी—जिनकी अभी ऑखे तक नहीं खुली है—चोचोको अपने मुँहमे लेकर उन्हे अपने पेटसे आधे पचे हुए अनाजको उगल उगल कर खिलाती है और जब वे बच्चे जरा सयाने हो जाते हैं तब तो कहनेकी कुछ बात ही नही है, स्वय भूखो मर कर भी, अपने पेट-के अन्दर खाये हुए अन्नको उगल उगल कर उन्हे खिलाती है और उनकी प्राणरक्षा करती है। भला कहिए तो कि कबूतर किस मजहब और किस मतका अनुयायी है? नीतिका पाठ उसे किसने पढाया है? स्वय प्रकृतिने। बिना नीतिके आधारके सृष्टि एक क्षणके लिए भी स्थिर नही रह सकती। इसी निःस्वार्थताका—जो कि छोटी छोटी चिडियो और जानवरोमे भी विद्यमान है—पूर्ण विकाश मनुष्यमे हुआ है। नीति या नि·स्वार्थता मनुष्यके स्वभावका एक अग है और मनुष्यने इसे किसी मजहब या धर्मग्रन्थसे नही सीखा है। विकाश-शास्त्रके अध्ययनसे ज्ञात होता है कि यह नि·स्वार्थता युगयुगा-न्तरोंसे उन्नति कर रही है और फैल रही है। उससे यह भी स्पष्ट होता है कि जीवन-प्रयासमे यह नि स्वार्थता बहुत ही हितकारी है। गोया स्पष्ट शब्दोमे प्रकृति ही हमसे सच्चरित्र होनेके लिए अनुरोध करती है। क्या मनुष्यको सदाचार व्रत धारण करनेके लिए इससे अधिक और भी किसी वस्तुके जाननेकी आवश्यकता है? हे मनुष्य! याद रख कि सदाचार-व्रत धारण करनेमे तू प्रकृतिकी—सारे विश्वकी—इच्छा पूर्ण करता है, अपने स्वभावको पूरा करता है और अपने विकाशके नियमके अनुकूल बनता है। सच्चरित्र होना ही तेरे स्वभावके अनुकूल है, दुश्चरित्र होना नही। सदाचार ही तेरे गौरवको

बढ़ाता है । क्या तू अपने स्वभावको—उस स्वभावको जिसे तूने युग-युगान्तरमे प्राप्त किया है—उस स्वभावको जिसके द्वारा तू मनुष्य कहलाता है और जिसके द्वारा तू पशु और वनस्पतिसर्गसे विभाजित होता है—उस स्वभावको जो तेरी उन्नति और जीवनका कारण है—परित्याग करना चाहता है और उसे परित्याग करके फिर अवनतिमे गिरना चाहता है ? पशु और वनस्पतियोसे भी अधम होना चाहता है ? नही नही, कदापि नही, ऐसा विश्वास नही किया जा सकता ।

मनुष्यमें ऊँचा स्वभाव विद्यमान है ।

मनुष्य सुन्दर और पवित्रको, बिना किसी इच्छाके, बिना किसी कामनाके, बिना किसी लोभ या भयके ग्रहण कर सकता है या नही ? "मुझे इसमे तनिक भी सन्देह नही होता । मै सोचता हूँ कि अब तक हम लोग मनुष्यको बहुत तुच्छ और नीच समझते रहे है । *हम सबमें उत्तम और ऊँचा स्वभाव विद्यमान है,* * *परन्तु हम उससे अपील नहीं करते और इसी कारण मानव-स्वभाव और मानव-जीवन अब तक इतना नीचा है । एक ऐसे नये धर्मका आविष्कार करो, जो मनुष्यको नीच और तुच्छ न समझे बल्कि उसकी अच्छी प्रकृतिसे काम ले, उसे प्रेम दया और न्यायकी ओर आकर्षित करे और उससे यह कहे कि इनसे युक्त होना ही तेरा यथार्थ स्वभाव है ।*

---

* मानसं सर्वभूतानां धर्ममाहुर्मनीषिणः ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि धर्ममेव समासते ॥

—महा०—अनु० प०, १६२—६१ ।

अर्थात् बुद्धिमानोंने कहा है कि धर्म (सदाचार) की परताल प्रत्येक जीवके मनसे ही होती है । अतएव स्वभाव-प्रेरित प्रवृत्तिके द्वारा सभी जीव धर्म प्राप्त करना चाहते हैं ।

मुझे आशा है कि थोड़े ही दिनोंमें इसके फलको देख कर संसार चकित हो जायगा। * "

यदि स्वार्थपरता मनुष्यके स्वभावका एक अङ्ग है तो निःस्वार्थता भी एक अङ्ग है। *मनुष्य केवल अन्नहीके द्वारा नहीं वरन् प्रेम दया सहानभूति और न्यायके द्वारा भी जीवित है।* सदाचार केवल मजहबहीके इजारेमे नही है। क्या उस माताकी तपस्या कम कठिन है जो अपने बच्चोके बीमार पडने पर अहर्निश उसके समीप बैठ कर अपने शरीरकी भी कुछ परवा नही करती? क्या उन तपस्वियोके आत्मोत्सर्गसे—जो ईश्वरके प्रसन्न करनेके निमित्त तथा स्वर्ग या मुक्ति प्राप्त करनेके हेतु ससार पर लात मार कर कठोरसे कठोर व्रतका पालन करते है—उस डाक्टरका आत्मोसर्ग कम महान् है, जो केवल संसार हितके लिए ही खुद जहर पान करता है और नई नई ओपधियोका आविष्कार करता है तथा कुष्ट प्लेग विशूचिका या चेचक जैसी बीमारियोके निदान आदिके अनुसंधानमे स्वय इन व्याधियोका शिकार बनता है? मजहबी लोगोके किसी भी यज्ञसे क्या उन वैज्ञानिकोका यज्ञ हीन है, जो बिना किसी कामनाके केवल ज्ञानोपार्जनके निमित्त अनेको कठिनाइयोका सामना करते है और कभी कभी साक्रेटीज और ब्रूनोके समान प्राण तक खो बैठते है? निःसन्देह मजहबी लोगोके यज्ञो और पूजाओसे इनका यज्ञ कही विशाल है। क्योंकि ये अग्नि-कुण्डमे अपने सर्वस्वको—अपने स्वार्थको—स्वाहा कर डालते है।

मनुष्यका स्वभाव।

साराश यह कि मनुष्य केवल अपनी उदरपूर्तिसे संतुष्ट नही होता, केवल निजसुखसाधनसे उसकी तृप्ति नही होती। और जानवर केवल

* Salter–Ethical Religion P. 16.

अपने पेटकी फिक्र करते हैं, परन्तु *मनुष्य अपने आदर्शकी प्राप्ति चाहता* है । यह भविष्यके लिए—आगन्तुक पीढियोके लिए—अप्रसूत बच्चोके लिए—उन मनुष्योके लिए जिन्होने अबतक जन्म भी नहीं लिया है—व्यस्त होता है और उनके सुख और आरामके लिए प्रयत्न करता है। अतएव इस चौपाईपर कदापि विश्वास नही किया जा सकता कि—

सुर नर मुनि सब कर ऐही रीती ।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥

"*मनुष्य केवल अन्नहीके द्वारा नहीं वरन् प्रीति, प्रतीति, विश्वास और सहृदयताके द्वारा भी जीता है । यह कहना बड़ी भारी भूल है कि रूई, लोहा, सोना और चाँदी ही संसारके अधीश्वर है । नहीं, ससार पर राज्य करनेवाले ऐसे अनेक राजराजेश्वर हैं जिनके सामने इन्हें परास्त होना पड़ता हैं और उनके नाम प्रेम, दया, चरित्रबल हैं । संसारके सभी राष्ट्रोंकी स्थिति इन्हींके ऊपर है। ...* यदि राष्ट्रकी स्थिति केवल बल पर होती, यदि लोगोकी साधारण प्रवृत्ति राष्ट्रकी आज्ञाओके उल्लंघन करनेकी होती, तो समाज या राष्ट्र कभी स्थायी नही रह सकते । न्यूयार्क, लण्डन और पेरिसको वहाँकी पुलिस और सेना नही किन्तु 'तू हत्या न करना' यह आदेश दबाये हुए है । " *

मनुष्य भाव-प्रधान है ।

मनुष्य बाह्य वस्तुओकी अपेक्षा अपने मनके अधीन कहीं अधिक है । यदि विचारसे देखा जाय तो कहना पड़ेगा कि मनुष्य देहात्मवादी (Materialist) की अपेक्षा भावप्राधान्यवादी ही अधिक (Idealist) है—जड़वादी-

* From Emerson's Lecture--On the Sovereignty of Ethics.

की अपेक्षा चैतन्यवादी विशेष है। *सभ्य जगतके सभी मनुष्य अपने अपने विकास और उन्नतिके अनुसार संसार तथा अपने कर्त्तव्यके सम्बन्धमें एक न एक कल्पना* (Theory) *रखते हैं।* अतएव धर्मोन्मादमे पडकर जब मनुष्य इन्क्वीजीशन (Inquisition) सरीखे अस्त्रको ग्रहण करता है, काफिरोकी हत्या करता है या अविश्वासियोको दण्ड देता है, तो यह भी भावप्राधान्यवादका ही लक्षण है। वह जानता है कि केवल मेरा मजहब ही सत्य है, अन्य सब मिथ्या, कुफ्र और अविश्वास, ससारकी सारी भलाइयोंके शत्रु है। तब यदि इन बातोंमे पूरा विश्वास रख कर वह हाथमे खड्ग लेकर कुफ्र और अविश्वासके मूलोच्छेदके लिए प्रस्तुत होता है तो इसमे आश्चर्य्यकी कौनसी बात है? वह एक धारण रखता है और उसके अनुसार व्यवहार करता है। नि.सन्देह हर मनुष्यकी उन्नतिकी भिन्नताके अनुसार उसकी यह धारणा भी भिन्न होती है। मनुष्य जितना ही उन्नत होगा उसकी धारणा, उसकी कल्पना और उसका अन्तःकरण उतना ही उन्नत होगा। परन्तु मनुष्य भावप्रधान ही है। नि·सन्देह मनुष्य हर समय अपनी धारणा और आदर्शके अनुसार नहीं चलता, परन्तु इससे हमे यह नतीजा निकालनेका कदापि अधिकार नही है कि—

धर्मोन्माद भी इसीका लक्षण है।

"पिताके मरने पर मनुष्यको कोई शोक नहीं होता, वरन् उसे प्रसन्नता होती है कि पिताकी संचित सम्पत्ति उसके हाथ लगेगी। भयके अतिरिक्त अन्य किसी उपाय द्वारा मनुष्य नियमको पालन नहीं कर सकता।"*

---

* Hobles

मनुष्य स्वभावसे ही भाव-प्रधान है। उसका जीवन दृष्टकी अपेक्षा अदृष्टहीके द्वारा अधिकतर विनिर्मित हुआ है। *मनुष्य हर समय हानि और लाभ गिननेवाला जानवर नहीं है, वरन् वह भावो और जज़बातोंसे बना हुआ है। वह प्रत्यक्षकी अपेक्षा आदर्शमे ही अधिकतर विश्वास करता है।*

मनुष्यसे अन्याय नही देखा जाता।

मनुष्य न्यायप्रिय है, सहृदयता सम्पन्न है। ससारमे बड़ा अन्याय है, अनेक त्रुटियाँ है। अच्छोको दुःखी और बुरोको सुखी होता देख कर उससे रहा नहीं जाता और तब वह भविष्यकी कल्पना करने लगता है। वह कल्पनाका स्वर्ग और नरक बनाता है और आशा करता कि इस लोकमे चाहे जो हो, परलोकमे अन्याय नहीं हो सकता। भविष्यमे अच्छोको सुख और बुरोको कष्ट ही होगा। साधारण उपन्यासोके पढते समय भी जब जब हम देखते है कि पापी अपने प्रयत्नोमे सफल हो रहे हैं और पुण्यात्माओको दुःख हो रहा है, तो हमारा चेहरा क्रोधसे लाल हो जाता है और हम अपने होठोको चबाने लगते हैं। हम अन्याय सहन नहीं कर सकते और यदि हममे स्वयं बदला लेनेकी शक्ति नहीं होती है तो हम ईश्वरको पुकारने और अन्यायियोको कोसने लगते है।

प्यारे मज़हबी दोस्तो, स्मरण रक्खो कि तुम्हारा मजहबमे विश्वास करना भी हमारे उपयुक्त सिद्धान्तको पुष्ट करता है। तुम अपने विश्वासको तर्क और युक्तिके द्वारा कदापि प्रतिपादन नही कर सकते हो, फिर भी तुम विश्वास करते हो। क्यो? केवल इसी लिए कि यह तुम्हारा स्वभाव है। तुम केवल जड़ पदार्थोंसे सन्तुष्ट नही हो सकते हो। तुम खाते हो सही, परन्तु तुम्हारी वास्तविक अन्तरात्मा

भूखी रह जाती है। इसी लिए तुम मजहबका सहारा ग्रहण करते हो। *जब भ्रम-प्रमादोंमें, असत्य कल्पनाओंमें—जिनका कि उपपादन बुद्धि द्वारा नहीं किया जा सकता—मनुष्यको इतनी प्रीति है, इतना विश्वास है, तो उसे सत्य धर्ममें—सदाचार धर्ममें—जो स्वयंसिद्ध है, जिसके लिए किसी प्रमाणकी आवश्यकता नहीं है—विश्वास न होगा यह समझमें नहीं आता।*

हमारे कहनेका तात्पर्य केवल इतना ही है कि स्वार्थपरता, भय, लालच, क्रोध और घृणाके समान प्रेम, सहृदयता और दया भी मनुष्य-स्वभावके अङ्ग है; यद्यपि सभी अच्छी वस्तुओके समान ये कम पाये जाते है। यदि मजहब ही हमारे सदाचारका कारण होता, तो मज़हबकी इतनी नीतिविरुद्ध शिक्षाओके रहते हुए भी लोग सच्चरित्र क्यो होते ?

मज़हबका दूसरा अर्थ। इस अर्थमें मज़हब नष्ट नहीं हो सकता।

यहाँ पर 'मजहब' शब्दका अर्थ विश्वास विशेष, हठवाद और धर्मोन्माद किया गया है। क्यो कि साधारणत: मजहबके प्रधान अङ्ग यही है। परन्तु यदि *मज़हबका अर्थ–उत्साह, उत्कण्ठा, आध्यात्मिकता, सरगर्मी या जोश–सूक्ष्म, अप्रत्यक्ष, दुख-शोक-मोह-रहित कल्पनामय अदृश्य जगतमें विचरण करनेकी चाह, प्रत्यक्ष और वर्तमानसे असंतुष्टि, मंगल-मय भविष्यकी कामना, सौन्दर्य्यकी पिपासा, कलाप्रेम, सहृदयताका वेग—किया जाय, तो मज़हब मनुष्यके स्वभावका प्रधान अङ्ग है और इस अर्थमें मज़हबका कभी विनाश नहीं हो सकता,* चाहे हिन्दू, क्रिस्तान, मुसल्मान, पारसी आदि मतोका नाम निशान भी न रह जाय। नही, मनुष्यकी उन्नति और विकाशके साथ साथ इस धर्म

का—इस मजहबका—अधिक आधिपत्य बढेगा । *स्मरण रक्खो कि यथार्थ धर्म यही है, मतविशेष इसी धर्मकी छायाके समान हैं । जिस मतमें जिस मजहबमें इसका अधिक अंश विद्यमान है, वह मत वह मज़हब उतना ही वड़ा—उतना ही श्रेष्ठ है ।* यही मज़हब-की अन्तरात्मा——उसकी रूह——है । जिनमे यह विद्यमान है वे जीवित है और जहाँसे यह वास्तविक धर्म प्रयाग कर गया है वे मृतक प्राणहीन है ।

मज़हबमें परिवर्तनकी आवश्य-कता ।

मज़हब या मत विश्वसमस्याकी कल्पना—अभ्युपगत सिद्धान्त मात्र हैं। अतएव ज्ञानवृद्धिके साथ साथ इनमे भी परि-वर्तनकी आवश्यकता है। इसी कारण हर युगका मत या मजहब भिन्न होता है। अतएव *किसी मत विशेषके अक्ष-रशः भृत्य या गुलाम बन कर इस परिवर्तनका—सत्यका-इस यथार्थ धर्मका——पथ कभी बन्द न करो ।* तुम्हारा गौरव इसीमे है कि तुम इस यथार्थ धर्मके आगमनमे सहायता दो, चाहे तुम्हे ससारके सभी मतोको एक एक करके छोड़ देना पड़े ।

काबा अगरचे टूटा तो क्या जाय ग़म है शैख़ ।
यह क़स्र दिल नही जो बनाया न जायगा ॥

सदाचार-धर्म ही य-थार्थ धर्म है।

सदाचार धर्म ही यथार्थ धर्म है । यही तुम्हारे ज्ञान और विवेकको, तुम्हारे स्वभाव और गौरवको शोभा देता है । अन्य सारे मत अति संङ्कीर्ण और हृदयहीन है । छोटे छोटे परिमित देवताओके पुकारनेकी क्या आवश्यकता है ? यथार्थ राजराजेश्वरी अनन्त माता प्रकृति ही—जिसके हम सन्तान है——नीतिके नियमोद्वारा अपनी इच्छा प्रकाश कर रही है। नैतिक आईन उसीके बनाये हुए है । और सब ईश्वरो

और देवताओंकी अपेक्षा—जो स्वय हमारे बनाये हुए हैं—इस माताकी आज्ञा पालन करना क्या हमारा कर्त्तव्य नहीं है ? मजहबकी—इतिहासकी—सभी बातें वादविवादसे भरी होती हैं, परन्तु कर्त्तव्यमे कोई वादविवाद नहीं है। ईश्वरकी इच्छा तुम्हारी समझमे नहीं आ सकती, परन्तु प्रकृतिके नियम स्पष्ट हैं। रावणके दस सिर थ, कुम्भकर्ण बहुत ही दीर्घकाय था, हनुमान सूर्य्यको निगल गये और समुद्रको लॉघ गये, सूर्य्यने पृथ्वीपर आकर कुन्तीको पुत्र प्रदान किया, इत्यादि बाते ऐसी हैं जो तुम्हारी समझमे नहीं आ सकतीं; परन्तु प्रेमके, दयाके, न्यायके, सहानुभूतिके, समझनेमें कोई कठिनाई नहीं हो सकती। मजहबमे तुम्हे शका उत्पन्न हो सकती है, परन्तु सदाचारमे शकाका कोई स्थान नहीं है।

सदाचार धर्म ही हमारा यथार्थ धर्म है। पवित्र कामोका करना ही हमारा कर्त्तव्य है। स्वभावसे ही—बिना किसी सोच विचारके—हमे बुराईसे बचना चाहिए। *ऐसा करनेहीमें मनुष्यत्व है। यही मानवधर्म है, क्योंकि यही हमारे जीवनका नियम है।* जिस प्रकार अग्निका धर्म उष्णता है, पानीका धर्म ठढक है, आकाशका धर्म ध्वनि है, उसी प्रकार मनुष्यका धर्म सदाचार है। कोई वस्तु अपना धर्म परित्याग नहीं कर सकती। क्या मनुष्य ही अपने धर्मको छोड़ कर अपने जन्मको कलंकित करेगा और मृत्युको प्राप्त होगा ?

सदाचार सहृदयता-धर्मकी असितता।

पाठक, यह हरगिज न कहना कि इस नूतन धर्ममे (यथार्थमें यह नूतन नहीं वरन् सभी धर्मोंसे प्राचीन है) कोई आशा, कोई प्रभा, कोई हृदयहिल्लोल नहीं है। नहीं, इससे महन् धर्म कोई हो ही नहीं सकता। यह धर्म परिमित या सीमाबद्ध नहीं है और यह तुम्हारे हृदयको भी अनन्त—सीमारहित—बनाता है। तुम क्षुद्र उसी

समय तक हो, जिस समय तक केवल अपना पेट पालते हो—केवल अपनी फिक्र करते हो। परन्तु जिस समय तुम परोपकारके लिए कमर कस कर तैयार होते हो उस समय विराट् बन जाते हो, तुम ससारके सुखसे सुखी और मनुष्यमात्रके दुःखसे दुखी होते हो। तुम्हारी कोई सीमा बची नही रहती। क्योंकि "आत्मवत् सर्वभूतेभ्यो हितं कुर्यात् कुलेश्वरी" के आदेशको तुम अपने जीवनका ध्रुव तारा समझते हो। तुम्हारे प्रेमका दरिया उमड़ कर सभी वस्तुओंको, स्वय तुम्हे भी, वहा ले जाता है। तुम ससारमे—विश्वमे—अपनेको विलीन कर अनन्त बन जाते हो। अजी! तुम खुद खुदा बन जाते हो और कहने लगते हो—

मैने माना दहरको हक़ने किया पैदा वले।
मैं वह ख़ालिक हूँ मेरे कुनसे खुदा पैदा हुआ॥

अर्थात् "यदि मै यह मान भी लूँ कि इस संसारकी रचना ईश्वर द्वारा हुई है, तथापि मै वह स्रष्टा हूं कि मेरे 'कर' शब्दके उच्चारण मात्रसे स्वय ईश्वरकी भी उत्पत्ति हुई है।" नही नही, खुदा और बन्दा कैसा, सृष्टि और स्रष्टा कैसा, केवल तुम ही तुम रह जाते हो—

तन्हास्तम तन्हास्तम चे बुलबुल अलब तनहास्तम।
जुज़ मन न बाशद् हेच शै तन्हास्तम एकतास्तम॥

अर्थात् "मै अकेला हूँ अकेला हूँ। कैसा आश्चर्य्य है, मै एकदम अकेला हूँ। मेरे व्यतिरिक्त अन्य कोई वस्तु है ही नहीं। मै अकेला—बेजोड़—लासानी हूँ।" तुम्हारा हृदय प्राचीन यूनानियोंके वाद्ययत्र (Acolian lyre) के सदृश हो जाता है और वायुके प्रत्येक झोकेसे झकृत होने लगता है *। तुम्हारा हृदय फोटोग्राफीके शीशेके

* देखो, फरवरी १९१९ की 'प्रभा' मे लेखकका 'कवि और उपदेशक' शीर्षक लेख।

समान सक्षोभ्य हो जाता है—तुम तुम नहीं रहते। तुम अनन्तमें विलीन हो जाते हो—तुम अनन्त वन जाते हो। तुम कहते हो—

जिधर देखता हूँ, जहाँ देखता हूँ।
मैं अपनी ही ताव औरं शाँ देखता हूँ।

तुम कहते हो—

यह परवतकी छातीपर वादलका फिरना,
वह दम भरमें अंब्रोंसे परवतका घिरना।
गरजना चमकना कड़कना, निखरना,
छमाछम छमाछम यह बूँदोंका गिरना।
उरूसे फ़लकका यह हँसना यह रोना,
मेरे ही लिए है फ़क़त जान खोना।
वह वाँदीका रंगी गुलोंसे लहकना,
फ़ेज़ाका यह वूसे सँरापा महकना।
यह बुलबुलका खंदाँ लबोंसे चहकना,
यह आवाज़ नैकी वहरसूँ लपकना।
गुलोंकी यह कसरतें अरमें रूबरू है।
यह मेरी ही रंगत है, मेरी ही वू है॥
सर्वां हूँ मैं गुल चूमता बोसौं लेता,
मैं शमशार्द हूँ झूम कर दादं देता॥

अब तो स्वार्थ और परमार्थमें कोई भेद रहा ही नहीं। तुम्हें मृत्युका भय नहीं रहता, और तुम चिल्ला उठते हो कि—

"ऐ मात! बेशक उड़ा दे इस जिस्म (शरीर) को, मेरे और एजसाम (शरीर) मुझे कुछ कम नहीं। सिर्फ चाँदकी किरने चाँदी-

---

१ चमक दमक। २ वादलोंसे। ३ आकाशरूपी नववधूका। ४ मैदानका। ५ पुष्पोंसे। ६ वायुमण्डलका। ७ सरसे पैरतक अर्थात् पूर्णताके साथ। ८ हँसनेवाले अधर। ९ बाँसुरीकी। १० चारों ओर। ११ पुष्पोंकी। १२ वहुतायत। १३ स्वर्ग सामने है। १४ पवन। १५ चुम्बन। १६ सरोका वृक्ष। १७ प्रशंसा करना।

की तारे पहन कर चैनसे काट सकता हूँ। पहाड़ी नदी नालोके भेपमे गीत गाता फिरूँगा। वहरे मौआज (समुन्दरकी लहरो) के लिवासमे लहराता फिरूँगा। मै ही बादे खुश खराम (अठखेलियाँ कर चलनेवाला पवन) नसीमे मस्ताना गाम (गजगामिनी हवा) हूँ। मेरी यह सूरत सैलानी हर वक्त रवानी (गति) मे रहती है। इस रूपमे पहाड़ोसे उतरा, मुर्झाते पौधोको ताजा किया, गुलो (पुष्पो) को हँसाया, बुलबुलोको रुलाया, दरवाजोको खटखटाया, सोतोको जगाया, किसीका आँसू पोछा, किसीका घूँघट उड़ाया, इसको छेड़, उसको छेड़, तुझको छेड, वह गया वह गया, न कुछ साथ रक्खा न किसीके हाथ आया!''*

नहीं तुम तो मरते ही नही। तुम तो मरनेके पश्चात् भी विद्यमान रहते हो और कहते हो—

" पस अज़ मुर्दन बनाये जायँगे सागर मेरे गिलके।
लबे जानाँके बोसे खूब लेंगे खाकमें मिलके।

अर्थात् मरनेके पश्चात् मेरी मिट्टीसे प्याले बनाये जायँगे। बस फिर क्या है? तब तो मै अपनी प्रियतमाका अधरामृत खूब जी भर कर पान किया करूँगा।

अब स्वार्थ और परमार्थ कैसा, स्वर्ग, और नरक कैसा, पूजा और पाठ कैसा, यज्ञ और योग कैसा? क्या इस धर्ममे कविता, आशा, प्रभा और हृदयहिल्लोल नही है? अन्य सब मिथ्या और स्वार्थी धर्मोंमे विश्वास करके इस अनन्त सहृदयता धर्मको छोड़ कर अपने मनुष्यत्वको कब तक तुम कलङ्कित करते रहोगे?

---

* स्वामी रामतीर्थजीके अन्तिम लिखे हुए शब्द। पूर्वोक्त कविताये भी उनहीकी हैं।

अठारहवाँ अध्याय ।

नैतिक धर्म ।

२—सदाचार धर्म ।

पाठक पूछेगे कि "तुम्हारा उद्देश क्या है ? तुम क्या चाहते हो ?

एक प्रश्न ।

यदि हम अपने विश्वासोको बुद्धि-विरुद्ध तथा भ्रम-प्रमाद समझ कर छोड़ दे, तो तुम उनके स्थानमे क्या रखना चाहते हो ? तुम हमे कौनसा मार्ग, कौनसा नियम बतलाना चाहते हो ? हम अपने मजहबको छोड़ तो दे परन्तु तब हमारे धार्मिक निसर्गका क्या भविष्य होगा ? देखो तो मजहबसे कितना लाभ हुआ है, कितने दहकते हुए हृदयोको शीतलता मिली है, उसने कितने घायल हृदयोपर मरहम लगाया है, कितनी आत्माओको सुख और शाति प्रदान की है, कितने ससार-रोग-ग्रस्त, उत्तप्त मनुष्योका उद्धार किया है, कितने आशा-विहीन, जर्जर-प्राण, श्मशानप्राय मनुष्योके चित्तोको प्रेमकी मलयानिल चलाकर और दयाकी गङ्गा बहाकर पावन और रजित किया है, कितने भादोकी रात्रिसे भयावने हृदयोको भगवान अरुणदेवकी सुनहरी किरणोसे आलोकित कर दिया है !" पाठक यह पहले ही कहा जा चुका है कि हम यथार्थ धर्मके विरुद्ध नहीं है। धर्म ही मनुष्यका गौरव और धर्म ही धन है। हॉ, हम मिथ्या, क्षुद्र, विश्वास विशिष्ट धर्मोंके अवश्य विरोधी है। हम तो स्वय अनुरोध करते है कि तुम धार्मिक और सहृदयतासम्पन्न बनो। सदाचार ही तुम्हारा यथार्थ धर्म है।

परन्तु पाठक इस पर भी शायद कहेगे कि " हम भक्त है, हमे यह तुम्हारा रूखा सूखा ज्ञान अच्छा नहीं लगता, हमारे हृदयको तृप्त

करनेके लिए तुम क्या दे सकते हो ? हमे ईश्वर चाहिए, देवता चाहिए, तप व्रत उपासना चाहिए, लीला चाहिए, नामसंङ्कीर्तन चाहिए।" अच्छा तो लो, यदि तुम यही चाहते हो तो अपने हृदयके समीप निम्न प्रश्नोको उपस्थित करो और उसीसे इनका फैसला मॉगो।

उत्तर—सदाचार धर्म।

"क्या प्रेमदेव सभी देशोके ईश्वरोसे—जिहोबासे, जिउससे, अल्लाहसे अहिरमणसे, परमात्मासे, विष्णुसे, रामसे और ससारके सारे देवताओसे महान्, वड़े या श्रेष्ठ नहीं है ? क्या इनको छोड़ कर और किसीकी पूजा अर्चा करना न्यायसंगत है ? क्या इनकी लीला सभी देशोके ईश्वरोकी लीलासे अपरम्पार नही है ? ईश्वरका साम्राज्य संसारसे उठ गया है। अब वह मनुष्यको कठपुतलीके समान नहीं नचा सकता। मनुष्यने जान लिया है कि हर जगह नियम विद्यमान है और कोई कार्य नियमविरुद्ध नही होता। परन्तु प्रेमका साम्राज्य अब तक बना हुआ है। समस्त ईश्वरोके स्वामी प्रेमदेव मनुष्यको अब भी कठपुतलीके समान नचाते है। ये सम्भवको असम्भव और असम्भवको सम्भव, घटको अघट और अघटको सुघट कर दिखलाते है। अक्सर लोग इनकी प्रेरणासे चोरी और हत्या तक कर डालते है। ईश्वर तो अपने भक्तोका छोड़ भी देता है, परन्तु ये अपने भक्तोका कभी परित्याग नहीं करते। जो इन्हे एक क्षणके लिए भी याद करता है उसे ये अनन्त और सीमारहित बना देते है। तब क्या इनका कीर्तन हरिकीर्तनसे, उत्तम नही होगा ? इनके पूजनके लिए किसी यज्ञशाला या मान्दिरके निर्माण करनेकी आवश्यकता नही है। इनका मन्दिर हमारा हृदय है। एकबार उसे साफ और पवित्र बना कर आवाहन करनेसे ही ये वहॉ तत्क्षण अपना आसन जमा देते है और परोपकार परताप-हरण, परहित करनेसे ही ये प्रसन्न हो जाते है। क्या

तीर्थयात्रा, हरिनाम-स्मरण इत्यादि विधियोसे इनकी पूजा-विधि सरल, सुलभ और उत्तम नहीं है ? इनके उपासक सारी स्वार्थपूर्ण कामनाओसे रहित हो जाते हैं। उनकी सारी कामनाये पूर्ण हो जाती है। अतएव इन्हे छोड़ कर हम पुराने निर्बल और क्षुद्र ईश्वरो तथा देवताओको क्यो भजते रहे ?"

पाठक इन प्रश्नोका उत्तर आप अपने ही हृदयसे पूछिए और तदनुसार कार्य कीजिए। हम इससे अधिक और कुछ नही कहना चाहते। देखिए तो वह क्या उत्तर देता है ?

क्या तुम्हे मूर्तियोकी आवश्यकता है ? यदि है तो शौकसे प्रतिमाओका पूजन करो। हम मज़हबवादी तो है ही नहीं, जो तुम्हे इस कामसे रोकेगे। करो, पूजन करो। ससारके चतुर चित्रकारो और शिल्पकारो द्वारा निर्मित मूर्तियोको ले लो, उनपर मुग्ध होओ, दीवाने होओ, और अपना तन मन निछावर कर दो, इसमे हर्ज ही क्या है। तुम्हे कथाओकी चाह है ? इसमे भी कोई हर्ज नहीं है। मानव-हृदयकी जटिलतम ग्रथियोसे परिचित, कल्पनाके उत्तुग शिखरोतक पहुँचनेवाले लेखकोकी कथाओको पढो और अवश्य पढो, इसमे नुकसान ही क्या है। तुम यही कहते हो न कि हम अप्रत्यक्ष, सूक्ष्म, अदृष्ट ईश्वर या शक्तिसे सतुष्ट नहीं हो सकते ? हमे एक ऐसे ईश्वरकी ज़रूरत है कि जो हमसे पृथक्—अत्यन्त दूर—न हो, बल्कि हमारे सामने हो—समक्ष हो—समीप हो—जिस पर हम अपने हृदयके उच्छ्वासो, आवेगो, और उद्गारोको प्रकट कर सके। भला इससे अच्छी और कौनसी इच्छा हो सकती है ? यह तो सर्वथा स्वाभाविक है। आकारशून्य निर्गुण ईश्वरसे—जिसका देखना तो दूर रहा कल्पना तक करना असम्भव है—मनुष्य क्योकर प्रेम कर सकता है ? अतएव ससारके महान् पुरुषोकी—अवतारोकी—पूजा अवश्य करो।

श्रीकृष्णकी * बॉसुरीसे विभोर हो जाओ, उनके बछडोके साथ उछलो, व्रजके विहगोके साथ विहार करो, गोपियोकी विरह-वेदनाको अनुभव करो, यमुनाके स्निग्ध सलिलमे सरोजके समान तैरते फिरो, व्रजके भ्रमर बन कर प्रेमियोके पास प्रेमका सन्देश पहुँचाओ। इसमे कोई हानि नही है। तुम अपनी धार्मिक प्रवृत्तिको सभी उत्तम उपायोसे तृप्त करो। इसमे सदाचार धर्मको कोई आपत्ति नही हो सकती।

धार्मिक निसर्ग और धर्मविशेष, दो वस्तुये हैं।

हम धार्मिक निसर्गके विरुद्ध कदापि नही है, परन्तु धार्मिक स्वभाव और धर्मविशेप या मजहब दो भिन्न वस्तुये है। मनुष्य स्वभावसे ही विवाह करना चाहता है। परन्तु विवाहकी अनेक रीतियॉ है। हमारे शास्त्र भी आठ प्रकारके विवाहोका उल्लेख करते है। जिस प्रकार विवाहकी उपयोगिता सिद्ध करनेसे आर्ष, गान्धर्व, पैशाच प्रभृति वैवाहिक रीतियोकी उपयोगिता और उत्तमता सिद्ध नही होती, उसी प्रकार धार्मिक निसर्गकी उपयोगिता सिद्ध करनेसे ससारके सभी मजहब सच प्रमाणित नही होते। यह धार्मिक निसर्ग क्रम क्रमसे देश और कालके अनुसार विभिन्न स्वरूप धारण करता है, परन्तु इसमे परिवर्तनका रुक जाना तथा इसका सीमावद्ध हो जाना मानवहितके लिए बड़े अमङ्गलकी बात है। सभी विकसित वस्तुओके समान मजहब भी विकसित वस्तु है, क्राइस्ट या मोजेज, मोहम्मद या जोरोआस्टरके समान मनुष्योने इसे आविष्कार नही किया है—वल्कि यह स्वय मानव जातिके समान प्राचीन है। हाँ, इन महानुभावोके नेतृत्वमे युगोकी संचित शक्तियॉ एकाएक जाग अवश्य पड़ी हैं और उन्होने प्रवल रूप धारण कर लिया है।

---

* यहॉ पर मार्च १९२१ की 'प्रभा'मे प्रकाशित हुए लेखकके 'कविताका रसास्वादन' शीर्षक लेखको यदि पाठक पढ जानेकी कृपा करे, तो अच्छा हो।

हम तुम्हारे सामने विश्वकी कोई नई कल्पना उपस्थित नही करना चाहते, वल्कि हम कर्तव्यका एक नया आदर्श वतलाना चाहते है और तुम्हे इस सदाचारकी सरितामे डुबकी लगानेके लिए कहते है—

सदाचार धर्मका असीमत्व ।

नदी पुनीत परम महिमा अति ।
कहि न सकै शारदा विमलमति ॥

सदाचारके इस मानसरोवरमे एक गोता लगाते ही ससारकी सारी कलुपतायें और त्रिविध ताप एकदम नष्ट हो जाते है। इसका दरस परस मज्जन और पान करनेसे पापका लेश भी नही रह जाता। आत्माको शान्ति मिलती है, भवका ताप मिटता है, चित्तको विश्राम मिलता है, शोक दु.ख 'नौ दो ग्यारह' हो जाते है, और मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है। यमदूतोका भय नही रह जाता। एक वार आजमा कर देखो कि इसमे कितना स्वाद और कैसा आनन्द है। देखो, तुम्हारे मनका मैल किस प्रकार धुल जाता है और तुम कैसे प्रफुल्लित हो जाते हो। सदाचारका यही तो लक्षण है कि सत्कर्मके करनेके साथ ही चित्त आनन्दसे सरावोर हो जाता है, हमारी ही अन्तरात्मा हमारी प्रशसा करने लगती है, शावाशी देती है। जरा इस दरियामे कूद कर देखो भी तो, कि इसकी धारा कितनी तेज है और किस शीघ्रताके साथ यह तुम्हे स्वर्गमे ले जाती है!

"वहुतसे मनुष्योके जीवनका उद्देश रुपया उपार्जन करना और स्त्री पुत्रोका भरण पोपण करना ही होता है। परन्तु इसमे मनुष्यता क्या है? वीवर आदि पशु भी तो यही करते है। मनुष्य बुद्धि-ज्ञान-अनुमान-कल्पना-विशिष्ट है, उसमे सदाचार बुद्धि है, वह न्यायशील है; परन्तु फिर भी वह कभी कभी अपने यथार्थ गौरवको भूल जाता है। वह अपनी भावनाओकी उपेक्षा करता है, अपने अन्त·

करणको दबाता है, अपनी कल्पनाओंसे मुँह फेर लेता है, और अपनी दिव्य सुन्दर बुद्धिको केवल अपनी स्त्री और पुत्रोंके भरण पोषणमे व्यय करता है, वल्कि कभी कभी तो अपनी स्वार्थपरताके वशीभूत होकर अपनी स्त्री और बच्चोको भी छोड़ देता है । मित्रो, अपने विचारोको उन्नत करो, एक क्षणभरके लिए अपने यथार्थ गौरवका अनुमान करो, अपनी अनन्त शक्तियोको स्मरण करो और इस भूपृष्ठ पर तुम्हारा महान् कर्त्तव्य क्या है, उसको याद करो । अपने हृदयको सहानुभूतिसे परिपूर्ण करो, अपनी कल्पनाको प्रज्ज्वलित करो और अपने जीवनको उत्तम आदर्शोंसे भर डालो । तुम ऐसा अवश्य करो । क्योंकि धनोपार्जन और धनसचयमे लगे रहनेसे तुम अपनी आध्यात्मिक मृत्युकी ओर अग्रसर हो रहे हो, तुम विराट् होनेके वदले क्षुद्र हो रहे हो, जवान होनेके बदले बुड्ढे बन रहे हो, अपने जीवनको एक प्रकारका व्यापार —केवल हानि और लाभ, नफा और नुकसानका मामला—बना रहे हो । वास्तवमे तुम्हारा जीवन उत्तम आदर्शोंका, सत्कर्मोंका, सुन्दरता और कविताका भडार होना चाहिए ।*"

मित्रो, आओ, हम प्यास और भूखसे मरते हुए राजा रन्तिदेवके समान कहें—" मै परमेश्वरसे अष्टसिद्धियुक्त गति या मुक्तिकी कामना नहीं रखता, मै चाहता हूँ कि अन्तःस्थित होकर सब प्राणियोके दुःखोको स्वयं अनुभव करूँ जिससे मेरे द्वारा सब प्राणियोंका दुःख दूर हो । यह दीन जन जीवन् धारण करनेकी वासना रखता है । इसके जीवनके लिए जल अर्पण करते ही मेरी क्षुधा, तृषा, थकावट अगोका घूमना, कातरता, खेद, विषाद, मोह सब ही निवृत्त हो गये । " (श्रीमद्भागवत स्क० ९, २१–१२,१३ ।)

* Salter—Ethical Reigion.

क्या तुम कहते हो कि समय कम है, आयु छोटी है, जिन्दगी चन्द-रोजा है, इस लिए मनुष्य परोपकारमे उद्यत न होगा? उसे सदाचारकी कोई आवश्यकता नही है। यथार्थ प्रश्न यह है कि 'हम क्या है' यह नही कि 'हम कितने दिन तक जीवित रहेगे'। अगर हमलोग केवल क्षुधा-तृष्णा-ग्रस्त मनुष्य है, तो हमे केवल खाना और पीना चाहिए, चाहे हमलोग आज मरे या कल, या अनन्त काल तक जीवित रहे; परन्तु यदि हम बुद्धियुक्त, प्रेमयुक्त, कल्पनायुक्त मनुष्य है, तो हमलोगोको बुद्धि, ज्ञान, विवेक, कल्पना और प्रेमसे काम लेना चाहिए, चाहे हम शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त हो जायें या हमारी उम्र मार्कण्डेय ऋषिके समान बडी हो जाय।* वास्तवमे हमारी आयु इतनी छोटी नही है। यह शरीर निःसदेह मरता है परन्तु सत्कर्म अमर है और अपने शरीरके मरण प्राप्त होने पर भी हम अपनी सहानुभूतिके द्वारा आगन्तुक पीढियोके शरीरमे जीवित रह सकते है। निःसन्देह हमारा यह भौतिक क्षणभंगुर शरीर अवश्य मृत्युको प्राप्त हो जायगा, परन्तु हमारे कार्योंका नतीजा कदापि नहीं मिट सकता। *भौतिक शरीर न रहनेपर भी हम अच्छी और बुरी शक्तियोंके स्वरूपमें जीवित रहेंगे* और आगन्तुक युगोमे हमारे द्वारा ससार सचालित होगा। जिस प्रकार हमारा जीवन हमारे पूर्वजोके जीवनका सिलसिला है, उसी प्रकार हम सब भी भविष्यके जीवनके—केवल शारीरिक ही नही वरन् मानसिक, आध्यत्मिक इत्यादि सभी प्रकारके जीवनके—उद्गम है। हम सब मर सकते है, परन्तु हमारी आत्मा—हमारी आकाक्षाये और विचार, हमारा चरित्र और मनोबल, हमारी कल्पनाये और आदर्श—कदापि नही मर सकते।

वास्तवमे मनुष्यकी आयु छोट नही है।

---

* Sir Leslie Stephen—An Agnostic's Apology P. 65.

पाठक कहेगे कि लेखक स्वप्न देख रहा है, काल्पनिक चित्र खींच रहा है । क्या कभी वह दिन आयगा जब केवल सदाचार ही मनुष्यका धर्म होगा ? क्या कभी हमारे सिद्धान्त मनुष्यके व्यावहारिक जीवनके अङ्ग बन जायँगे ?

मनुष्यका यथार्थ बल।

क्या इतिहास इसका अनुमोदन करता है ? पाठक, तुम अपने प्रभावको नहीं पहचानते हो, मनुष्यकी शक्ति और गौरवको नहीं जानते हो । लेखक शायद स्वप्न ही देख रहा हो; परन्तु तुम तो मन्त्रमुग्ध होकर अपने राज्य और अपने प्रभुत्वको ही खो बैठे हो । वास्तवमे तुममे सारे राज-राजेश्वरोसे अधिक शक्ति है—तुम्हे अपने मन और हृदय पर पूरा अधिकार है और यह कोई साधारण शक्ति नहीं है। तुम अपने मनोबल पर अपनी अद्भुत शक्ति पर विचार नहीं करते हो। तुम अपनेको केवल एक खानेवाला, सोनेवाला और सन्तानोत्पादन करनेवाला क्षुद्र सकीर्ण जानवर समझते हो। तुम पर किसीने टोना कर दिया है । उठो, इस भ्रमको झाड कर अलग कर दो । केवल मजहबी भ्रमको ही नहीं, वरन् उसको भी जिसके द्वारा तुम अपनेको एक क्षुद्र अस्वतन्त्र जीव समझ रहे हो । अपने सिहासन पर आ डटो । तुम स्वतन्त्र हो, तुम राजकेसरी हो, तुम शारीरिक नियमोको भी उलङ्घन कर सकते हो। तुम्हे यह आलस, यह आगा-पीछा, यह अविश्वास, यह सन्देह शोभा नही देता। मनुष्य निःसन्देह विना अन्नके जीवित नही रह सकता, उसे भूख प्यास भी अन्य जीवधारियोसे कम नही सताती । अन्य जीवोके समान वह भी विवाह तथा सन्तानोत्पादन करता है, परन्तु उसमे एक बड़ी विचित्रता है । उसका यथार्थ स्वभाव आध्यात्मिक है। वह भावप्रधान है । मनुष्य बुद्धि, कामना, वासना, आशा और सहृदयतासम्पन्न है । किसी कल्पना और धारणाके निमित्त वह अपना सर्वस्व परित्याग कर सकता है, अपनी प्यारीसे प्यारी कामनाओको परित्याग कर सकता है, अपने उद्देश-

साधनके लिए भूख प्यास तकके ऊपर विजय प्राप्त करता है—यद्यपि इस चेष्टामे उसे प्राण तक छोडने पड़ते है। जिस प्रकार किसी वृक्ष या पशुकी प्रकृति नियत है, उस प्रकार मनुष्यकी प्रकृति नियत नही है। उसका स्वभाव विचित्र है। और जन्तु अपने स्वार्थसे काम लेते है, परन्तु मनुष्य नि:स्वार्थ हो सकता है। वह स्वच्छन्द है, सीमा बद्ध नहीं।

इतिहास क्या कहता है?

पाठक कहेगे कि ससारके इतिहासमे ऐसा कोई देश या कोई समय नहीं मिलता जहाँ हमारे सिद्धान्त व्यावहारिक जीवनमे लाये गये हो। इसका उत्तर यह है कि ससारके इतिहासमे सदाचारको व्यावहारिक बनानेका कभी कोई प्रयत्न ही नहीं किया गया है। हम मनुष्यके स्वभावको और उसकी शक्तिको जानते है, इस लिए हमे अविश्वास न होना चाहिए। आओ, भगवानके अवतारकी प्रतीक्षा किये बिना ही—इस घोर कलिकालके रहने पर भी—कमर कस कर तैयार हो जायँ और सत्ययुगके आधिपत्यको सत्य कर दिखलावे। मित्रो, कलियुगका आधिपत्य तुम पर कदापि नही हो सकता। सतर्क रहो, होशियार रहो, कलियुग तुम्हारे पास भी नही फटक सकता। शैतानने जिस प्रकार क्राइस्टको लालच दिया था, उस प्रकार जब कभी कोई कुवासना लालच दिखलानेके लिए तुम्हारे सामने खड़ी हो, तो तुरन्त अपने गौरवको स्मरण करो—अपनी शक्तिको याद करो—तुम्हारे आँख उठा कर देखते ही वह बिल्लीके समान भाग जायगी। सदाचारव्रत धारण करो, परोपकारका अवलम्बन करो। हर कोनेसे केवल 'रामकी जय'के बदले 'सत्यकी जय' 'प्रेमकी जय,' 'नि:स्वार्थताकी जय' 'दयाकी जय' की ध्वनि उठाओ; तब क्या मजाल कि पाप क्षणमात्रके लिए भी खडा रह सके। कमी है केवल उत्साहकी, जोशकी। जब हम नीची जातिवाले अछूतोके द्वारा छुए हुए जलके पीनेवालेको जातिसे—समाजसे—बाहर निकाल देते है, तब झूठेको, कामीको, छलीको, पापण्डीको, अथवा दूसरी

रीतिसे समाजके अनिष्ट करनेवालेको जातिसे—समाजसे—क्यो न बाहर निकाल दे ? क्यो नही बचपनसे ही माता पिता बच्चोके कोमल हृदयपर मत-या मजहबके बदले सदाचारका ही अंकुर जमायें ? क्यो नही दुश्चरित्र मनुष्य समाजके द्वारा अवज्ञाकी दृष्टिसे देखा जाय ? अनहोनी कथाओं-को हम बच्चोके समान क्यो सुनते जायँ ? क्यो नही अनोखी कहानियोके बदले पण्डितवर्ग सदाचारकी कथाये कहे ? यज्ञ, जाप, ब्राह्मणभोजन इत्या-दिमे हम अपने रुपयोको व्यर्थ क्यो गँवायें और उन्हे ससार-हितमें क्यो न लगायें ? हम अदृष्ट देवताओके मन्दिरोके बदले प्रेमका मन्दिर क्यो न बनवावे ? हम मज़हबके नामसे करोडो रुपये क्यो बरबाद करे ? उन्हे सत्कर्मंमे क्यो व्यय न करे ? अभाव केवल उत्साहका है। जितना उत्साह, जितना द्रव्य, जितना परिश्रम मनुष्यने मजहबके प्रचारमे व्यय किया है, यदि उसका शतांश भी सदाचार-प्रचारमे व्यय किया जाता, तो आज ससारका इतिहास दूसरे प्रकारसे लिखा गया होता। वास्तवमे अब तक ससारका इतिहास रक्तपातका इतिहास रहा है।

मनुष्य-सेवा धर्म।

हमारा भयानक अनुभव हमे जतला रहा है कि देवता बहरे है। मनुष्यके दर्दकी पुकार—चाहे वह कितनी ही आर्द्रताके साथ क्यो न उच्चरित हुई हो—सिवाय उसके आह भरे दिलके और कोई नही सुनता। ईश्वर भी हमारी मदद नही करता। हमे अपने पैरो पर ही खड़ा होना है। हमारा दुःख सिवाय हमारे और कोई नही मिटा सकता। मनुष्यके आँसू मनुष्य ही पोछ सकता है। अतएव इन अदृष्ट देवताओकी सेवाके बदले हमे प्रत्यक्ष नरदेवकी ही सेवाकी आवश्यकता है। विशेषतः हम भारत-वासियोके लिए तो इस विषयमे किसी प्रकारकी कठिनता है ही नहीं, क्योकि हम तो ईश्वरको भी मनुष्य ही बना कर पूजते है। मनुष्य ही हमारा ईश्वर, हमारा देवता होना चाहिए। हमे अन्य देवता या अन्य ईश्वरकी आवश्यकता नही है।

॥ समाप्त ॥

अशुद्धि-संशोधन।
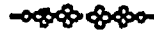
पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५	४	मनुष्यके सामाजिक जीवन—	या मनुष्यका सामाजिक जीवन"
२६	५	सिलसिलेमें वह (प्रकृति)	सिलसिलेमें वह
४४	१६	(समाजवाद Socialism)	(समाजवाद)
६८	८	वनस्पति ससारको पैदा किया है।	वनस्पति संसारको पैदा नहीं किया है।
७३	१९	डमारा	डमारा
९२	७	'जद' मस्दर	'जदन' मस्दर
९३	१०	आग लगाने	आग जलाने
९६	१८	डालने तकका	डालने तकका अधिकार है। मेसन—
१०५	१२	कि उनमें मनुष्य—	कि मनुष्य—
११५	२४	सदाचारसे	सदाचार
१३५	६	अस्वेच्छाचारी	स्वेच्छाचारी
१४३	५	परिणाम	परिमाण
१५६	१६	असभ्य संसारमें	सभ्य ससारमें
१८९	२०	परमार्थ	परार्थ
२६४	१०	तवने	तव तक
२९७	१२	याक्र्स	मार्क्स

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२९७	१८	क्रिस्तान	किसान
३२१	पादटिप्पणी अन्तिम पक्ति	stales	stabs
३७२	१७	चे बुलबुल अबल	चे बुल अजब
३७२	पादटिप्पण	फरवरी १९१९	फरवरी १९२१

नोट—इनके सिवाय और भी कुछ साधारण अशुद्धियाँ रह गई हैं जिन्हें बुद्धिमान् पाठक स्वयं शुद्ध करके पढ़ सकते हैं।

अध्ययन और मनन करने योग्य उच्चश्रेणीके ग्रन्थ ।

समाज । इनमें जगत्प्रसिद्ध कवि और विचारक रवीन्द्र बाबूके ८ निबन्धोंका अनुवाद है जो केवल सामाजिक विषयों पर लिखे गये हैं और बहुत ही गंभीर तथा मार्मिक हैं—१ आचारका अत्याचार, २ समुद्रयात्रा, ३ विलासकी फाँसी, ४ नकलका निकम्मापन, ५ प्राच्य और प्रतीच्य, ६ अयोग्य भक्ति, ७ पूर्व और पश्चिम, ८ चिट्ठी पत्री । मूल्य ॥=)

ज्ञान और कर्म । बंगालके सुप्रसिद्ध विद्वान्, स्वर्गीय गुरुदास बन्द्योपाध्याय, एम० ए०, पी० एच० डी०, डी० एल०के अमूल्य ग्रन्थका अनुवाद । गुरुदास बाबू पूर्वीय और पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञानके पारगामी पंडित थे । वे अपने इस ग्रन्थमें जीवन भरके अध्ययन और मननका सार संग्रह कर गये हैं । देशकी किसी भी भाषामें अभीतक इसके जोड़का ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ । मनुष्यके अन्तर्जगत् और बहिर्जगत्से सम्बन्ध रखनेवाली जितनी भी बातें हैं, उसके आत्मिक, मानसिक और शारीरिक सुखोंको बढ़ानेवाले जितने भी साधन हैं और सन्तान, परिवार, जाति, सम्प्रदाय, देश, राज्य, आदिके प्रति उसके जितने भी कर्तव्य हैं इस ग्रन्थमें उन पर प्रकाश डाला गया है । गहरेसे गहरे दार्शनिक और तात्त्विक विचारोंसे लेकर साधारणसे साधारण सगाई-विवाह, खान-पान, चाल-चलन, और वेष-भूषा सम्बन्धी बातोंकी भी इसमें चर्चा की गई है । सच तो यह है कि ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिस पर इसमें कहीं न कहीं, मुख्य या गौणरूपमें विचार न किया गया हो । मूल्य ३), सजिल्दका ३॥)

सरल मनोविज्ञान । हिन्दीमें इस विषयका यही एक ग्रन्थ प्रकाशित है । इसमें बड़ी भारी विशेषता यह है कि इस कठिन विषयको बहुत ही सरलतासे, सुगम भाषामें, अच्छी तरह उदाहरण आदि देकर समझाया है और प्रत्येक अध्यायके अन्तमें एक रोचक प्रश्नावली दे दी है, जो इस विषयके

विद्यार्थियोंके लिए बड़े ही कामकी है। मनोविज्ञान बहुत ही आवश्यक विज्ञान है। पाश्चात्य देशोंमें इसका बहुत ही अधिक प्रचार है और इसकी सहायता व्यापार, राजनीति, अध्यापन आदि प्रत्येक कार्यमें ली जाती है। मू० १॥) सजिल्दका २)

स्वाधीनता। इंग्लैण्डके सुप्रसिद्ध विद्वान् जान स्टुअर्ट मिलके 'लिबर्टी' नामक ग्रन्थका सरल और सुस्पष्ट अनुवाद। इसमें राजनीतिक, सामाजिक, मानसिक, वाचनिक आदि सब प्रकारकी स्वाधीनताओंका वास्तविक स्वरूप बतलाया गया है। अर्थात् इसमें स्वाधीनताकी सैद्धान्तिक आलोचना है। जिस स्वाधीनताकी आज चारों ओर धूम है और जिसके सामने मनुष्य सारे सुखोंको तुच्छ समझता है, वह वास्तवमें क्या चीज है, यह इस पुस्तकके पढ़े बिना समझमें नहीं आ सकता। इसमें पाँच अध्याय हैं—१ प्रस्तावना, २ विचार और विवेचनाकी स्वाधीनता, ३ व्यक्तिविशेषता भी सुखका एक साधन है, ४ व्यक्तिपर समाजके अधिकारकी सीमा और ५ प्रयोग। प्रत्येक विचारशील विद्वानके अध्ययन करनेकी चीज है। दूसरी आवृत्ति। मूल्य २) सजिल्दका २॥)

देशदर्शन। लेखक, ठाकुर शिवनन्दन सिंह। समाजशास्त्रके एक विशेष अंगका इसमें प्रतिपादन किया गया है जो जनसंख्यासे सम्बन्ध रखता है। जनसंख्याकी वृद्धिसे और पराधीनताके कारण बाहर आबाद न हो सकनेकी कठिनाई तथा विदेशी व्यापारके कारण भारतकी जो दुर्दशा हुई है उसका जीता जागता चित्र इस लोकप्रिय ग्रन्थमें चित्रित किया गया है। बीससे ऊपर चित्रोंसे सुशोभित है। तीसरा संस्करण हाल ही निकला है। मू० २), सजिल्दका ३)

नोट—हमारे यहाँ हिंदीके सब प्रकारके ग्रन्थ मिलते हैं। सूचीपत्र मँगाकर देखिए।

मैनेजर, हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर-कार्यालय,
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई।